द्विभाषी राष्ट्रसेवक

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal

वर्ष : 73 ❖ अंक : 6/7 ❖ सिंतबर/अक्टूबर, 2023

RNI NO. ASSBIL/2009/31008 ISSN : 2321-4945

एक हृदय हो भारत जननी

द्विभाषी राष्ट्रसेवक

(भाषा, साहित्य, समाज, कला व संस्कृति विषयक शोध-पत्रिका)

UGC CARE Listed Journal

वर्ष : 73 अंक : 6/7 सितंबर/अक्टूबर, 2023

परामर्श मंडल

श्री भारतभूषण महंत
कार्याध्यक्ष, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति
गुवाहाटी (असम)

प्रो. आर.एस. सर्राजु
सम कुलपति, हैदराबाद विश्वविद्यालय
तेलंगाना-500046

प्रो. प्रदीप के शर्मा
प्रोफेसर, हिंदी विभाग
सिक्किम केंद्रीय विश्वविद्यालय
काजी रोड, गंगटोक, सिक्किम - 737101

डॉ. दीपक प्रकाश त्यागी
प्रोफेसर, हिंदी विभाग
दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय
गोरखपुर (उत्तर प्रदेश)

डॉ. दिलीप कुमार मेधि
प्रोफेसर, हिंदी विभाग
गौहाटी विश्वविद्यालय, गुवाहाटी (असम)

डॉ. अमूल्य चंद्र बर्मन
पूर्व अध्यक्ष, हिंदी विभाग
कॉटन विश्वविद्यालय, गुवाहाटी (असम)

डॉ. अच्युत शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, हिंदी विभाग
गौहाटी विश्वविद्यालय, गुवाहाटी (असम)

प्रधान संपादक

डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया
मंत्री, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति

संपादक

प्रो. मोहन
पूर्व अध्यक्ष, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली-110007

कार्यकारी संपादक

रामनाथ प्रसाद
प्रभारी साहित्य सचिव
असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी

DWIBHASHI RASTRASEWAK : A Bilingual (Hindi & Assamese) Monthly Research Journal, Focused on Language, Literature Society, Art and Culture, Partially funded by Central Hindi Directorate, Govt. of India and Published by Asom Rastrabhasha Prachar Samiti, Rupnagar, Guwahati-32.

प्रकाशक :
असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति
गुवाहाटी-32

संपादकीय कार्यालय :
प्रधान संपादक, द्विभाषी राष्ट्रसेवक
असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति
सेवा मंदिर पथ, रूपनगर, गुवाहाटी-32
फोन : 9101541395, 9101541380
ई-मेल : rastrasewak51@gmail.com

सहयोग राशि : 100/- (प्रति अंक)

शब्द संयोजन : रतिकांत कलिता

आवरण पृष्ठ : इंटरनेट से साभार

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की ओर से मंत्री डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया द्वारा सराइघाट फोटो टाइप्स प्रा.लि., इंडस्ट्रियल इस्टेट, गुवाहाटी-781021 में मुद्रित, प्रकाशित एवं प्रसारित।

सर्वाधिकार : **असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी-32**

'द्विभाषी राष्ट्रसेवक' में प्रकाशित रचनाओं के विचारों से असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति का सहमत होना आवश्यक नहीं है। प्रकाशित सामग्री के उपयोग हेतु प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है। सभी कानूनी विवादों का निपटारा गुवाहाटी न्यायालय के अधीनस्थ होगा।

विषय सूची

क्रम	विषय	लेखक	पृष्ठ

हिंदी विभाग

	संपादकीय		*4*
1.	पूर्वोत्तर में हिंदी के बढ़ते कदम	✍ डॉ. अच्युत शर्मा	6
2.	हिंदी का भविष्य : चुनौतियाँ एवं संभावनाएँ	✍ डॉ. कंचन शर्मा	10
3.	साहित्य में मानव अधिकार की अभिव्यक्ति	✍ डॉ. अरुण कुमार पाण्डेय	15
4.	विभाजन की त्रासदी का इस्पाती सत्य : तमस	✍ डॉ. सपना सैनी	21
5.	भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में मारवाड़ के जैन स्वतंत्रता सेनानियों का योगदान	✍ डॉ. रवीन्द्र सिंह राठौड़	27
6.	संस्कृति और राष्ट्र अंतर्संबंध	✍ डॉ. आशीष	32
7.	हिंदी उपन्यासों में किन्नर जीवन का मनोविज्ञान	✍ दिवेश कुमार चंद्रा ✍ प्रो. सुशील कुमार शर्मा	36
8.	जीवन मूल्य के धनी कवि रमाशंकर यादव 'विद्रोही'	✍ आलिया जेसमिना	40
9.	स्त्री प्रश्न और प्रसाद के नाटक	✍ डॉ. ऐश्वर्य झा	47
10.	वांचो समुदाय की परंपराएँ और जमुना बीनी की कहानियाँ	✍ धनंजय मल्लिक	54
11.	मोहनदास की प्रथम लंदन यात्रा : चुनौतियाँ एवं सामाधान	✍ समीर देव	62

অসমীয়া বিভাগ

12.	চাৰিত্ৰিক বিকাশত ভৰ্তৃহৰিৰ আৱদান	✍ ড° নিলাক্ষী মিলি মেদক	69
13.	পদ্মৰাম শালৈৰ 'শালৈ জাতিৰ ঐতিহ্য বিচাৰ'ৰ এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন	✍ ভনিতা বৈশ্য ✍ ড° জ্যোৎস্না ৰাউত	76
14.	প্ৰাক্-স্বাধীনতা কালৰ অসম সাহিত্য সভাৰ সভাপতিসকলৰ অভিভাষণত বিশ্বসাহিত্য প্ৰসঙ্গ ঃ এটি অধ্যয়ন	✍ জুমি বৰ্মন ✍ ড° বিপুল মালাকাৰ	84
15.	ভূপেন হাজৰিকাৰ গীতত শব্দৰ সমাহাৰ	✍ মৰমী চৌধুৰী	90
16.	অসমৰ টেটোন শ্ৰেণীৰ সাধুকথা ঃ নিংনি ভাৰৰীয়াৰ সাধুকথাৰ বিশেষ উল্লিখনসহ	✍ ব্ৰজেন বৈশ্য ✍ ড° উপেন ৰাভা হাকাচাম	96
17.	মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ উপন্যাসত আৰ্থ-সামাজিক দিশ ঃ এক অধ্যয়ন	✍ তৰালী সূত্ৰধৰ	105

संपादकीय

भाषा, समाज और लेखक

हमारे सामने विषय के रूप में तीन शब्द हैं, जिसके पहले दो शब्द भाषा और समाज, तीसरे शब्द लेखक के लिए एक परिवेश निर्मित करते हैं। एक विकल्प यह भी हो सकता है कि भाषा समाज और लेखक दोनों का कारण है, जिसके माध्यम से ये दोनों बनें और कार्य करते हैं। एक विकल्प यह भी हो सकता है कि भाषा और लेखक समाज-परिवर्तन के माध्यम हैं। यहाँ यदि 'समाज' शब्द के स्थान पर 'पाठक' शब्द का प्रयोग किया जाए तो हम सामाजिक उत्तरदायित्व की भूमिका से बाहर आकर उसे अर्थ के निर्माता (रोलां बार्थ) के रूप में देख सकते हैं।

समाज/भाषा-लेखक

भाषा उतनी ही प्राचीन है जितना मनुष्य-समाज। भाषा के बिना समाज की कल्पना नहीं की जा सकती। सामाजिक क्रियाएँ मनुष्य के भाषा-प्रयोग करने की क्षमता पर ही निर्भर करती हैं। अमेरिकी मानव वैज्ञानिक लेज्ली वाइट प्रतीक के रूप में भाषा को ही मनुष्य के व्यवहार की उत्पत्ति का स्रोत और आधार मानते हैं। मनुष्य की यह एक अनोखी क्षमता है कि वह अवधारणा विकसित कर सकता है। चीजों, क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं को श्रेणियों में रख सकता है, व्याख्या कर सकता है और प्रतिरूप बना सकता है। इस तरह भौतिक जीवन से अलग एक संकेतात्मक संसार जन्म ले लेता है। इसी कारण समाज और भाषा एक परिवेष है, जहाँ व्यक्ति या लेखक अपना जीवन जी रहा होता है। भाषा की नजर में हम मनुष्य को बोलने वाले प्राणी के रूप में देखते हैं, जबकि समाज के परिप्रेक्ष्य में मनुष्य बोलने वाला प्राणी नहीं बल्कि बातचीत करने वाला प्राणी है। हमें यह समझना होगा कि समाज में विचार-विनिमय लंबे समय से जारी है, जिसका मुख्य कारण हमारे ज्ञान या अनुभव का पिछली पीढ़ी द्वारा अगली पीढ़ी को दिया जाता है। इस तरह भाषा संपत्ति की तरह है, जो किसी भी ज्ञान-प्रणाली को समाज में प्रसाारित करने में अहम् भूमिका निभाती है। भाषा की प्रकृति का अध्ययन करते हुए एडवर्ड सपीर ने कहा कि सभी भाषाओं में एक ही चीज छिपी होती है और वह है - अनुभव का सहजबोधनीय विज्ञान (इंप्यूटिव साइंस)। सहज बोध ही जटिल विचारों को जन्म देता है। मनुष्य के समक्ष भाषा के संबंधित दो लक्ष्य होते हैं - एक तो दुनिया को समझना और सीखना तथा दूसरा - समझने की रणनीति अर्जित करना। इसी दोहरी प्रणाली में भाषा ने मनुष्य को तर्क करने की सामर्थ्य प्रदान की। अत: सहज बोध ही सामाजिक अनुभव के क्रम में मनुष्य के चिंतन और व्यवहार को दिशा देते हैं।

साहित्य-जगत में भी निर्मल वर्मा भाषा और समाज के संबंध को संसार को देखने के क्रम में प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि ''अर्थ देते ही संसार 'शब्द' में बदल जाता है।'' इसी कारण प्रत्येक शब्द किसी अनुभव की याद है, किसी जाने-पहचाने यथार्थ की स्मृति जगाता है। भाषा यहाँ अनुभव है और अनुभव को पुन: प्राप्त करने की वस्तु है। लेखक परिवेश के मध्य होता है। उसका भी समाजीकरण होता है। इस कारण वह निर्वात का निवासी नहीं, हमारे आपके बीच जी रहा सदस्य है। वह भाषा-परिवेश में है, इसे स्पष्ट करते हुए बुल्गारियन-फ्रेंच आलोचक तजवेतन तोदोरोव ने कहा कि ''सभी लेखक अन्य लेखन के प्रकाश में जगह बनाते हैं और अपने से पूर्व-लेखन के प्रति प्रतिक्रिया को प्रदर्शित करते हैं।'' हमारा पूरा साहित्यिक इतिहास और आलोचना इसके प्रमाण हैं। इसीलिए हम मानते हैं कि भाषा संवाद का माध्यम है - एक वर्तमान समाज से और दूसरा वर्तमान समाज का अतीत के समाज से भी।

भाषाई परिवेश में लेखक को दोहरी चुनौती स्वीकार करनी होती है। एक तरफ उसे संप्रेषणीयता की आकांक्षा को पूरा करना होता है और दूसरी ओर उसके सामने विशिष्ट (यूनीक) अनुभव को प्रस्तुत करने की विवशता भी होती है। रचना-प्रक्रिया में यह सवाल मुक्तिबोध के तीन क्षणों में व्यक्त हुए हैं - पहला क्षण है जीवन का उत्कट तीव्र अनुभव-क्षण। दूसरा है इस अनुभव का अपने कसकते दूखते हुए मूलों से पृथक हो जाना और एक वह फैंटेसी आँखों के सामने ही खड़ी हो जाना। तीसरा क्षण है इस फैंटेसी के शब्द बद्ध होने की प्रक्रिया का आरंभ और उस प्रक्रिया की परिपूर्णता तक की गतिमानता। इस तरह जो साहित्य अस्तित्व ग्रहण करता है, वह भाषा में होता है। वह मुक्त और संदर्भ सहित होता है। इसके विपरीत संप्रेषणीयता का एक अन्य पक्ष भी उभरता है। निर्मल वर्मा लिखते हैं कि संप्रेषणीयता की समस्या उन समाजों में नहीं होती, जहाँ हर व्यक्ति अपने संस्कारों, स्मृतियों और विश्वासों में एक दूसरे व्यक्ति से जुड़ा रहता है, वहाँ लोग अपने अनुभवों को साझा करते हैं-उपदेश, प्रचार और विज्ञापन द्वारा नहीं बल्कि अचेतन और नैसर्गिक ढंग से एक सामूहिक मनीषा के स्तर पर जो दरिया की तरह सभी अनुभवों के समेटकर चलती है। आज के तकनीकी समाज में सामूहिक अनुभव और दुर्लभ हो गया है। हर वर्ग अपनी रुचि, जो उसकी जीवन-पद्धति से जुड़ी है और इस पद्धति का दूसरे वर्ग के लोगों के कार्यकलाप, जीवन-अनुभवों से कोई साझा नहीं है। वास्तव में जब यह कहा जाता है कि कलाकार जीवन और जगत की सच्चाई को जैसा भी अपनी स्थिति अपने दृष्टिकोण से देखता है, वैसा ही वह उसे चित्रित करता है। इसी विचार का प्रभाव पाठक की भूमिका पर भी पड़ता है, क्योंकि लेखक का पुन: अवलोकन पाठक द्वारा होता है। जिसका माध्यम जीवन और जगत की सच्चाई न होकर साहित्यिक भाषा-योजना ही उसका माध्यम होती है।

लेखक-भाषा-समाज। हम जिन तीन शब्दों की चर्चा कर रहे हैं, उनका साहित्यिक क्रम लेखक-भाषा-समाज (पाठक) है। इस क्रम में भाषा जो मध्य में है, वह कृति के रूप में स्थिर है। वह निश्चित संकेत है, जो न तो लेखक के संपर्क में है न पाठक के। इसे ही पाठ कहा जाता है। फ्रांसीसी चिंतक रोलाँ बार्थ 'फ्रॉम वर्क टू टेक्स्ट' में स्पष्ट करते हैं कि ''कृति हाथ में हो सकती है, किंतु पाठ भाषा में होता है।'' लेखक जब लिखता है तो विकल्पों में से विकल्प चुन रहा होता है। वह इस तरह लिख रहा होता है कि उसे किस तरह पढ़ा जाएगा। इसलिए उसके मन में संवाद की सामाजिक प्रणाली बन जाती है। कुछ चिंतक मानते हैं कि लेखक कल्पित पाठक या समाज के समक्ष लेखन करता है। भाषा ही इस स्थिति को संभव बनाती है। कृति पूरी होने के बाद लेखक से स्वतंत्र हो जाती है, क्योंकि वह भाषा में होती है। तीसरे स्तर पर जब पाठक कृति को पढ़ता है तो वह संकेत तो पाठ से ग्रहण कर रहा होता है, किंतु अर्थतंत्र उसे असीम संभावनाओं से युक्त कर देता है। पाठ का कोई निश्चित अर्थ नहीं होता बल्कि इसी कारण पाठक रचना का निर्माता बन जाता है। वह उसे अपने ढंग से पढ़ता है। इसके कारण पुस्तक का अर्थ हर पाठक के साथ बदलता जाता है। असल में कोई भी कृति दो व्यक्तियों के बीच मस्तिष्कहीन वस्तु है, जिसमें संकेतक तो हैं किंतु संकेतार्थ नहीं। संकेतक अपने संदर्भों में पढ़े और समझे जाते हैं, इससे अर्थ भी बदलता रहता है।

इस समस्या को कथाकार राजेंद्र यादव - लेखक और पाठक के बीच 'तीसरे आदमी' की अवधारण में बताते हैं - ''सर दर्द इसलिए कि बात और पहुँचने के यही तीसरा आदमी है। चूँकि वह तीसरा है, इसलिए उस पर हमें भरोसा नहीं है, मगर भरोसा करने को मजबूर भी हैं। कोई चारा भी नहीं है। इसलिए उसे खूब ठोक बजाकर प्रशिक्षित करते हैं, बार-बार 'प्राम्प्ट' तैयार करते हैं और शायद जिंदगी भर यही करते हैं।'' साहित्य के अर्थतंत्र को जोनाथन कुलर ने भाषा के संप्रेषण तंत्र से जोड़ते हुए कहा कि ''एक रचना और पाठक के बीच उसी तरह की भागीदारी बनती है, जैसी बातचीत में भाषा के माध्यम से।'' इस तरह लेखक भाषा और समाज के परिवेश में है। जहाँ लेखक की अलग-अलग भूमिका है। उसी भूमिका में उसका लेखन भी है। सर्जनात्मक लेखन में पुराने संबंध टूट जाते हैं और नये संबंध उभरते हैं, जो भाषा और समाज के अनुभवों से सूत्रित होते हैं, इसी कारण मनोभाषाशास्त्री एम. गैरेट का कथन है कि व्याकरण ही हमें छूट देता है कि हम अनपेक्षित बात कहें और जब कहें तो उसे समझा जाये। अंत में इस अंक के लेखकों को धन्यवाद। ❑

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

आलेख

पूर्वोत्तर में हिन्दी के बढ़ते कदम

डॉ. अच्युत शर्मा

पूर्व-अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
गौहाटी विश्वविद्यालय, गुवाहाटी, असम
9395199404, 9954072905
sarmaachyut291038@gmail.com

भाषाओं के महासमुद्र-रूपी भारतवर्ष का उत्तर-पूर्वी भाग यानी पूर्वोत्तर-असम, अरुणाचल प्रदेश, नागालैंड, मणिपुर, मेघालय, त्रिपुरा, मिजोरम और सिक्किम – इन तुलनात्मक रूप से छोटे-बड़े प्रान्तों का सुन्दर समाहार है। ये आठ प्रान्त इन दिनों 'अष्टलक्ष्मी' की आख्या से भी प्रसिद्ध हैं। पहले पूर्वोत्तर को 'बर असम' (बड़ा असम) नाम से जाना जाता था। परन्तु कालान्तर में इससे पृथक करके 1963 ई. में नागालैंड, 1972 ई. में मेघालय, मणिपुर, त्रिपुरा और 1987 ई. में अरुणाचल प्रदेश और मिजोरम प्रान्त बनाये गये। 2002 ई. में आर्थिक विकास के उद्देश्य को ध्यान में रखकर पूर्वोक्त सात प्रान्तों के साथ ही सिक्किम को भी 'उत्तर पूर्व परिषद' (North Eastern Council) में शामिल कर लिया गया। इस प्रकार आज का पूर्वोत्तर सात बहनों एवं एक भाई का अनोखा परिवार है।

पूर्वोत्तर जैविक वैचित्र्य (Bio-diversity) एवं भाषिक, साहित्यिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक इत्यादि विविधताओं के लिए जाना जाता है। 'चार कोस पर पानी बदले आठ कोस पर बानी' की कहावत यहाँ पूर्णतः सार्थक प्रमाणित होती है। प्रकृति की रम्यस्थली इस पूर्वोत्तर में इन दिनों भारोपीय, चीनी (तिब्बती-वर्मी शाखा), द्रविड़, ऑस्ट्रिक इत्यादि भाषा-परिवारों की लगभग ढाई सौ भाषाएँ, उप-भाषाएँ, बोलियाँ और उपबोलियाँ प्रचलित हैं। यहाँ लेपचा, अका, डफला, मिसिंग (मिरि), मिश्मी, आबर, खामटि, नोक्टे, सिंगफौ, आओ, आंगामी, कुकि चीन, मेइतेइ, लुशेइ, चकमा, खासी, गारो, मिजो, मणिपुरी, त्रिपुरी, कोकबोरक, असमीया, बड़ो, डिमासा, तिवा (लालुंग), देउरी (सुतीया), राभा, कार्बि (मिकिर), टाइ (आहोम), साओंताली, मुण्डा, खरिया, भूमिज, थडो, विष्णुपुरी, म्हार, होलम, बांग्ला, नेपाली, उड़िया, तेलुगु, मलयालम, मराठी, पंजाबी, उर्दू, अंग्रेजी, हिन्दी इत्यादि अनेकानेक भाषिक रूप प्रचलन में हैं।

भारतीय गणतंत्र का पूर्वोत्तर वैसे तो अहिन्दीभाषी अथवा हिन्दीतर-भाषी क्षेत्र कहलाता है, परन्तु यहाँ के आठों प्रान्तों में कमोबेश हिन्दीभाषी लोग भी विद्यमान हैं। उदाहरणस्वरूप 2011 ई. की जनगणना के अनुसार असम प्रांत में लगभग सोलह लाख हिन्दीभाषी लोग रह रहे हैं। देशाटन, तीर्थ-भ्रमण, व्यापार-वाणिज्य एवं अन्य आजीविकाओं के चलते हिन्दीभाषी लोगों का पूर्वोत्तर के अलग-अलग प्रान्तों में आगमन हुआ और उनलोगों के साथ हिन्दी भाषा भी यहाँ आयी। यह सिलसिला काफी पहले से ही चलता आ रहा है। हिन्दी भाषा से पूर्वोत्तर के स्थानीय लोग भी प्रभावित हो रहे हैं। आज हिन्दी पूर्वोत्तर की अन्यतम प्रमुख सम्पर्क भाषा है। किसी समय असम प्रान्त की प्रमुख भाषा असमीया का पूर्वोत्तर के दूसरे प्रान्तों में व्यापक प्रभाव था। अरुणाचल प्रदेश यानी पहले के 'नेफा' (NEFA) क्षेत्र में प्रचलित 'नेफामिज', नागालैंड में प्रचलित 'नागामिज', मेघालय में प्रचलित 'खासीमिस' और 'गारोमिज' इस बात के प्रमाण हैं, परन्तु आज हिन्दी ने इन मिश्रित (असमीया यानी 'आसामिज' और स्थानीय भाषा के मिले-जुले रूप) भाषाओं का स्थान ले लिया है।

पूर्वोत्तर में हिन्दीभाषी लोगों के आगमन के कारण ही नहीं, अपितु स्वाभाविक रूप से ही संस्कृत भाषा की अन्यतम योग्य उत्तराधिकारिणी हिन्दी भाषा के प्रति पूर्वोत्तर-निवासियों के मन में एक विशेष प्रकार की रागात्मकता रही है। भारतवर्ष के दस प्रान्तों की राज्यभाषा, देश की राजभाषा, गाँधीजी द्वारा उद्घोषित एवं जनसाधारण द्वारा स्वीकृत राष्ट्रभाषा, देश की प्रमुख संपर्क भाषा तथा एक अन्यतम विश्वभाषा के रूप में हिन्दी पूर्वोत्तर के निवासियों के लिए दिल के अत्यन्त करीब है। हिन्दी भाषा के प्रति यह प्रेम और आकर्षण असम-सहित पूर्वोत्तर के निवासियों के मन में दसवीं-ग्यारहवीं सदी से ही रह रहा है।

दसवीं से चौदहवीं सदी के भीतर रचित सिद्ध और नाथ साहित्य के रचयिताओं में से मत्स्येन्द्रनाथ, गोरखनाथ, लुइपा या लौहित्यपाद और सरहपा प्राचीन कामरूप यानी प्राचीन असम के लोग बताए जाते हैं। प्राचीन असमीया साहित्य की अमूल्य निधि 'चर्यापद' अथवा 'चर्यागीति' के रचयिताओं में से कई लोगों का संबंध हिन्दी-क्षेत्र से रहा है। अत: कहा जा सकता है कि चर्यापदों के जरिए ही प्राचीन असम की जनता का रागात्मक संबंध हिन्दी के साथ स्थापित हुआ था। तत्पश्चात् श्रीमन्त शंकरदेव (1449ई.-1568ई.), श्रीश्री माधवदेव एवं अन्य वैष्णव गुरुओं द्वारा बरगीतों एवं अंकीया नाटों में प्रयुक्त ब्रजावली (असमीया, ब्रज और मैथिली मिश्रित) नामक कृत्रिम साहित्यिक भाषा के जरिए तत्कालीन असम की जनता का हिन्दी के भाषिक रूप के साथ व्यापक परिचय हुआ।

आगे 1794 ई. में श्रीकान्त सूयविप्र द्वारा हिन्दी के महाकवि गोस्वामी तुलसीदास द्वारा विरचित 'रामचरितमानस' के लंकाकाण्ड का असमीया पद्यानुवाद प्रस्तुत किया जाना, कवि राम द्विज द्वारा हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य 'मृगावती' के आधार पर 'मृगावती चरित' अथवा 'साहापरीर उपाख्यान 'नामक असमीया प्रेमाख्यानक काव्य और किसी अज्ञात असमीया कवि द्वारा हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य 'मधुमालती' के आधार पर इसी नाम से एक और असमीया प्रेमाख्यानक काव्य रचा जाना हिन्दी के प्रति असम-सहित पूर्वोत्तर के लोगों के आकर्षण के प्रमाण हैं।

1918 ई. में इन्दौर में होनेवाले 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' के अधिवेशन में गाँधीजी के द्वारा अपने अध्यक्षीय भाषण के जरिए हिन्दी को स्वतंत्र भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में उद्घोषित किये जाने से, इसी वर्ष दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा-मद्रास की स्थापना होने से, गाँधीजी द्वारा अपने अठारह-सूत्री रचनात्मक कार्यक्रम में हिन्दी के प्रचार-प्रसार को भी शामिल किये जाने से और स्वतंत्रता आंदोलन के समानान्तर राष्ट्रभाषा हिन्दी का आन्दोलन भी चल निकलने से असम के लोग भी हिन्दी के प्रति अग्रसर होते गये। देश-प्रेम की भावना से उद्वेलित होकर भुवन चन्द्र गगै जी ने 1918 ई. में शिवसागर के निकट बकता नामक गाँव में 'असम पॉलिटेकनिक इंस्टीट्यूट' की स्थापना की - जिसमें कृषि-कर्म, लौह-कर्म, काँसे-पीतल के कार्य इत्यादि के अलावा तीसरी कक्षा से आठवीं कक्षा तक अनिवार्य और नौवीं-दसवीं

में ऐच्छिक विषय के रूप में हिन्दी को शामिल किया गया। 1928 ई. में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की सम्बद्धता प्राप्त होने पर इसी विश्वविद्यालय के सहयोग से गगैजी द्वारा स्थापित इस शिक्षण-प्रशिक्षण संस्थान में विधिवत् हिन्दी की पढ़ाई शुरू हुई। यह कदम मील का पत्थर साबित हुआ।

1926 ई. को गुवाहाटी के निकट पाण्डु नगर में आयोजित भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन में गाँधीजी-सहित भारतीय नेतागण की उपस्थिति से हिन्दी का वातावरण बना। सन् 1934 में हरिजन सेवक कार्यक्रम के सिलसिले में गाँधीजी के असम-आगमन के दौरान यहाँ के प्रमुख जन-नेता गोपीनाथ बरदलै के साथ उनका हिन्दी-प्रचार के सन्दर्भ में व्यापक विचार-विमर्श हुआ। इसी वर्ष गाँधीजी के आशीर्वाद और काकासाहब कालेलकर की आज्ञा को शिरोधार्य करके बाबा राघवदास असम आए और असम-सहित पूरे पूर्वोत्तर में सिलसिलेवार ढंग से हिन्दी प्रचार-कार्य शुरू हुआ। 1936 ई. में राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी और राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन की प्रेरणा से महाराष्ट्र में 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति-वर्धा' की स्थापना हुई। इसके अन्यतम कर्णधार काका साहब कालेलकर ने असम-सहित पूरे पूर्वोत्तर भारत में हिन्दी-प्रचार-कार्य पर ध्यान दिया। 1937 ई. के अन्तिम भाग में काका साहब कालेलकर जी बाबा राघवदास, दादा धर्माधिकारी, मोटरू सत्यनारायण और श्रीमन्नारायण अग्रवाल जी के साथ असम आए। उनलोगों ने असम के प्रमुख नेताओं और अग्रणी व्यक्तियों के साथ हिन्दी-प्रचार-कार्य के बारे में विचार-विमर्श किया।

1938 ई. के उत्तरार्द्ध में 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा-मद्रास' के कर्मठ प्रचारक यमुना प्रसाद श्रीवास्तवजी 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति-वर्धा' के प्रादेशिक संचालक बनकर असम आए तो यहाँ के हिन्दी-प्रचार-कार्य को नयी गति मिली। 21 सितम्बर सन् 1938 को हिन्दी-प्रेमी लोकप्रिय गोपीनाथ बरदलै के नेतृत्व में असम में कांग्रेस-संयुक्त मन्त्रिमंडल ने प्रशासन का दायित्व-भार संभाला, तो असम में स्कूली स्तर पर हिन्दी-शिक्षण के शुभारंभ का पथ प्रशस्त होने में शीघ्रता आ गयी। इसी बीच वर्धा समिति की ओर से लगे हिन्दी अध्यापन शिविर में हिन्दी की शिक्षा प्राप्त कर रहे तीन असमीया नवयुवक - रजनीकान्त चक्रवर्ती, नवीन चन्द्र कलिता और हेमचन्द्र भट्टाचार्य प्रशिक्षित होकर 1938 ई. में असम वापस आ गये। इस दौरान काका साहब कालेलकर, बाबा राघवदास, दादा धर्माधिकारी, यमुना प्रसाद श्रीवास्तव आदि महानुभावों ने पूरे असम का दौरा करके हिन्दी-प्रचार-कार्य का जायजा लिया। वे लोग एक प्रतिनिधिमंडल के रूप में असम के तत्कालीन प्रधानमंत्री (मुख्यमंत्री) गोपीनाथ बरदलै से मिले और उनसे असम में राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार-कार्य के बारे में चर्चा की। चर्चा के दौरान गोपीनाथ बरदलै ने गुवाहाटी में ही एक राष्ट्रभाषा प्रचार समिति स्थापित करने का सुझाव दिया, ताकि हिन्दी-प्रचार-कार्य सुचारु रूप से चल सके।

आखिरकार 3 नवम्बर, 1938 ई. को 'असम हिन्दी प्रचार समिति-गुवाहाटी' (परवर्ती समय में असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति-गुवाहाटी) की स्थापना हुई। इसके प्रतिष्ठाता अध्यक्ष गोपीनाथ बरदलै जी और संचालक (मंत्री) यमुना प्रसाद श्रीवास्तव जी बने। असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति-गुवाहाटी के तत्वावधान में असम सहित पूरे पूर्वोत्तर में हिन्दी प्रचार-प्रसार का कार्य सुचारु रूप से सम्पन्न होने लगा। 11 फरवरी, 1946 ई. को गोपीनाथ बरदलै जी के नेतृत्व में असम प्रदेश में कांग्रेस मंत्रिमंडल गठित हुआ, तो स्कूलों में माध्यमिक स्तर पर हिन्दी-शिक्षण को अधिक बढ़ावा मिला, क्योंकि बरदलैजी ने माध्यमिक स्कूलों में हिन्दी शिक्षकों की नियुक्ति की पूरी व्यवस्था की। कालान्तर में उच्चतर माध्यमिक, स्नातक एवं स्नातकोत्तर स्तरों पर भी हिन्दी के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था होने लगी। 1956 ई. को तीनसुकीया कॉलेज में हिन्दी विभाग की स्थापना हुई। तत्पश्चात् असम के विभिन्न कॉलेजों में हिन्दी विभाग की स्थापना होती गई।

31 अक्टूबर, 1970 ई. को पूर्वोत्तर के मातृ-विश्वविद्यालय स्वरूप गौहाटी विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग की स्थापना हुई, तो हिन्दी भाषा-साहित्य के अध्ययन-अध्यापन, शोध-अनुसंधान का नया अध्याय

प्रारंभ हुआ। कालान्तर में डिब्रुगढ़ विश्वविद्यालय (अधीनस्थ कॉलेजों में), असम विश्वविद्यालय, तेजपुर विश्वविद्यालय, कॉटन विश्वविद्यालय इत्यादि में हिन्दी विभागों के खुल जाने से असम में हिन्दी के उच्चस्तरीय अध्ययन-अध्यापन तथा शोध-अनुसंधान में क्रमशः तेजी आती गयी। उत्तर पूर्व पर्वतीय विश्वविद्यालय-शिलांग, मणिपुर विश्वविद्यालय, नागालैण्ड विश्वविद्यालय, राजीव गांधी विश्वविद्यालय (अरुणाचल प्रदेश में स्थित), मिजोरम विश्वविद्यालय, त्रिपुरा विश्वविद्यालय और सिक्किम विश्वविद्यालय-पूर्वोत्तर के इन सभी विश्वविद्यालयों में हिन्दी विभाग की स्थापना से हिन्दी भाषा-साहित्य-संस्कृति के अध्ययन-अध्यापन तथा शोध-अनुसंधान का नया दौर चल रहा है।

इधर असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति-गुवाहाटी की तरह ही असम राज्य राष्ट्रभाषा प्रचार समिति-जोरहाट, मणिपुर हिन्दी प्रचार परिषद, मणिपुर हिन्दी प्रचार सभा, नागालैण्ड राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, पूर्वोत्तर हिन्दी अकादमी-शिलांग, मेघालय राज्य राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, मिजोरम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, त्रिपुरा राज्य राष्ट्रभाषा प्रचार समिति इत्यादि के भगीरथ प्रयत्नों से पूर्वोत्तर के जनसाधारण के बीच हिन्दी के प्रचार-कार्य चलते रहने से राष्ट्रभाषा हिन्दी के अनुकूल एक अच्छे वातावरण का निर्माण हो रहा है। हिन्दी के जरिए पूर्वोत्तर के निवासी राष्ट्रीय मुख्यधारा में जुड़ते जा रहे हैं। हिन्दी शिक्षक प्रशिक्षण केन्द्र - दिफु, हिन्दी शिक्षक प्रशिक्षण केन्द्र-मिसामारी (तेजपुर), राजकीय हिन्दी शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय-उत्तर गुवाहाटी और केन्द्रीय हिन्दी संस्थान-आगरा की गुवाहाटी, शिलांग, दिमापुर शाखाओं के प्रयास से हिन्दी शिक्षकों के प्रशिक्षण-कार्य सुचारु रूप से चल रहे हैं। पूर्वोत्तर में हिन्दी की मौलिक साहित्य-सर्जना भी हो रही है, स्थानीय भाषाओं और हिन्दी में पारस्परिक अनुवाद-कार्य भी हो रहे हैं, 'दैनिक पूर्वोदय', सेंटिनल', 'पूर्वांचल प्रहरी', 'प्रातः खबर' जैसे हिन्दी अखबार भी पूर्वोत्तर से निकल रहे हैं। ऐसी स्थिति में पुण्यभूमि भारत के पूर्वोत्तरी भाग में हिन्दी भाषा के बढ़ते कदम तेजी से आगे बढ़ते जा रहे हैं। ❑

हिंदी भाषा का प्रश्न स्वराज्य का प्रश्न है। अखिल भारत के परस्पर व्यवहार के लिए ऐसी भाषा की आवश्यकता है, जिसे जनता का अधिकतम भाग पहले से ही जानता-समझता है। और हिंदी इस दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ है। राष्ट्रीय व्यवहार में हिंदी को काम में लाना देश की शीघ्र उन्नति के लिए आवश्यक है।

- महात्मा गांधी

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

आलेख

हिन्दी का भविष्य : चुनौतियाँ एवं संभावनाएँ

प्रो. (डॉ.) कंचन शर्मा

मणिपुर केंद्रीय विश्वविद्यालय
संप्रति - विजिटिंग प्रोफेसर
(आई.सी.सी.आर., हिन्दी चेयर)
भारत विद्या विभाग
सोफिया विश्वविद्यालय, बुल्गारिया
91-9434308852

मेरे सामने हिन्दी या अन्य कोई भी भाषा जब 'भविष्य' की दृष्टि से विचारणीय होती है तब वह 'हमारी सांस्कृतिक अस्मिता' के रूप में सामने होती है। सत्युग, त्रेतायुग, द्वापरयुग से चलकर भारतीय संस्कृति की परंपरा अब कलियुग की साक्षी बन रही है। यह भी एक ऐतिहासिक यथार्थ है कि भारत पर मौर्य साम्राज्य, शकहुण साम्राज्य, मुगल साम्राज्य और ब्रिटिश साम्राज्य का दीर्घकालीन शासन रहा है। अत: हमारी यह भारतीय संस्कृति झंझावातों से खेलकर एक सामासिक संस्कृति के रूप में विकसित हुई है। भारतीय संस्कृति की पहचान इसकी सहिष्णुता, उदारता और प्रेम भाव है। 'वसुधैव कुटुम्बकम' हमारा मंत्र है अहिंसा हमारा धर्म, हमारी विशिष्टता 'अनेकता में एकता' ही हमारी पहचान है। कवि मोहम्मद इकबाल ने भारतीय संस्कृति को सटीक पारिभाषित किया है -

'यूनान -ओ मिस्त्र-ओ-रोमां सब मिट गए जहाँ से।
अब तक मगर है बाकी नाम-ओ-निशाँ हमारा॥
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी।
सदियों रहा है दुश्मन दौर-ए-जमाँ हमारा'[1]

हिन्दी के विषय में जब हम बात कर रहे हैं तो मेरे सामने दो मुख्य बिन्दु है। पहला, अपने देश भारत के संदर्भ में और दूसरा, विदेशों अथवा वैश्विक संदर्भ में। 15 अगस्त, 1947 को भारत अंग्रेजी दासता से मुक्त हुआ और इस तरह हमें स्वाधीन हुए 76 वर्ष हो गए। पाकिस्तान भी हमारे साथ ही स्वाधीन हुआ और बांग्लादेश हमसे 24 वर्ष बाद स्वाधीन हुआ। पाकिस्तान और बांग्लादेश, जो पहले भारत का ही हिस्से थे, जब वे स्वतंत्र राष्ट्र हुए तो उनके यहाँ भी भाषा की वो समस्या नहीं हुई, जो हमारे यहाँ हुई। पाकिस्तान की राष्ट्रभाषा है उर्दू, बांग्लादेश की राष्ट्र भाषा है बंगाली। हमारे अन्य पड़ोसी राष्ट्रों की भी अपनी अपनी राष्ट्रभाषा है। चीन की चीनी,जापान की जापानी, नेपाल की नेपाली, श्रीलंका की सिंहली और भूटान की जोड़खा। विश्व के सभी देशों की अपनी एक राष्ट्रभाषा है, भले ही उस देश की आधिकारिक भाषा एक से अधिक हो। भारत की भी आधिकारिक भाषा एक से अधिक है, हिन्दी और अंग्रेजी दोनों भारत की

आधिकारिक भाषा है, परंतु राजकाज अंग्रेजी भाषा में अधिक होता है। फिर समस्या हिन्दी के परिप्रेक्ष्य में क्या? क्यों है? .... वह समस्या है। हिन्दी को भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में सम्मान देने का और राजभाषा के रूप मेन काम करने की इच्छा शक्ति का अभाव। विश्व के सभी देशों में जनसंख्या के आधार पर अधिकांश बोली जानेवाली भाषा उस देश की राष्ट्रभाषा होती है। प्रतिशत अनुरूप एक से अधिक राजकाज की भाषा या आधिकारिक भाषा हो सकती है। यह एक से अधिक भाषा अन्य अधिसंख्य लोगों की मातृभाषा भी होती है।

अमेरिका में 335 भाषाएँ बोली जाती हैं। सबसे अधिक अंग्रेजी फिर स्पैनिश, फ्रेंच, चाइनीज, कोरियाई, जर्मन, वियतनामी अरबी, टागालोग, रूसी, जैसी भाषाएँ हैं, लेकिन यहाँ कोई आधिकारिक भाषा नहीं है, क्योंकि उनका मानना है कि देश विविधतापूर्ण है और विभिन्न भाषाओं में बोलनेवाले की बड़ी आबादी है। इसलिए एक भाषा को आधिकारिक भाषा घोषित करना व्यावहारिक नहीं है और यह अमेरिका की ऐतिहासिक और वर्तमान भाषाई विविधता को नजरअंदाज करती है। ऐसी स्थिति के बावजूद अमेरिका की भी राष्ट्रभाषा है 'अंग्रेजी', क्योंकि सर्वाधिक जनसंख्या 280 मिलियन से अधिक लोग अंग्रेजी बोलते हैं। भारत जिसकी जनसंख्या 142 करोड़ 86 लाख है, जिसकी 53 करोड़ की मातृभाषा हिन्दी है, यानी 43.63 फीसदी की और 13.9 करोड़ की यह दूसरी भाषा है। वहाँ हिन्दी आधिकारिक भाषा तो है, परन्तु राष्ट्रभाषा नहीं।

हमारा देश 200 वर्षों तक अंग्रेजों का गुलाम रहा। क्यों रहा? क्योंकि राजवाड़ों के बीच आपसी भाईचारा नहीं था। सभी स्वयं को श्रेष्ठ समझते और दूसरों को अपने अधीन करने की नीयत रखते थे। इसी कमजोरी ने उन्हें अंग्रेजों से मात दिलाई। यदि सभी एक-दूसरे का साथ देते तो ये मुट्ठी भर अंग्रेज -धूल में उड़ गए होते। वहीं जब स्वाधीनता आंदोलन का संघर्ष शुरू हुआ, तब यही राजवाड़े, जो अंग्रेजों के गुलाम थे, आजादी के लिए एक होने लगे। अपनी श्रेष्ठता का दम्भ त्याग कर अपनी-अपनी सामर्थ्य भर इन राज्यों ने, विभिन्न समूहों ने, सामान्य व्यक्तियों ने योगदान दिया, तब जाकर स्वाधीनता का अमृत प्राप्त हुआ। राष्ट्रभाषा का अमृत भी तभी प्राप्त होगा, जब भारतवासी क्षेत्रीय भाषा के वर्चस्व की लड़ाई छोड़ेंगे और अपनी-अपनी मातृभाषा के विलोपन के भय से मुक्त होंगे। भारत में लगभग 453 भाषाएँ बोली जाती है। 22 भाषा संविधान में स्वीकृत भी हैं। 'हिन्दी' सभी भाषाओं को साथ लेकर चलती है। हिन्दी को देश की राष्ट्रभाषा के रूप में ही स्वीकार किया जाना चाहिए, क्योंकि इसका इतिहास व्यापक है, संकीर्णताओं से मुक्त है। मेरी समझ में यह कभी नहीं आया कि 'हिन्दी किसी पर थोपी नहीं जाएगी' ऐसा कहने वालों का आशय क्या है? क्या अंग्रेजी सबकी सहमति से विद्यालयों, विश्वविद्यालयों, कार्यालयों में चला दी गई है? इसका जवाब है इनके पास? क्या इन्हें यह पता नहीं कि जिस अंग्रेजी की ये हिमायत कर रहे हैं उस भाषा को बोलने वाले अंग्रेजों ने भी यह समझ लिया था कि भारत में हिन्दी और अन्य प्रमुख भारतीय भाषाएँ सीखे बिना न तो सही ढंग से राज-काज चल पाएगा न जनता के साथ समुचित सम्पर्क स्थापित किया जा सकेगा। अंग्रेजों ने फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना की, स्वयं हिन्दी सीखी और अपने अधिकारियों के लिए हिन्दी भाषा का ज्ञान प्राप्त करना अनिवार्य कर दिया। आज अपने ही देश में 'हिन्दी' के संबंध में इस तरह के आक्षेप हास्यास्पद और पीड़ादायक हैं। सच पूछिए तो यह मसला हिन्दी के संबंध में स्वाधीनता संग्राम के दौर में था ही नहीं। यह सबकुछ यानी 'हिन्दी का 'हव्वा' - स्वाधीनता प्राप्ति के बाद ही बनाया गया। पराधीन भारत को एकता की लड़ी में जिस भाषा ने पिरोया था, जिस : भाषा ने राष्ट्रीयता का बोध कराया था, जो भाषा स्वतंत्रता का पर्याय बन गई थी, आजादी के बाद वही भाषा भाषिक संघर्ष का कारण बना दी गई। इसलिए आजादी के 76 वर्ष बाद हिन्दी भाषा के भविष्य पर विचार करना अनीवार्य हो उठता है।

स्वाधीनता आंदोलन के बहुत पहले उन्नीसवीं सदी में बीसवीं सदी के शुरूआती वर्षों (1800 -1930) के बंगाल में सामाजिक सांस्कृतिक और धार्मिक सुधार आंदोलन हुए फलस्वरूप देशभक्ति की भावना एवं राष्ट्रवादी चेतना का उत्थान हुआ, साहित्य, कला, संस्कृति

के क्षेत्र में प्रगति हुई, आधुनिकता का प्रवेश हुआ, ज्ञान के आलोक ने रूढ़ियों का भंजन किया, जिसे बंगाल के नवजागरण की संज्ञा दी गई। इसे साँस्कृतिक पुनर्जागरण का आंदोलन भी कहा गया। इस सांस्कृतिक पुनर्जागरण के पुरोधा और ब्रह्म समाज के जनक राजा राममोहन राय ने 1829 में बंगदूत पत्रिका निकाली जिसमें हिन्दी को प्रमुख स्थान दिया। वे स्वयं 'वेदान्त' का हिन्दी भाष्य लिखकर उस पत्रिका में प्रकाशित करते थे। बंगाल से ही हिन्दी की पहली पत्रिका 'उदन्त मार्तण्ड' 1829 में प्रकाशित हुई जिसके सम्पादक जुगल किशोर शुक्ल जी थे। सन् 1850 में तारामोहन मित्र ने हिन्दी की पत्रिका 'सुधाकर' कलकत्ते से निकालना शुरू किया। 1854 में हिन्दी का प्रथम समाचार पत्र 'समाचार सुधावर्शन' भी श्री श्यामसुन्दर सेन के सम्पादकत्व में कलकत्ते से प्रकाशित हुआ। पंजाब में हिन्दी का प्रचार-प्रसार करनेवाले बंगाल के ही नवीनचन्द्र राय थे। इनकी सुपुत्री हेमन्त कुमारी ने बाद में चलकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार में ही अपने-आपको अर्पित कर दिया। उन्होंने 1888 में 'सुगृहणी पत्रिका' [2] का सम्पादन किया। बंगाल के ही आचार्य केशवचन्द्र सेन के आग्रह पर स्वामी दयानन्द सरस्वती ने आर्य समाज का सैद्धांतिक ग्रंथ 'सत्यार्थप्रकाश' हिन्दी में लिखा।

गांधीजी ने भी अफ्रीका और मॉरिशस में देखा कि भारत के पूरब, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण से आए हुए मजदूर अपनी-अपनी भिन्न मातृभाषा के बावजूद एक-दूसरे से टूटी-फूटी हिन्दी में ही बात कर रहे थे। यही स्थिति उन्हें भारत की धरती पर भी मिली चाहे वह हरिजनों की बस्ति हो या फिर अन्य प्रातों-क्षेत्रों के लोगों के बीच का सम्पर्क हो हिन्दी अपने अंदाज में उपस्थित थी। इसलिए उन्होंने हिन्दी को अपने रचनात्मक कार्यक्रम का अभिन्न अंग बना लिया था और वे कांग्रेसियों से निरंतर हिन्दी सीखने को कहते रहते थे। इतना ही नहीं उन्होंने अपने पुत्र श्री देवदास गांधी को 1918 में दक्षिण में हिन्दी के प्रचार-प्रसार का दायित्व भी सौंपा।

लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ने भी कहा था कि 'हिन्दी ही सम्पूर्ण देश की राष्ट्रवाणी बनने योग्य है।' तिलक जी के आहवान पर ही तमिलनाडु के महान कवि सुब्रह्मण्यम भारती ने अपनी पत्रिका के माध्यम से हिन्दी पाठ का प्रकाशन आरंभ किया था। आश्चर्य की बात तो यह है कि तमिलनाडु में जिस क्षेत्रिय राजनीति के चलते हिन्दी का तथा-कथित विरोध होता है, उस क्षेत्रीय राजनीति के जनक श्री रामस्वामी नायकर के घर में हिन्दी प्रशिक्षण केन्द्र आरंभ किया गया था।' [3] जिस उत्तरपूर्व विशेषकर मणिपुर के संदर्भ में हिन्दी विरोध की बात की जाती है, वहाँ भी अठारहवीं शताब्दी के प्रारंभिक दौर में गौड़िय वैष्णव सम्प्रदाय का प्रचार-प्रसार हो रहा था और कृष्णभक्ति की धारा के साथ-साथ हिन्दी भी पल्लवित हो रही थी। राजनैतिक स्तर पर भी 18वीं शताब्दी के अंत और 19वीं शताब्दी के प्रारंभ से ही स्वाधीनता की चेतना मणिपुरियों में राष्ट्रीय एकता की लौ जलाती रही, जिसकी अभिव्यक्ति नवजागरण काल से आज तक साहित्यिक रूप में हो रही है। 1930 में हिन्दी की प्रथम पत्रिका 'ललित मंजरी' के साथ मणिपुर में हिन्दी पत्रकारिता का सफर शुरू हुआ। वर्तमान में भी मणिपुर हिन्दी परिषद की पत्रिका 'महीप', नागा हिंदी विद्यालय की पत्रिका 'लटचम', सड़ाइ एक्स्प्रेस जैसी हिन्दी पत्रिकाएँ साहित्यिक और वैचारिक वातावरण का निर्माण कर रही हैं। मणिपुर में तो हिन्दी को 'राष्ट्रभाषा' ही कहा जाता है। मेरे कहने का अभिप्राय यह कि जिस उत्तरपूर्व को हिन्दी विरोधी एक गड़ के रूप में सामने रखा गया है वहाँ की भी जमीनी स्थिति भिन्न है।

हिन्दी साहित्य की बात करें तो यहाँ भी प्रथम फारसी, संस्कृत, हिंदी में शब्दकोश - 13वीं सदी में अमीर- खुसरो ने तैयार किया 'खालिक बारी'। वे जन्म से भारतवासी भी नहीं थे। उन्होंने ही सबसे पहले अपनी भाषा के लिए 'हिन्दवी' का उल्लेख किया था। 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में सरहप्पा- पूर्व से, आंडाल- दक्षिण से, मीराबाई, पश्चिम से तो प्रेमचंद- उत्तर भारत से हैं। इसी तरह बंगमहिला, गोरखनाथ, वल्लभाचार्य, मुल्ला दाउद, संत ज्ञानेश्वर आदि आदि से 'हिंदी साहित्य का इतिहास' केवल 'हिन्दी साहित्य' की सीमा तक सीमित न रहकर भारत की सामासिक - सांस्कृति के साहित्य का इतिहास बन गया है। हिन्दी भाषा की इस शक्ति को 1904 में कवि मोहम्मद इकबाल ने पहचाना

था, भाषा ही हमारी पहचान है इसलिए उन्होंने 'हिंदी हैं हम, वतन है हिंदोस्तान हमारा' लिखा। यह इस बात का भी प्रमाण है कि उस समय हिंदी अपने विभिन्न रूपों में भारत में व्यवहार में लायी जा रही थी।

दरअसल हिन्दी को संपूर्ण देश की राष्ट्रवाणी बनाने का कार्य अहिन्दी भाषी- लोगों ने आरंभ किया और इसके पीछे राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कारण स्पष्ट था। 'उन दिनों सामाजिक सुधार अथवा जन-आन्दोलन के लिए जितने भी संगठन निर्मित हुए, उनकी आवश्यकता के अनुरूप देश की एक भाषा को विकसित और संपुष्ट करना अनिवार्य हो गया था और यह भाषा हिन्दी ही हो सकती थी। इस हिन्दी की आवश्यकता थी आर्य समाज को, ब्रह्म समाज को, प्रार्थना समाज को थियोसोफिकल सोसाइटी को और स्वाधीनता आंदोलन को नेतृत्व देनेवाली संस्थाओं को। अब प्रश्न है कि हिन्दी की विरासत इतनी समृद्ध है तो हिन्दी के भविष्य की चिंता हमें क्यों है? निसंदेह आपका उत्तर होगा 'हिंदी की वर्तमान स्थिति'। मुझसे मूछें तो मैं 'हिन्दी की वर्तमान स्थिति' से बिलकुल भी निराश नहीं हूँ।

1. बल्कि समय के साथ हिन्दी के राष्ट्रभाषा बनने की आशा मजबूत होती जा रही है, क्योंकि हिंदी पहले भी राष्ट्रभाषा थी, आज भी आम नागरिक हिन्दी को अपनी राष्ट्रभाषा ही मानता है और जिस तरह वर्तमान सरकार राष्ट्र की अस्मिता को लेकर सजग है, बहुत जल्द ही हिन्दी भारत की राष्टभाषा के रूप में सांविधानिक रूप में स्वीकारी जाएगी; इसमें मुझे संदेह नहीं ।

2. अब वह बात जो सच में हिन्दी के लिए बड़ी चुनौती है वह यह कि विश्व के प्राय: सभी देशों में शिक्षा का माध्यम उस देश की राष्टभाषा है और हमारे देश में तो फिलहाल कोई राष्टभाषा है ही नहीं। दूसरे यह कि हिन्दी-विरोधियों का यह आक्षेप भी रहा है कि हिन्दी भाषा-अन्य विषयों में उच्च शिक्षा देने का माध्यम बनने में सक्षम नहीं है। सो, आज इसमें भी कुतर्क की गुंजाइश नहीं बची। मध्यप्रदेश सरकार द्वारा एम. बी. बी. एस. यानी चिकित्साशास्त्र की पढ़ाई हिन्दी में करवाने की, जो तैयारियाँ हो रही हैं, वह इसका सही जवाब दे देगी, और साथ ही अन्य विषयों के संदर्भ में संभावनाओं के द्वार भी खोलेगी।

3. मेरी दृष्टि में एक चुनौती और है-वह है टंकन के संबंध में। संगणक टंकन की दृष्टि से किसी एक ही लिपि के स्वरूप को स्वीकार करना होगा। श्रीलिपि, कृतिदेव, मंगल डेवलिस, युनिकोड, जैसे स्वरूप तो हैं लेकिन वर्तनी की एकाकारिता नहीं है, फिर कृतिदेव ङ्क रेमिंगटन टाइपिंग में किया जाता है जो अब आउटडेटेड है। इनस्क्रिप्ट टाइपिंग का विकास भारत सरकार के राजभाषा-विभाग ने किया था (1. यह सभी भारतीय भाषाओं हेतु एक कुंजीपटल विन्यास होने से एक भाषा हेतु टाइपिंग सीखने पर सभी भाषाओं हेतु आ जाती है) और तीसरा है फोनेटिक टाइपिंग- यह हिंदी टाइप करने का सबसे आसान और वर्तमान में सर्वाधिक प्रचलित तरीका है। अत: टाइपिंग की एक ही सर्व मान्य फॅन्ट (Font) स्वीकृत होने से हिंदी - आसान हो जाएगी।

4. चौथी चुनौती सबसे गंभीर है भारत के उन नागरिकों के मन का भय-दूर करना जिनकी मातृभाषा हिंदी नहीं है, और इसलिए उन्हें लगता है कि उनकी मातृभाषा को 'हिन्दी' से संकट है। तो आज हमारे पास इसका भी जवाब है - हमारी नई शिक्षा नीति। पूर्व शिक्षा मंत्री डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' जी की दूरदर्शिता और बहुत दूर तक आम जनता की इस आशंका के अनुभव ने उन्हें एक 'वैज्ञानिक-व्यवहारिक-रोजगारोन्मुख' शिक्षा नीति तैयार करने की प्रेरणा दी होगी। इसके लिए वे साधुवाद के पात्र हैं।

'निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल
बिनु निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को शूल
विविध कला शिक्षा अमित, ज्ञान अनेक प्रकार
सब देसन से लै करहू, भाषा महि प्रचा'[4]

भारतेन्दु जी के इन शब्दों को डॉ. रमेश पोखरियाल निशंक जी ने नई शिक्षा नीति का मूल मंत्र ही बना दिया है। बुनियादी शिक्षा की सुविधा मातृभाषा में देकर- नई शिक्षा नीति ने 'हिय के शूल' को मिटा दिया है और मातृभाषाओं के विलोपन के संकट का भय भी हमारे मन से जाता रहा है।

5. पाँचवीं चुनौती है अनुवाद के संदर्भ में तो चिकित्साशास्त्र के हिन्दी में प्रस्तुतिकरण के बाद यह

चुनौती भी आसान होने को है। साहित्य, विज्ञान, समाज विज्ञान के विषय तो पहले से ही हिन्दी में हैं, अब तकनीकि शिक्षा-ज्ञान भी हिन्दी का जामा पहन लेगी। यह कार्य दुरूह कतई नहीं है फिर हिन्दी का शब्द भण्डार इतना विशाल और उदार हैं कि इस दिशा में भी सफलता मिलेगी ही। आवश्यक होगा की नवीन शब्द-ग्रहण में उनके व्यावहारिक - लोकग्राह्य स्वरूप को ही सम्मिलित किया जाए।

देखिए अंग्रेजी की अंग्रेजियत का भूत भी अर्थहीन है, क्योंकि वैश्विक स्तर पर यदि उर्दू के साथ ग्रहण करें तो हिन्दी का स्थान तीसरा है और स्वतंत्र रूप में देखें तो मंदारियन, स्पैनिश और अंग्रेजी के बाद हिन्दी का स्थान चौथा है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद , भारत सरकार की तरफ से विश्व के अधिकांश देशों में 'हिन्दी चेयर' है। इन विश्वविद्यालयों में और इनके अतिरिक्त भी विद्यालयी स्तर पर भी हिन्दी शिक्षण, प्रचार-प्रसार का कार्य हो रहा है। इस दिशा में प्रवासी भारतीयों का योगदान उल्लेखनीय है। पिछले एक दशक में 'योग विद्या' के प्रति विश्व के रुझान ने भी हिन्दी को बढ़ावा दिया है। हिन्दी के लिए वैश्विक स्तर पर यह भी सुखद संकेत है।

हिंदी कहीं से भी कमजोर स्थिति में नहीं है। अपनी बात मणिपुर की एक घटना से ही प्रमाणित करना चाहूँगी। 15 वीं 16 वीं सदी में वैष्णव सम्प्रदाय के प्रचार- प्रसार के समय मणिपुरियों की पुरानी लिपि 'मैतेय मयेक', उनके प्राचीन धर्म ग्रंथों - पुया आदि को नष्ट कर दिया गया। मैतेय समाज ने पेड़ों की कंदराओं में छिपा कर अपने महत्वपूर्ण ग्रंथों की रक्षा की। लिपि नष्ट हो गई, धर्मग्रंथ जला दिए गए लेकिन भाषा बची रह गई। कालांतर में पुरानी सनामही धर्म और हिन्दू वैष्णव धर्म दोनों फले-फूले, आज भी पल्लवित हैं, परन्तु अपनी लिपि के खोने की पीड़ा उन्हें कचोटती रही, लेकिन, वे दृढ़ संकल्प थे, अत: जीर्णोद्वार में लगे रहे। 2019-20 में मणिपुरियों ने पुरानी लिपि 'मैतेय मयेक' को शिक्षा-व्यवस्था में सम्मिलित कर लिया। आशय यह कि हमारे भीतर इसी संकल्प-शक्ति का अब तक अभाव रहा है। भारतेन्दु ने इस समस्या को समझ लिया था इसलिए कहा था -

'भारत में सब भिन्न अति, ताहीं सों उत्पात
विविध देस मतहू विविध, भाषा विविध लखात।
सब मिल तासों छाँड़ि कै, दूजे और उपाय,
उन्नति भाषा की करहु, अहो भ्रातगन आय'[5]

अब तक हिन्दी भाषा के संबंध में जिस संकल्प-शक्ति की कमी रही वह पुन: नई शिक्षा नीति से दू ? हुई है और वर्तमान सरकार की कार्यशैली ने भी आश्वत किया है। आजादी के 76 वें वर्ष में राजसत्ता की राष्ट्रभाषा के प्रति संकल्प बद्धता और नई शिक्षा नीति हिन्दी भाषा की संभावनाओं के अनेक आयाम खोलती है। हिंदी का कल गौरवशाली था, हिन्दी का आज सशक्त है और भविष्य स्वर्णिम। ❑

संदर्भ सूची :

1) तराना- ए- हिन्द - 1905 में- मुहम्मद इकबाल, गजल संग्रह 'बंग- ए- दारा' में संकलित.
2) हिन्दी समस्या और समाधान, बलराज सिंह सिरोही, संस्करण-1984, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ संख्या - 20.
3) वही, पृष्ठ संख्या- 25.
4) निज भाषा, भारतेन्दु हरिश्चंद्र
5) वही

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

आलेख

साहित्य में मानव अधिकार की अभिव्यक्ति

डॉ. अरुण कुमार पाण्डेय

सह आचार्य
राजीव गाँधी विश्वविद्यालय
(केंद्रीय विश्वविद्यालय)
रोनो हिल्स, दोईमुख
अरुणाचल प्रदेश -791112
9612540643
arunpandey1975@gmail.com

मानवाधिकार से अभिप्राय मौलिक अधिकारों एवं स्वतंत्रता से है जिसका हकदार संपूर्ण मानव समुदाय होता है। मानवीय अधिकारों की रक्षण की चिंता प्राचीन भारतीय सभ्यता और संस्कृति में दिखाई पड़ती है। दुनिया के देश जब मानवीय अधिकारों की वैचारिक पृष्ठभूमि को समझने की कोशिश कर रहे थे और व्यवहार में इसे उतारना चाहते थे, तब भारत में ऋषियों ने धर्मयुक्त कर्तव्य पालन के निर्देश देकर कर्म सिद्धांतों की स्थापना की थी, जिससे मानव अधिकारों की सुरक्षा होती थी। 'वसुधैव कुटुम्बकम' के उद्घोष द्वारा संपूर्ण विश्व को एक परिवार मानते हुए समानता और समरसता के एक सूत्र में पिरोने का संदेश मानवीय अधिकारों की उच्च भाव सत्ता को स्थापित करता है। मानव अधिकारों के द्वारा प्रत्येक व्यक्ति अपनी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति तो करता ही है, उसकी सामाजिक, आत्मिक, राजनैतिक और आध्यात्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति भी होती है। भारतीय दर्शन में मानवीय अधिकारों को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। यहाँ के शास्त्रों और साहित्यों में उद्घोषित-'**सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामया, सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःख भावेत**' का शाश्वत चिंतन मानव मात्र के कल्याण और उद्धार को ही रूपायित करता है।

मानव अधिकार वे अधिकार हैं, जो हमारी प्रकृति या स्वभाव में निहित होते हैं। इसके अभाव में हमारा मानव जीवन पूर्णरूपेण विकसित नहीं हो सकता है। मानवाधिकार और मौलिक स्वतंत्रताएँ हमें पूर्णरूपेण विकसित होने के लिए अवसर देते हैं। इसीलिए मानवाधिकारों की सर्जना नहीं की जाती है, बल्कि इसकी स्थिति स्वाभाविक होती है। अधिकार हमारे सामाजिक जीवन की अनिवार्य आवश्यकताएँ हैं, जिसके बिना न तो व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास कर सकता है और न हीं समाज के लिए उपयोगी कार्य कर सकता है। वस्तुत: अधिकारों के बिना मानव जीवन बौना है। इन मानवीय अधिकारों का वर्णन युगीन सभी भारतीय साहित्यों में मिलता है। सभी भारतीय वांग्मय में न केवल मानवीय अधिकारों

की चर्चा की गई है, बल्कि मानवेत्तर जीव-जंतुओं तथा पेड़-पौधों के प्रति भी संवेदना व्यक्त की गई है।

मानव अधिकारों के प्रति चेतना और लोक कल्याण के लिए साहित्य की धारा सदैव प्रवाहमान रही है। वैदिक साहित्य, संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा हिंदी के प्रत्येक काल खंड में रचित साहित्य ने सर्वजन सुखार्थ, सर्वजन हितार्थ की भावना का विकास किया है। मानवाधिकार दो रूपों में प्राप्त होते हैं। रोने, हँसने, संतान के प्रति ममता रखने, श्वास लेने, स्वयं को सुरक्षित रखने आदि जैसे अधिकार प्रकृति प्रदत्त अधिकार हैं तो कुछ अधिकार मनुष्य निर्मित समाज द्वारा प्रदान किए जाते हैं। ऐसे ही यज्ञादि करने का अधिकार, सभी को शिक्षा का अधिकार, नारी को संपत्ति का अधिकार, प्रजा के अधिकार, दास से संबंधित अधिकार आदि के वर्णन से संपूर्ण संस्कृत साहित्य भरा पड़ा है। वैदिक कालीन भारतीय संस्कृति यज्ञ प्रधान संस्कृति थी। समाज के मध्य 'सर्व यज्ञमयं जगत' की व्यापक धारणा विद्यमान थी। इसलिए यज्ञादि का अधिकार सभी को प्राप्त था और इसका उल्लेख ऋग्वेद की संहिता के दशम मंडल के 45वें सूक्त में मिलता है-

'विश्वस्य केतुर्भुवनस्य गर्भ आ रोदसी अपृणाज्जायमान।
वीलुं चिदद्रिमभिनष्परायजना यदग्निमयजन्त पयंच।।' [1]

श्लोक के भावार्थ के अनुसार यज्ञादि का अधिकार सभी 'पञ्चजना' अर्थात ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा निषाद (अति शूद्र) को प्राप्त था। लिंग भेद नहीं होने के कारण स्त्रियों को भी यज्ञ कार्य करने का अधिकार था। नारी अधिकारों का वर्णन अथर्ववेद संहिता में भी प्राप्त होता है।

अथर्ववेद संहिता के ग्यारहवें मंडल के प्रथम सूक्त में '**योसितो यज्ञियाः इमाः**' कहा गया है। इससे नारी के यज्ञादि अधिकारों की पुष्टि होती है। उस युग की नारी यज्ञादि कार्यों के लिए यज्ञीय वेदी के निर्माण में पारंगत होती थी और प्रतिदिन पुरुषों के साथ यज्ञ करती थी। इसका उदहारण ऋग्वेद संहिता के 5वें मंडल के 27वें सूक्त में 'विश्वारा' नामक नारी के वर्णन में मिलता है। 'विश्वारा' प्रतिदिन यज्ञ करती थीं -

'समिद्धो अग्नि दिर्वि शोचिरश्रेत्प्रत्यङ्ङुष समुविर्या विमाति।
एति प्राची विश्वारा नमोभिर्देवाँ ईलाना हविषा घृताची।।'[2]

ज्ञान से हीन मनुष्य पशु के समान होता है। इसलिए भारतीय समाज में शिक्षा को श्रेष्ठ स्थान दिया गया है । संस्कृत साहित्य में यह वर्णन मिलता है कि वैदिक कालीन तथा उसके वाद के समाजों में सभी को शिक्षा का अधिकार प्राप्त था। शिक्षा प्राप्ति उसके मानव अधिकार थे। नारियों को गृहविज्ञान की शिक्षा तथा व्यावसायिक ज्ञान की शिक्षा के साथ-साथ धार्मिक, आध्यात्मिक, राजनैतिक आदि का ज्ञान दिया जाता था। संस्कृत की एक रचना 'नैषधचरितम' के षष्ठ सर्ग में गंधर्व स्त्रियों को नारद की शिष्याओं के रूप में चित्रित किया गया है। ये स्त्रियाँ संगीत विद्या में प्रवीण थीं-

'भैमिमुपाबीणयदेत्व यत कलि प्रिय शिष्य वर्गः।
गन्धर्ववहवः स्वरमध्यरीण तत कण्ठनालैक धुरीण वीणः।। [3]

लोपामुद्रा, रोमशा, घोषा, ममता, अपाला, शाश्वती, द्रौपदी आदि स्त्रियों ने विधिवत शास्त्र का अध्ययन किया था। मुनि वात्स्यायन के अनुसार स्त्रियाँ 64 कलाओं में निपुण होती थीं। ये चौंसठ कलाएँ तदयुगीन शिक्षा के उपविभाग हुआ करते थे। 'किरातार्जुनीयम' नामक संस्कृत ग्रंथ में स्त्रियों के विदुषी होने के अनेक प्रमाण मिलते हैं। ग्रंथ की एक पात्र है द्रौपदी, जो महाभारत की मुख्य नायिका भी है, जो राजनीतिक ज्ञान के साथ-साथ दार्शनिक तत्वों से भी भिज्ञ थी। इस प्रकार हम देखते हैं कि समान शिक्षा के अधिकारों का उल्लेख अनेक संस्कृत साहित्यों में मिलता है। ये स्त्रियाँ अपने समय के महान उपदेशिका और मंत्रों की स्रष्टा रही हैं । सुमन राजे अपनी पुस्तक 'हिंदी साहित्य का आधा इतिहास' में इसका उल्लेख करती हुई लिखती हैं - ''ऋग्वेद के प्रथम मंडल में रोमशा (सूक्त,126), लोपामुद्रा (सूक्त,179), ममता (सूक्त,10) का उल्लेख है। दूसरे, तीसरे और चौथे मंडल में किसी ऋषिका का नाम नहीं है। पंचम मंडल में विश्वतारा (सूक्त,28), आठवें मंडल में अपाला (सूक्त, 91), शाश्वती (सूक्त, 34) के मंत्र हैं । दशम मंडल में सबसे अधिक ऋषिकाएँ शामिल की गई हैं। श्रद्धा कामायनी (सूक्त, 151), यमीवैवस्वति (सूक्त,154),

पौलमी शची (सूक्त,159), घोषा (सूक्त, 39-40), वाक (सूक्त,125) एवं सूर्या (सूक्त, 1082) की रचनाएँ हैं ।''[4]

नारी को संपत्ति देने संबंधी अधिकारों का वर्णन वैदिक कालीन साहित्य में मिलता है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र में यह कहा गया कि पति-पत्नी में किसी भी प्रकार का साम्पत्तिक विभाजन नहीं होगा। संपत्ति पर दोनों का समान अधिकार होता था-

'जायापत्योर्नविभागोविभागो विद्यते'। [5]

तब विवाह दंपति के आत्मा, मन, प्राण, शरीर को आध्यात्मिक संबंध द्वारा सुदृढ़ करने का एक चिरस्थायी प्रयत्न माना जाता है। वैदिक काल में गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने के लिए विवाह का अधिकार सबको प्राप्त था। कन्या को वर चयन का अधिकार था। वह जिसे चाहती थी उसे वरण करती थी। पिता इसके लिए एक समारोह का आयोजन करते थे, जिसे स्वयंवर कहा जाता था। रामायण का 'सीता स्वयंवर', महाभारत का 'द्रौपदी स्वयंवर' आदि का प्रसंग इस बात के प्रमाण हैं। इसके अतिरिक्त संस्कृत साहित्य रघुवंशम में 'इंदुमती स्वयंवर', कुमारसंभवम् में इच्छित वर प्राप्ति हेतु पार्वती द्वारा की जाने वाली तपस्या का जो वर्णन प्राप्त होता है, वह विवाह के स्वतंत्र अधिकार को रेखांकित करता है। उस समय स्त्री को स्वेच्छा से वर का चयन कर विवाह करने का अधिकार समाज प्रदत्त था। इसका श्रेष्ठ उदाहरण 'नैषधचरितम' में वर्णित एक कथा में देखा जा सकता है। दमयंती वर रूप में नल को पसंद करती है। इसलिए पिता द्वारा चयन किए गए वर को वह ठुकरा देती है।[6]

मानवाधिकारों की भावनात्मक पक्षधरता करना

साहित्य का चिरंतन प्रयोजन रहा है। प्राचीन संस्कृत साहित्य की तरह ही मध्यकालीन साहित्य सर्जक भी मानवीय अधिकारों के पक्षधर रहे हैं। भक्ति आंदोलन के गर्भ से उद्भुत संतों की वाणियों का साहित्य आत्महीनता, गरीबी, पराधीनता, पतनशीलता, जाति भेद तथा धार्मिक संघर्षों से उत्पन्न मानवाधिकारों के हनन को बचाने का मूल्यवान दस्तावेज है। मानवाधिकारों की गरिमा का बोध तत्कालीन संतों के भक्ति संबंधी पदों में देखा जा सकता है। बंगाल के प्रसिद्ध संत चंडीदास जब बार-बार यह कहते हैं-''सुनो हे मानुष भाई, शबार ऊपर मानुष सत्य तहार उपर नाई'' अर्थात हे मनुष्य मित्रो, सुनो, सबसे ऊपर मनुष्य ही सत्य है, उसके ऊपर कुछ नहीं' तो मनुष्य की सर्वोच्च सत्ता को स्थापित करते हैं और यही मानवाधिकार आयोग की स्थापना का लक्ष्य भी है। संतों की वाणियाँ उन्मादी राज सत्ता से टकराती हैं और उनके अहंकार को चूर-चूर करने का संदेश भी देती हैं। व्यक्ति स्वतंत्रता जैसे मानव अधिकारों का हनन होते देख कुंभनदास जैसे प्रसिद्ध संत कवि काव्य पंक्तियाँ रचकर तत्कालीन शहंशाह को चुनौती देते हैं-

''संतन को कहा सिकरी सों काम।

आवत जात पनहियाँ टूटी, बिसरि गयो हरिनाम।।'' [7]

संतों का सीकरी से क्या लेना-देना। आते-जाते जूतियाँ घिसती हैं और हरिनाम भी बिसर जाता है। जिनका मुँह देखने से ही क्लेश होता है, उन्हें झुककर सलाम करना पड़ता है। स्त्री अधिकारों के प्रश्नों को भी मध्यकालीन संत-कवियों ने बड़ी निर्भीकता के साथ उठाया है। रामचरितमानस की एक चौपाई में संत तुलसीदास अपनी वेदना प्रकट करते हैं-

'कत बिधि सृजी नारि जग मांही। पराधीन सपनेहु सुख नाहीं।' [8]

यहाँ तुलसीदास नारी की स्वतंत्र चेतना के पक्ष में आवाज उठाते हैं। मध्यकालीन संतों की रचनाओं के वर्ण्य विषय सामाजिक विषमता पर प्रहार, दीनता के चित्रण द्वारा असमानता का बोध कराना, जाति-पाति के भेद पर प्रहार, भूख, अन्याय से संघर्ष आदि रहे हैं। समाज में गरीबी का प्रसंग मानव समानता के अधिकार को प्रतिबंधित करता है। कबीर जैसे भक्त कवि की रचनाओं में भी यह यथार्थ ओझल नहीं होता है। समाज में गरीबी का दंश झेल रहे ऐसे लाखों लोगों के साथ अपनी संवेदना भूख रूपी कुतिया के संबोधन से जोड़ते हुए कहते हैं-

'कबीरा क्षुधा कूकरी, करत भजन पर भंग।

या को टुकड़ा डारिके, भजन करो नि:शंक।।' [9]

आधुनिक कालीन साहित्य की प्रत्येक विधाओं में मानव और उससे जुड़े मूलभूत अधिकारों के पक्ष में तथा मानवाधिकार हनन के प्रतिरोध में कवियों और लेखकों ने अपनी आवाज उठाई है। छायावादी कवि निराला के काव्य में सामाजिक चेतना मुखर ढंग से सवाल-जवाब करती है। वे ऐसी जातीय संस्कृति के पक्षधर हैं, जो साम्राज्यवाद विरोधी हो। उनके लिए पूरी वर्ण व्यवस्था दग्ध मरुस्थल है, सुजल नहीं। यह एक ऐसी विष-बेलि है, जिसमें विष ही फल है और इसमें दलित ही नहीं स्त्रियाँ भी पिसती हैं। इसकी अभिव्यक्ति निराला 'वह तोड़ती पत्थर' रचना के माध्यम से करते हैं। उनके साहित्य के केंद्र में मानव की मुक्ति है। इसलिए वे दलितों-पिछड़ों से जल्द-जल्द पैर बढ़ाकर अपने बराबर खड़े होने और जीवन के अंधेरे का ताला खोलने का आह्वान करते हैं-

'जल्द-जल्द पैर बढ़ाओ आओ आओ।

आज अमीरों की हवेली

किसानों की होगी पाठशाला

धोबी, पासी, चमार तेली

खोलेंगे अंधेरे का ताला' [10]

वे उस पूँजीपति वर्ग पर कठोर प्रहार करते हैं, जिसने आर्थिक असमानता की खाई गहरी कर दी है, जिससे मानव शोषित हुआ है-

'अबे, सुन बे गुलाब,

भूल मत जो पायी खुशबु, रंग-ओ-आब

खून चूसा स्वाद का तूने अशिष्ट

डोल पर इतरा रहा है केपिटलिस्ट।' [11] वही, पृष्ठ 128

निराला मानवाधिकार के सजग कवि हैं। गरीबी और भूख से तड़पती मानव जिंदगी को देखकर 'भिक्षुक'

कविता के द्वारा अपनी करुणा प्रकट करते हैं ।'भिक्षुक' कविता में निराला एक भिखारी और उसके दो बच्चों का वेदना से भरा ऐसा करुण चित्र खींचा है, जिसकी पंक्तियाँ हमारे हृदय को झकझोर देती हैं-

'वह आता

दो टुक कलेजे के करता, पछताता पथ पर आता ।

पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक

चल रहा लाकुडिया टेक

मुट्ठी भर दाने को, भूख मिटने को

मुंह कटी पुरानी झोली को फैलाता' [12]

भिक्षुक के साथ चल रहे दो बच्चों का प्राथमिक मानवाधिकार है कि उन्हें दो वक्त की रोटी मिले । लेकिन दाता या भाग्य विधाता से उन्हें यह नहीं मिलती है। पेट की आग से तड़पते बच्चे जब जूठी पतल चाटने के लिए सड़क पर आगे बढ़ते हैं तभी अवारा कुत्ते उनके हाथ से पतल छीन लेने के लिए झपट पड़ते हैं ।यह एक मनुष्य की दुखद परिस्थिति है, जिसे निराला उजागर करते हैं।

प्रकृति के सुकुमार कवि सुमित्रानंदन पंत असामनता के पोषक पूँजीपतियों की निंदा करते हुए किसानों के हितों के साथ खड़ा दिखाई पड़ते हैं। वे किसानों को नवीन परिवर्तनों का संवाहक मानते हुए कहते हैं –

विश्व विवर्तनशील, अपरिवर्तित वह निश्चल,

वही खेत गृह-द्वार, वही वृष, हंसिया औ हल।

× × × × × × × × ×

वह संकीर्ण समूह कृपण, स्वाश्रित, पर पीड़ित

अति निजस्य प्रिय, शोधित, लुंठित दलित, क्षुधार्दित। [13]

राष्ट्र कवि 'दिनकर' को भी पूँजीवादी विषमता से उत्पन्न अन्याय अखरता है। राष्ट्र का निर्माण हो रहा है, नया महल बन रहा है, नींव में जनता है और कवि दिनकर नींव का हाहाकार सुनकर पूँजीवाद का लाभ उठाने वालों से पूछते हैं-

रोटियों पर कौर लेते ही कहीं से

अश्रु की बूंद क्या चुती कभी है ?

बाग में जब घूमते हो शाम को, तब

सनसनाती चीज भी छूती कभी है? [14]

इस अन्यायपूर्ण व्यवस्था का भोग करने वालों की संवेदनहीनता के कारण असंख्य मनुष्यों के जीने के प्राथमिक अधिकारों का हनन होता है। दिनकर इस व्यवस्था के खिलाफ लिखते हैं-

'तोड़ दो इसको, महल को बर्बाद कर दो

नींव की ईंटे हटाओ

दब गए हैं, जो अभी तक जी रहे हैं

जीवितों को इस महल के बोझ से आजाद कर दो।' [15]

आधुनिक कविता जनजीवन की पीड़ा को मुख्य स्वर देती है। अन्याय के विरोध वार कर न्याय के पक्ष में खड़ी होती है। प्रगतिशील कवि नागार्जुन 'प्रतिबद्ध हूँ' कविता में मानव को न्याय दिलाने तथा उसके मानवाधिकार के संरक्षण में मुट्ठी तान खड़े दिखाई पड़ते हैं-

'प्रतिबद्ध हूँ जी हाँ प्रतिबद्ध हूँ-

बहुजन समाज की अनुपल प्रगति के निमित्त

संकुचित 'स्व' की आपाधापी के निषेधार्थ

अविवेकी भीड़ की। भेड़िया घसान के खिलाफ' [16]

कविता में समाज की विसंगतियों को उजागर करने की ताकत होती है। इसीलिए कविता एक ऐसे समाज की कल्पना करती है, जो भेदभाव से मुक्त समता पर आधारित हो, जहाँ भयमुक्त जीवन जीने की स्वतंत्रता हो। लेकिन मानव के इन अधिकारों का जब हनन होता हुआ सर्वेश्वर दयाल जैसा कवि देखता है तो प्रतिरोध में कलम उठा लेता है-

'कलम उठाते ही/ हमें मासूम बच्चे

निरीह औरतें/ मेहनत कश भोले इंसान।

सब हमसाया नजर आते हैं/ उनकी मौत/ हमारी मौत

चाहे वे शत्रु देश के ही क्यों न हों।

हर बेकसूर आदमी की लाश/ हमारी कलम की स्याही।

उतर आती है।' [17]

आर्थिक कुचक्रों के कारण होने वाले मानवीय अधिकारों के हनन पर रघुवीर सहाय क्षुब्ध होते हैं। जब वे देखते हैं कि स्त्री और बच्चों को दलित द्राक्षा की तरह चूस कर, उसके अधिकारों का हनन कर समाज के हाशिए पर रख दिया गया है, तब उनकी कविता प्रश्न करती है कि रोटी की तलाश करता भूख से व्याकुल पेट क्या अधिकारों की बात कर सकेगा ?

'औरतें बांधे हुए उरोज
पोटली के अन्दर है भूख
आसमानी चट्टानी बोझ
ढो रही है पत्थर की पीठ
लाल मिट्टी लकड़ी ललछोर
दांत मटमैले इकटक ढीठ
कटोरे के पेंदे में भात
गोद में लेकर बैठा बाप
खा रहा है उसको चुपचाप।' [18]

उपर्युक्त विवेचन और उदाहरणों के आधार पर यह कहना समीचीन है कि भारत में मानवाधिकार की अवधारणा वर्तमान मानवाधिकार के गठन से नहीं, बल्कि प्राचीन समय से पल्वित-पुष्पित होती रही है । हर क्षेत्र और हर काल के साहित्य ने अपनी पूरी ताकत से शोषण और अत्याचार के विरुद्ध अपनी आवाज उठाई है। ❑

संदर्भ :

1. ऋग्वेद-10/45/6
2. ऋग संहिता-5/27/1
3. नैषधचरितम-6/65
4. 'हिंदी साहित्य का आधा इतिहास' सुमन राजे, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, सं. 2011, पृ. 10
5. आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 2/6/14/20
6. नैषधीयचरितम- 3/19
7. ब्रज माधुरी सार, संपादक- वियोगी हरि, साहित्य सम्मेलन पत्रिका, प्रयाग, प्रथम संकरण, पृष्ठ 146
8. बालकाण्ड, रामचरितमानस, तुलसीदास, गीता प्रेस, संवत 2063, चौ.4, पृष्ठ 94
9. कबीर ग्रंथावाली, सुमिरन को अंग, श्यामसुंदर दास, नागरी प्रचारणी सभा, काशी
10. निराला संचयिता, रमेशचन्द्र शाह, वाणी प्रकाशन, 2010, पृष्ठ 146
11. वही
12. परिमल, 'भिक्षुक ' कविता, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
13. चिदंबरा, 'युगवाणी' कविता, सुमित्रानंदन पंत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
14. 'नींव का हाहाकार' कविता, रश्मि लोक : दिनकर ग्रंथमाला, रामधारी सिंह दिनकर, लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद
15. वही
16. नागार्जुन की चयनित कविताएँ- सं.- मैनेजर पाण्डेय, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, NBT)
17. कुआनो नदी, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृष्ठ 84-85
18. आत्महत्या के विरुद्ध, रघुवीर सहाय, पृष्ठ 33

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

आलेख

विभाजन की त्रासदी का इस्पाती सत्य : तमस

डॉ. सपना सैनी

मकान सं. 3/150
चौधरी हरिसिंह नगर, गली सं. 3
जज नगर के नजदीक, जौरा पाठक,
अमृतसर-143001, पंजाब
9023511769

भारत विभाजन की घटना ने स्वतंत्रता की सारी आशाओं को विभाजन के दंश नीचे दबा कर रख दिया। यह त्रासदीपूर्ण वाकया उस घनीभूत कोहरे के समान था, जिसने देश के वर्तमान के साथ-साथ उसके भविष्य को भी अपने आगोश में ले लिया। इतिहास भर में यह ऐसी विलक्षण घटना थी, जिसने सांप्रदायिकता के कारण मानवीयता को पत्नोन्मुख की चरम सीमा पर खड़ा कर दिया था। वस्तुत: द्वेष भावना भले ही हिंदू-मुस्लिम के बीच बनी हुई थी, लेकिन पर्दे के पीछे आग में घी डालने का काम राजनीतिक स्वार्थ कर रहे थे। भीष्म साहनी ने 'तमस' उपन्यास में सांप्रदायिक दंगों को आधार बनाकर उन विकृत मनोवृत्तियों का परिणाम प्रस्तुत किया है, जिसे जनसाधारण को भोगने के लिए विवश होना पड़ता है।

संकेताक्षर : आजादी, भारत-पाक, सांप्रदायिक तनाव, राजनीतिक षड्यंत्र, हिंसा, कूटनीति, विभीषिका, भेद-भाव, वैमनस्य, अमानवीयता।

विश्लेषण : भारत विभाजन की त्रासदी इतिहास की अत्यंत दर्दनाक घटना है। लोग जहाँ एक स्वर्णिम आजादी की आशा लगाए उस दिन का इंतजार कर रहे थे, वहीं वह काला खौफनाक दिन बनकर आया। स्वतंत्रता का संघर्ष भारत और पाकिस्तान के विभाजन के साथ संपन्न हुआ। अंग्रेजों की कूटनीति के कारण स्वतंत्रता का स्वर्णिम दिन भयंकर विभीषिका का रूप धारण कर गया। 15 अगस्त, 1947 को भारत को स्वतंत्रता मिली, लेकिन स्वतंत्रता के साथ विभाजन का एक दंश भी साथ में जुड़ा-''आशा यह थी कि विभाजन शांतिपूर्ण होगा। न तो दंगों की कल्पना की गई थी और न बड़ी संख्या में लोगों के स्थानांतरण की योजना बनाई गई थी। माना यह जाता था कि जब पाकिस्तान की माँग मंजूर कर ली जाएगी, तो फिर लड़ने को क्या रह जाएगा ?... हालाँकि अगस्त 1946 से ही दंगों की बाढ़ आई हुई थी, फिर भी यह उम्मीद की जा रही थी कि एक विभाजन का ऑपरेशन हुआ कि सारा पागलपन हवा हो जाएगा। लेकिन शरीर इतना बीमार हो चुका था और ऑपरेशन के औजार भी कीटाणुग्रस्त थे, अत: ऑपरेशन बेहद अनगढ़ तरीके से हुआ। विभाजन के पहले स्थिति जितनी भयंकर थी, विभाजन के बाद उससे ज्यादा भयंकर हो गई''[1],

जिसने संपूर्ण भारत का नक्शा ही बदल कर रख दिया। विभाजन के इस घटनाक्रम में सांप्रदायिक दंगों की विनाशलीला से अनगिनत निर्दोष मनुष्यों का रक्त बहा। भेदभाव, वैमनस्य और दुर्भावना को समाप्त करने के लिए न चाहते हुए भी विभाजन को स्वीकृति दी गई। लेकिन विभाजन का दंश प्रत्येक भारतीय के सीने को छलनी कर रहा था। इस देश विभाजन की विभीषिका ने संवेदनशील साहित्यकारों को उद्वेलित करके रख दिया। इन साहित्यकारों ने इस घटनाक्रम के विभिन्न आयामों को कल्पना और यथार्थ के साथ सँजोकर अपनी कालजयी कृतियों में एक दस्तावेज के रूप में प्रस्तुत किया। विभाजन की त्रासदी पर एक से बढ़कर एक कृतियाँ सामने आईं, लेकिन वर्ष 1973 में प्रकाशित भीष्म साहनी कृत 'तमस' का नाम भारतीय साहित्य में अमिट रहेगा। भारत विभाजन के परिणामस्वरूप देश में होने वाले भयंकर दंगों की करुण त्रासदी का वृत्तांत प्रस्तुत करने वाला यह उपन्यास इतिहास और यथार्थ का मणिकांचन योग है।

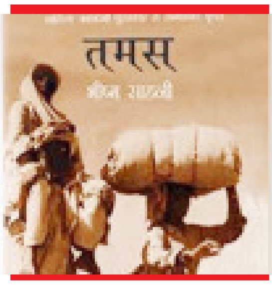

''तमस उस अंधकार का द्योतक है, जो आदमी की इंसानियत और संवेदना को ढँक देता है और उसे हैवान बना देता है।''[2] तमस कुल पाँच दिनों की कहानी है, लेकिन यह उपन्यास केवल पाँच दिनों की कथा नहीं, बल्कि कई वर्षों के इतिहास को बयान करता है। भीष्म साहनी अपनी आत्मकथा 'आज के अतीत' में स्वयं कहते हैं कि ''मुझे ठीक से याद नहीं कि कब बंबई के निकट, भिवंडी नगर में हिंदू-मुस्लिम दंगे हुए। पर मुझे इतना याद है कि उन दंगों के बाद मैंने तमस लिखना आरंभ किया था....यह सचमुख अचानक ही हुआ, पर जब कलम उठाई और कागज सामने रखा तो ध्यान रावलपिंडी के दंगों की ओर चला गया।''[3] 'तमस' के माध्यम से साहनी जी आजादी के ठीक पहले सांप्रदायिकता की चरम सीमा और दंगों का ऐसा उल्लेख करते हैं कि व्यक्ति की अंतरात्मा तक काँप उठती है।

'तमस' का केंद्र भी अंग्रेजों की फूट नीति से फैलाई गई सांप्रदायिक नीतियाँ ही थीं, जो कहीं-न-कहीं सांप्रदायिक दंगे-फसाद करवाने के लिए जिम्मेवार रहती हैं। सांप्रदायिक द्वेष को भड़काने के लिए मुरादअली ब्रिटिश अधिकारी सलोतरी साहिब की माँग पर नत्थू से चोरी छिपे सुअर मरवाता है। इसके पीछे सांप्रदायिक तनाव तथा हिंदू-मुसलमानों में धर्म के नाम पर फूट डाल कर तनावपूर्ण माहौल का निर्माण करने की अंग्रेजी प्रशासन की षड्यंत्र नीति स्पष्टत: दिखलाई पड़ती है- ''सुनते हैं सुअर मारना बड़ा कठिन काम है। हमारे बस का नहीं होगा हुजूर। खाल-बाल उतारने का काम तो कर दें। मारने का काम तो पिगरीवाले ही करते हैं।'' -''पिगरीवालों से करवाना होता तो तुमसे क्यों कहते। यह काम तुम्हीं करोगे।'' और मुरादअली ने पाँच रुपए का चरमराता नोट जेब से निकालकर नत्थू के जुड़े हाथों के पीछे उसकी जेब में ठूस दिया था। यह तुम्हारे लिए बहुत बड़ा काम नहीं है। सलोतरी साहिब ने फरमाइश की तो हम इनकार कैसे कर देते।''[4] नत्थू द्वारा मारे गए सुअर से उपजे सांप्रदायिक तनाव से भीषण तथा भयंकर नरसंहार होता है। शहर में मस्जिद की सीढ़ियों पर सुअर की लाश देखकर मुसलमान चिढ़ जाते हैं और सुअर की लाश का बदला मुसलमान गाय को मार कर लेना चाहते हैं। धार्मिक उन्माद से शहर में दंगे उपज उठते हैं- ''तभी कुएँ की ओर से किसी के भागते कदमों की आवाज आई।....एक गाय भागती आ रही थी। उसके पीछे-पीछे एक आदमी सिर पर मुँडासा बाँधे और हाथ में डंडा लिए गाय के पीछे-पीछे भागता हुआ, उसे हाँके लिए जा रहा था। उसकी छाती खुली थी और गले में ताबीज झूल रहा था।''[5]

भीष्म साहनी अंग्रेजों की फूट नीति के कारण कांग्रेस और लीग में बनी दरार से उपजे सांप्रदायिक द्वेष का चित्रण करते हैं। राष्ट्रीय कांग्रेस को हिंदुओं की कह कर मुसलमानों को भड़काया जाता है। यही दो फाड़ होने का विष आगे भयंकर हिंसा का रूप धारण करता है-''वह आदमी गली के बीचों-बीच खड़ा मंडली को ललकारता हुआ सा बोल रहा था। ''कांग्रेस हिंदुओं की जमात है। इसके साथ मुसलमानों का कोई वास्ता नहीं है।''... रूमी टोपीवाले ने अपने को बाँहों में से अलग करते हुए

कहा, ''यह सब हिंदुओं की चालाकी है, कांग्रेस हिंदुओं की जमात है और मुस्लिम लीग मुसलमानों की। कांग्रेस मुसलमानों की रहनुमाई नहीं कर सकती।''... लोग बतिया भी रहे थे और एक दूसरे पर चिल्ला भी रहे थे।''[6]

देश विभाजन की खबरों से सारे शहरों में हिंदू-मुस्लिमों के झगड़े शुरू हुए। शहर सांप्रदायिक दंगों की चपेट में आकर झुलस रहे थे। असमाजिक तत्वों द्वारा घिनौना उत्पीड़िन हो रहा था। शहरों की आग गाँव को अपने में लपेट रही थी, जिसमें हजारों लोग लूटे जा रहे थे, हजारों हजार लोग मारे गए। लेकिन पर्दे के पीछे आग में घी डालने का कार्य राजनीतिज्ञ ब्रिटिश कर रहे थे। सियासत के हाथों इंसानियत का ऐसा खून होगा कभी न सोचा गया था। दंगों में मारे लोग हिंदू या मुस्लिम नहीं थे, वे इंसान थे, लेकिन धर्म के ठेकेदार बने दंगाई लोगों को इंसान न समझकर हिंदू या मुसलमान समझ कर उन्हें सियासती साजिशों की गिरफ्त का शिकार बना रहे थे। जहाँ घर-बार धूँ-धूँ कर जल रहे थे तो वहीं घरों, काफिलों, बाजारों से लुटेरे लूट का माल ढो रहे थे, ढोल इलाहीबाद गाँव के हरनाम सिंह के घर-दुकान पर मुसलमान गुंडों ने हमला करके उनकी बरसों से कमाई संपत्ति को पल भर में लूटा और बची-खुची को आग की भेंट कर दिया- ''एक चट्टान के पीछे दोनों छिपकर खड़े हो गए....उधर दुकान का दरवाजा टूट कर गिर गया था और ''या अली!'' चिल्लाते हुए बलवई उसमें घुस गए थे। ''लूट रहे हैं, हमारा घर-बाहर लूट रहे हैं।''[7]

रक्तरंजित आजादी से पहले सांप्रदायिकता की बैसाखियों के सहारे पंजाब में पाशविकता के नृत्य में हत्याओं का चित्रण भीष्म साहनी 'तमस' उपन्यास में करते हैं। मुसलमानों के प्रति बदले की भावना को लिए बालक इन्द्र अपने मित्रों से मिलकर गली में एक मुसलमान इत्रफरोश पर हमला कर उसकी हत्या करता हैं-''सहसा इन्द्र लपका और उसने पैंतरा मारा। इत्रफरोश को लगा जैसे उसके बाएँ हाथ कोई चीज जोर से हिली है। .... तब तक उसे थैले के नीचे तीखी चुभन का सा भास हुआ। इन्दऊ का निशाना ठीक बैठा था। वार करने के बाद सरदार के आदेशानुसार उसने चाकू को थोड़ा मोड़ दिया था और अँतड़ियों के जाल में फँसा भी दिया था।... इत्रफ रोश अभी मुड़ नहीं पाया था कि ....उसे अपने पैरों पर बहता खून नजर आया....फिर नश्तर सा दर्द और वह डर के मारे बदहवास हो गया... ''ओ लोको, मार डाला! मुझे मार डाला! ओ लोको!... एक शिथिल सी चीख उसके होंठो से निकली और उसकी आँखे गली के ऊपर फैले गहरे नीले आसमान के छोटे से टुकड़े पर लग गई।''[8] चाकू के किए वार से अधिक बालक के भोलेपन से हमले से वह मुसलमान टूट गया। धार्मिक विद्वेष से छोटे-छोटे बालकों के मन में उत्पन्न घृणा ने इंसानियत की हत्या कर के रख दी।

उपन्यास का पात्र जरनैल अंग्रेजों को हिंदू-मुस्लिम में फूट डालने की कूट नीतियों का दोषी मानता है। सड़कों पर जलसे करते हुए वह हिंदू-मुस्लिम भाईचारे को संबोधित करते हुए देश से ब्रिटिश हकूमत को निकालने का संदेश फैलाता रहता है। इसी दौरान उसको मौत के घाट उतार दिया जाता है-''उसी दोपहर एक और मौत हुई। जरनैल मारा गया। सनकी तो वह पहले ही था, बगल में छड़ी दबाए, लेफ्ट राइट करता हुआ दंगा रोकने निकल पड़ा।.... वह निकला और जगह-जगह सड़क के किनारे कभी एक चबूतरे पर तो कभी दूसरे चबूतरे पर खड़ा होकर लेक्चर देने लगा.....मैं आपसे कहता हूँ कि हिंदू-मुस्लिम भाई-भाई हैं, ...हमारा दुश्मन अंग्रेज है....हम मिलकर रहेंगे....तेरी माँ की....'' आसपास खड़े लोगों में से एक ने कहा और लाठी के एक ही भरपूर वार से जरनैल की खोपड़ी फोड़ दी। छड़ी कहाँ गई, और फटी हुई मूँगिया पगड़ी कहाँ गई..... और फिकरा खत्म किए बिना ही जहाँ जरनैल खड़ा था वहीं ढेर हो गया।''[9]

सांप्रदायिक विद्वेष और धार्मिक असहिष्णुता इस कदर अपनी जड़ें गहरी कर चुके थे कि धर्म के नाम पर हिंदू-मुसलमान अमानुषिक अत्याचार कर उन्मत्त अवस्था में घूम रहे थे। इन दिनों अनगिनत धर्मांतरण हुए। धर्म की आड़ में न जाने कितने निरपराधी लोगों को अमानवीयता का भोगी बनना पड़ा। हरनाम सिंह का बेटा इकबाल सिंह मुसलमान फसादियों से बच कर खोह में छिपा बैठा था। मुस्लिम रमजान और उसके साथियों ने उसकी पत्थर

मार-मार कर ऐसी दुर्गति की कि उसे जबरन इस्लाम कबूल करना पड़ा-''ओ सिक्खा, बड़ी तरिक्खा, निकल बाहर!... ''ओए, ठहरों ओए! मत मारों पत्थर!''... फिर वह दानिशमन्द, खोह के मुँह के सामने आकर खड़ा हो गया और ऊँची आवाज में बोला, ''ओ सरदार, दीन कबूल कर ले, हम तुम्हें छोड़ देंगें।''.... ''बोल सरदार, इस्लाम कबूल करेगा या नहीं ? अगर मंजूर है तो अपने-आप बाहर आ जा, हम तुम्हें कुछ नहीं कहेंगे। वरना ढेले मार-मार कर मार डालेंगे।''.... ''निकल बाहर, खजीर के तुख्म, नहीं तो अन्दर से तेरी लाश निकलेगी।'' ''कलमा पढूँगा।'' सिसकियों के बीच इकबाल सिंह ने कहा। तभी गगनभेदी आवाज उठी। ''अल्लाह हो अकबर।'' ''नारा-ए-तकबीर! अल्लाह हो अकबर।''.... उठ आ, अब तू हमारा भाई है। आ जा, गले मिल ले।''[10]

धर्म की आड़ में मनुष्य इतना अंधा बना बैठा था कि खुद को धर्म का ठेकेदार समझ कर वह परधर्मी के साथ पशु तुल्य अत्याचार करने से भी गुरेज नहीं कर रहा है। 'तमस' उपन्यास में इकबाल सिंह का धर्म बदलने के लिए जबरन उसका हुलिया बदला जाता है। सिक्खों के लिए केस, दाढ़ी का अत्यंत महत्व है। इसलिए मुस्लिम फसादियों द्वारा इन्हीं को ठेस पहुँचाकर इकबाल का धर्म परिवर्तन किया गया। इकबाल के लंबे केस और घनी दाढ़ी जहाँ सिक्खी का प्रतीक थी, वही मुसलमान उसके साथ इतना क्रूर व्यवहार करते हैं कि उसकी दाढ़ी, केस को काटने के लिए घोड़े के बाल काटने वाली मशीन का प्रयोग करते हैं। इतनी हिंसक क्रूर घटनाओं को करने की प्रेरणा कोई धर्म भी नहीं देता। लेकिन इन दिनों धर्म को आड़ बनाकर फसादी गुंडे अपनी मनमानियाँ करने पर आतुर थे-''नाई की उँगलियाँ थक गई, बाल काटे नहीं कटते थे, भीड़ के बीचोंबीच जमीन पर बैठा इकबाल सिंह फ्रि से उद्भ्रांत हो उठा था। शुरू-शुरू में नाई कैंची से बाल काटता रहा, फिर घोड़े के गोबर और मूत से उसके बालों के गुच्छे अलग-अलग से बाँधकर बाल काटता रहा, अंत में वह घोड़ों के बाल काटने वाली मशीन ले आया। मशीन चली तो इकबाल सिंह की खोपड़ी पर लहरिये-से बनने लगे।... इसके बाद इकबाल को गर्दन सीधी करने का मौका मिला। दाढ़ी को काटा नहीं गया। जब दाढ़ी कतरने का वक्त आया तो बहुत-सी आवाजें एक साथ सुनाई देने लगीं, ''दाढ़ी की काट मुसलमानी होनी चाहिए। खत निकालकर दाढ़ी काटो।...''[11]

इकबाल सिंह के साथ फसादी धर्म भ्रष्ट करने के लिए घिनौना कृत्य करते हैं। अपना धर्म स्वीकृत करवाने की आड़ में फसादी इकबाल के मुँह में माँस का टुकड़ा डालकर उसका धर्म भ्रष्ट कर देते हैं-''नूरदीन.... लोगों को धकेल-धकेलकर अन्दर घुस रहा था।.... अन्दर आते ही वह सीधा इकबाल सिंह के पास बैठ गया। बाएँ हाथ से इकबाल सिंह का मुँह खोला और दाएँ हाथ में पकड़ा माँस का बड़ा-सा टुकड़ा, जिसमें से टप-टप खून की बूँदे चूं रही थीं, इकबाल सिंह के मुँह में डाल दिया।''[12]

भारत-पाक बँटवारे की त्रासदी के प्रतिफलन ने मानवीय मूल्यों का भी विघटन कर के रख दिया। इसका यथावत चित्रण 'तमस' उपन्यास सफल रूप से करता है। जहाँ पत्नी मुसलमानों से इज्जत की रखवाली करती कुएँ में कूद कर पति व परिवार की लाज बनाए रखती है, वहीं पति के अंदर की मानवता इस हद तक दम तोड़ देती है कि उसे पत्नी के जाने का दुख कम और उसके पहने गहनों के डूब जाने का दुख अधिक होता है। मानव ने इंसानियत को इस कद्र जीवन से चलता कर दिया था कि इंसान मरे हुए इंसान से भी कुछ न कुछ स्वार्थ सिद्धि की कामना रखने लगा था। शरणार्थियों के आँकड़े करने वाला व्यक्ति कहता है- ''ओ सरदार जी, कोई अक्ल की बात किया करो। कुएँ में कुछ नहीं तो 27 औरतें डूब मरी हैं। उनमें से तुम कैसे पहचानोगे कि तुम्हारी घरवाली कौन सी है?'' ''यह तुम मुझ पर छोड़ दो वीर जी, मैं कड़े देखकर ही पहचान लूँगा। पाँच-पाँच तोले का एक कड़ा है। गले में सोने की जंजीरी है। अब घरवाली डूब मरी, जो सबके साथ हुई है, वह मेरे साथ भी हुई है, पर ये कड़े और जंजीर मैं कैसे छोड़ दूँ?... जो उतरवा दो तो बीच में से तुम्हें भी दे दूँगा।... उस नेकबख्त ने यह भी नहीं सोचा कि भाई, मैं तो डूबने लगी हूँ, मैं अपने कड़े तो उतार कर देती जाऊँ?''[13]

यूँ तो भारत विभाजन के दौरान हुई सांप्रदायिक हिंसा ने हिंदू-मुस्लिम दोनों को प्रभावित किया, लेकिन इन सांप्रदायिक हिंसक प्रतिक्रियाओं ने स्त्री यानी की देश की आधी आबादी वाले वर्ग को सबसे अधिक कुचल कर रख दिया था। इन दिनों अत्याचारों की तीव्रता को सिद्ध करने के लिए स्त्रियों का खुलेआम शोषण कर एक दहशत पैदा की गई थी। पुरुष अपनी मर्दानगी के किस्से हँस हँस बेशर्म होकर सुना रहे थे। गुलाम रसूल घर के चबूतरे पर बैठकर अपनी गंदी कामुक प्रवृत्तियों के किस्से सुना रहा था। विभाजन के समय हवसखोर पुरुष समूह बनाकर हिंदू लड़की को बारी-बारी अपनी गंदी मानसिकता के अत्याचार से पीड़ित कर रहे थे। पाश्विक मनुष्य की इंतहा तो तब हो जाती है, जब वह लड़की के मर जाने पर भी उसे पीड़ित किए जा रहे थे। अमानवीय प्रवृत्तियों का यह नंगा नाच विभाजन के दिनों में सामान्य बन गया था और पुरुष प्रधान समाज इसे अपनी मर्दानगी का सबूत देना कह रहा था-"हम जब गली में घुसे तो कराड़ भागने लगा, कोई इधर जाए, कोई उधर जाए। हिंदुओं की लड़की अपने घर की छत पर चढ़ गई। हमने देख लिया जी। सीधे दस-बारह आदमी उसके पीछे छत पर पहुँच गए। वह....छत पर जा रही थी जब हमने उसे पकड़ लिया। नबी, लालू, मीरा, मुर्तजा, बारी-बारी से सभी ने उसे दबोचा। "ईमान से? एक ने संशय से पूछा। "कसम अल्लाह पाक की। जब मेरी बारी आई तो नीचे से न हूँ न हाँ, वह हिले ही नहीं, मैंने देखा तो लड़की मरी हुई। और वह खोखली-सी हँसी हँसकर बोला, "मैं लाश से ही जना किए जा रहा था।"[14] देश विभाजन के समय औरतों की इस दुर्गति को देखकर दानवता भी अट्टहास कर रही थी। मानवता बेचारी भयभीत होकर कहीं छिपी बैठी थी। क्या अर्थ था यहाँ आजादी का?

पुरुष के अंदर की इंसानियत इतनी मर चुकी थी कि अपनी जान बचाने की खातिर स्त्री अपनी जान का सौदा तक करने को विवश हो जाती है। गुंडे-बदमाशों के लिए यह पशु-सा व्यवहार मात्र एक हास्य का किस्सा बन रह जाता है। लेकिन मानव समाज में उनकी अमानवीयता का तार-तार रूप सामने आता है। एक और मुजामिद सुनाने लगा-"वक्त-वक्त की बात है। एक बागड़ी औरत को हमने गली में पकड़ा। हम करोड़ों के घर के अंदर से निकल रहे थे। ऐसा हाथ चल रहा था, जो सामने आता, एक बार में गर्दन साफहो जाती। यह औरत सामने आई तो चिल्लाने लगी। हरामजादी कहे जा रही थी, मुझे मारो नहीं, मुझे तुम सातों अपने पास रख लो, एक-एक करके जो चाहो कर लो। मुझे मारो नहीं।" "फिर?" "फिर क्या? अजीजें ने सीधा खंजर उसकी छाती में मारा। वहीं खत्म हो गई।"[15]

अवसादों के घने अंधेर में स्त्रियों को कोई रास्ता न सूझा तो उन्होंने अंधेरमयी जीवन स्वीकार न कर स्वयं ही अपनी जीवनलीला समाप्त कर ली। उपन्यास में तुर्कों के हमले से बचने तथा स्वयं की आबरू बचाने हेतु अनगिनत स्त्रियों ने कुओं में कूद कर अपनी जीवन लीला समाप्त की। माँ-बाप, भाई, पति की लाज रखने हेतु वह पर पुरुष द्वारा अपनी इज्जत न रौंदवा कर स्वयं ही आत्महिंसा की शिकार बन जाती है- "तुर्क आ गए! तुर्क आ गए! कुछ औरतें चिल्ला रही थीं.... जहाँ मेरा सिंहवीर गया है। वहाँ मैं भी जाऊँगी।" गुरुद्वारे में से निकलकर औरतों की यह डार गली में दाईं और बाएँ हाथ घूम गई।.... स्त्रियों का झुंड उस पक्के कुएँ की ओर बढ़ता जा रहा था, जो दलान के नीचे दाएँ हाथ बना था.... किसी को उस समय ध्यान नहीं आया कि वे कहाँ जा रही हैं, क्यों जा रही हैं। छिटकी चाँदनी में कुएँ पर जैसे अप्सराएँ उतरती आ रही हों। सबसे पहले जसबीर कौर कुएँ में कूद गई।...... किसी को पुकारा नहीं, केवल 'वाहे गुरु' कहा और कूद गई। उसके कूदते ही कुएँ की जगत पर कितनी ही स्त्रियाँ चढ़ गईं।.... देखते ही देखते गाँव की दसियों औरतें अपने बच्चों को लेकर कुएँ में कूद गईं। जब तुर्क....गुरुद्वारे की और बढ़ने लगे तो गुरुद्वारे में एक भी स्त्री नहीं थी।"[16]

इस तरह भारत की भोली-भाली जनता को हिंदू-मुस्लिम के द्वंद्व में फँसाकर ब्रिटिशों द्वारा अपने मंतव्य को साधने की कोशिशें की गईं, जो कि सफल भी हुईं, जिसका स्पष्टत: चित्रण साहनी जी ब्रिटिश अधिकारी रिचर्ड की पत्नी लीजा के द्वारा करते हैं। लीजा अंग्रेजी सरकार की इन उग्र सांप्रदायिक नीतियों का पर्दाफाश

करती हुई रिचर्ड को कहती है–''देश के नाम पर लोग तुम्हारे साथ लड़ते हैं और धर्म के नाम पर तुम इन्हें आपस में लड़ाते हो। क्यों, ठीक है ना? हम नहीं लड़ाते, लीजा ये लोग खुद लड़ते हैं।'' ''तुम इन्हें लड़ने से रोक भी तो सकते हो। आखिर है तो ये एक ही जाति के लोग।''[17]

परिणामत: इतिहास से शिक्षा लेकर वर्तमान अपने आपको सँवारता है। तमस उपन्यास वर्तमान समय में भी अत्यंत प्रासंगिक है। सांप्रदायिकता की समस्या आज भी समाज को तोड़ने में जुटी है। लेकिन आवश्यकता इसके पीछे के उन स्वार्थी कारणों को जानने और मानवीय भाव से उस स्वार्थ लिप्सा को खत्म करने की है। यह कालजयी रचना कहीं उन स्वार्थ नीतियों से बचने व कहीं स्वार्थ नीतियों से उपजे परिणामों को दिखाकर समाज को उस इतिहास से एक सीख देती है। समाज को स्वार्थ लोलुपताओं की भेंट चढ़ने से बचना चाहिए तथा सर्वोपरि इंसानियत को आपसी भाईचारे में बनाकर रखना चाहिए। हिंदू, सिक्ख व मुसलमान सभी उस ईश्वर के बनाए एक सूत्र में पिरोए वह मोती हैं, जो जब तक एकता में बंधे हैं, तब तक वह देश व समाज के लिए स्वस्थ आशाएँ बन कर रहेंगे। मानव को अपनी अखंडता को तोड़ने वाले उन स्वार्थी खंडित गलत मंसूबों से बचना चाहिए, जो मात्र उस विकट दौर में ही नहीं थे, बल्कि वर्तमान में भी मौजूद है। यह उत्कृष्ट रचना पूरे समाज को एक सूत्र में पिरोए रहने की सीख देती है ताकि सियासत का चश्मा लगाए लोग हमें आपस में फिर कभी न लड़ा पाए।

अत: सांप्रदायिकता की समस्या से उपजे दुष्परिणामों को जानकर, हम इससे दूर रहकर, एक दूसरे के धर्म, संप्रदाय और समुदाय का सम्मान करना सीखें, जिससे आने वाले समय में इस तरह की कोई त्रासदी न हो। जो लोग इतिहास से नहीं सीखते, वे इतिहास को दोहराते हैं। यह उपन्यास हमें स्मरण करवाता है कि हम उस रास्ते पर चलकर कहाँ पहुँच गए थे और किन परिणामों को भोगने के लिए विवश हो गए थे। उद्देश्य यह होता है कि हम उसे दोहराएँ नहीं। उपन्यास में व्यक्त भारत विभाजन की भयंकर त्रासदी और उसके परिणामों से अनुभूत करवाना तथा उसमें छिपे इंसानियत के भाव या मानवीय मूल्यों की स्थापना ही इसका उद्देश्य है। ❑

संदर्भ-सूची

1. बिपिन चंद्र, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष (दिल्ली: हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, 1999), पृष्ठ–398
2. गोपाल राय, हिंदी उपन्यास का इतिहास (नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2014), पृष्ठ–303
3. भीष्म साहनी, तमस (नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2021), फ्लैप कवर
4. भीष्म साहनी, तमस (नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2021), पृष्ठ–9
5. वही, पृष्ठ–68
6. वही, पृष्ठ–36
7. वही, पृष्ठ–203
8. वही, पृष्ठ–180
9. वही, पृष्ठ–169
10. वही, पृष्ठ–245
11. वही, पृष्ठ–250
12. वही, पृष्ठ–250
13. वही, पृष्ठ–286
14. वही, पृष्ठ–258
15. वही, पृष्ठ–258
16. वही, पृष्ठ–261
17. वही, पृष्ठ–52

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

आलेख

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में मारवाड़ के जैन स्वतंत्रता सेनानियों का योगदान

डॉ. रवीन्द्र सिंह राठौड़

सहायक आचार्य
अहिंसा व शांति विभाग
जैन विश्वभारती संस्थान
लाडनूं (राजस्थान)
मो. 9829740007
ravindrachhapara@gmail.com

भारत को स्वतंत्र करवाने के लिए देश के विविध स्थानों पर प्रयास होते रहे, किंतु 1857 में एक संगठित क्रांति हुई, जिसके परिणामस्वरूप संपूर्ण देश भर में क्रांति की अलख जाग उठी, जिसकी अगुवा झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई बनीं। महारानी लक्ष्मी बाई को तो आज सभी जानते हैं, किंतु आर्थिक संघर्ष से जूझ रहीं लक्ष्मीबाई को खजाना खोलकर सहायता करने वाले ग्वालियर नरेश के खजांची अमर शहीद अमर चंद बांठिया को शायद ही कोई जानता हो। इतिहास के पन्ने गवाह हैं कि किस प्रकार फाँसी देने के बाद तीन दिन तक उनका शव ग्वालियर के सर्राफा बाजार के नीम के पेड़ पर लटकाए रखा गया था। इस दौरान सर्वधर्म के क्रांतिकारियों का योगदान रहा। इसमें जैन समाज का योगदान भी उल्लेखनीय रहा है। बहादुर शाह जफर ने लाला हुकमचंद जैन हांसी व उनके भतीजे फकीर चंद जैन को उन्हीं की कोठी के आगे फाँसी पर लटका दिया गया था। जैन धर्म हमेशा अहिंसा व शांति का पक्षधर रहा है। किंतु राष्ट्र के सम्मान के लिए जब-जब भी जरूरत हुई, तब-तब शौर्य व वीरता के साथ अपनी भूमिका निभाई।

मूल आलेख : 1857 की क्रांति भारत के लिए आजादी और स्वतंत्रता संग्राम के बिगुल के समान थी। इसके बाद अंग्रेजों ने दिल्ली पर पुन: अधिकार कर लिया। इस स्वतंत्रता संग्राम में जो भी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से सहयोगी रहे उन्हें फाँसी पर चढ़ा दिया गया। बेगम हजरत महल और नाना साहब भूमिगत हो गए। झाँसी की रानी वीरगति को प्राप्त हो गईं और तात्या टोपे को भी फाँसी पर लटका दिया गया। धीरे-धीरे एकता, संगठन, नीति और दृढ़ता के बल पर अंग्रेजों ने इस प्रथम स्वतंत्रता संग्राम को दबा दिया। इस संग्राम ने जहाँ भारत में नवजागरण युग का सूत्रपात हुआ और भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की ऐसी सुदृढ़ नींव रखी। वहीं दूसरी और अंग्रेजी सरकार ने भी उग्र भारतीय मानसिकता को पहचाना और कानून पास कर भारत का शासन अपने हाथ में ले लिया। अब गवर्नर जनरल के

स्थान पर वायसराय के पद की घोषणा की गई।

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में राजस्थान के जैन स्वतंत्रता सेनानियों का योगदान भी अपूर्व रहा, जिसमें मुख्य रूप से जयपुर के क्रांतिकारी अर्जुन लाल सेठी का योगदान भी अद्भुत रहा, उन्होंने जयपुर राज्य की नौकरी छोड़ कर स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़े। अर्जुन लाल सेठी ने आंदोलन की रूपरेखा के लिए मोती चंद और देव-वेद सांगली को जयपुर बुलाया। उनका कार्य था देश में स्वाधीनता युद्ध के लिए सैनिकों की भर्ती करना। उन्होंने भारत माँ को स्वतंत्र कराने का बीड़ा उठाया और क्रांतिकारी दल में सम्मिलित होने का निश्चय किया। उस समय क्रांतिकारी दल का काम अर्थाभाव के कारण ठप हो गया। अतः इन युवकों ने किसी देशद्रोही धनिक को मारकर धन लूटने की योजना बनाई। लेकिन इस कार्य में भी सफलता नहीं मिली। इस कारण क्रांतिकारी विद्यालय चलने में दिक्कत आने लगी और कुछ समय पश्चात अर्जुन लाल सेठी, मोतीचंद सेठी, विष्णुदत्त शर्मा, माणिकचंद को गिरफ्तार कर लिया गया, जिसमें अर्जुन लाल सेठी को सबूतों के अभाव में जेल में डाल दिया और मोतीचंद सेठी, विष्णुदत्त शर्मा को 1915 में फाँसी पर चढ़ा दिया।

इन स्वतंत्रता सैनानियों के क्रम में ही अन्य राजस्थान के मारवाड़ और आस-पास के स्वतंत्रता सेनानियों को भी नहीं भुलाया जा सकता, जिन्होंने आजादी के लिए अनेक कष्ट सहे, जिनका विवरण निम्न प्रकार से है-

1. अभयमल जैन : अभयमल जैन मारवाड़ लोक परिषद के संस्थापकों में से एक थे। इनका जन्म जोधपुर में हुआ। 1932 के राजनैतिक सम्मेलन में जयनारायण व्यास ने बुलाया और इन पर 1932 में राजद्रोही कार्यों में भाग लेने के कारण इनको रेलवे की नौकरी से निकाल दिया गया। तब अपनी स्टेशनरी की दुकान से गतिविधियाँ शुरू कर दीं। 1936 में छात्रों की शुल्क वृद्धि और बाईजी तालाब के मसले को लेकर आंदोलन किया। सरकार द्वारा गिरफ्तार कर एक वर्ष परबतसर के किले में रखा गया। 1942 में अभयमल जैन को 2 वर्ष की जेल हुई और आजादी के एक माह पूर्व जुलाई, 1947 में आपकी मृत्यु हो गई। आजादी का भावी जश्न देशवासियों के लिए छोड़ गए।

2. उगम राज मोहनोत : उगम राज मोहनोत का जन्म 25 जुलाई, 1925 में जोधपुर में हुआ। 1940 में लोक परिषद के आंदोलन में आपने वानर सेना के स्वयंसेवक के रूप में कार्य किया और 1942 में भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान भारत सुरक्षा कानून के अंतर्गत डेढ़ वर्ष की सजा हुई, तब मात्र आप दसवीं के छात्र थे। तलाशी के दौरान पुलिस घर का सामान ले गई और उन पर स्कूल में प्रवेश लेने पर प्रतिबंध लगा दिया।

3. किशनलाल शाह : किशनलाल शाह ने विद्यार्थी जीवन से ही आंदोलनों में भाग लिया। सामंत शाही और जागीरदारी प्रथा को समाप्त करने के लिए किसान आंदोलन संगठित किया। 14 मार्च, 1947 में डाबड़ा हत्याकांड में सामंती तत्वों ने आपको गंभीर रूप से घयल कर दिया। आपको ही अभियुक्त बनाकर खून और हत्या के अभियोग में गिरफ्तार कर मुकदमा चलाया गया।

4. चम्पालाल फूलफगर : चम्पालाल फुलफगर का जन्म 1905 को लाडनूं में हुआ। लाडनूं में निर्वाचित नगर परिषद की स्थापना का कार्य किया। मारवाड़ लोक परिषद के सदस्य बने और आंदोलन में भाग लेने लगे। 1942 में मृत्यु हो गई और उनके नाम से चम्पालाल फूलफगर मार्ग रखा गया।

5. जीवनलाल कोठारी : जीवनलाल कोठारी हाई स्कूल के अध्यापक थे। 1938 में खादी पहनने के कारण राजशाही इनसे नाराज हो गए और नौकरी से हटा कर किसी झूठे मुकदमे में फँसाकर जेल में डाल दिया। कोठारी जी ने एक वर्ष की जेल यात्रा जैसलमेर जेल में भोगी।

6. डालमचंद डोसी : डालमचंद डोसी का जन्म 1912 कुशलगढ़ में हुआ। डोसी ने दोहद (गुजरात) में जिलाधीश भवन की तीसरी मंजिल पर चढ़कर तिरंगा झंडा फहराया। 1942 में भारत छोडो आंदोलन में दोहद के आस-पास गाँवों में घूमकर 'करो या मरो' का प्रचार करने लगे। उन्हें गिरफ्तार कर छह माह की सजा तथा एक सौ रुपए अर्थदंड लगाया गया। अर्थदंड नहीं देने पर दो माह की सजा और भुगतनी पड़ी। इन दिनों साबरमती जेल में

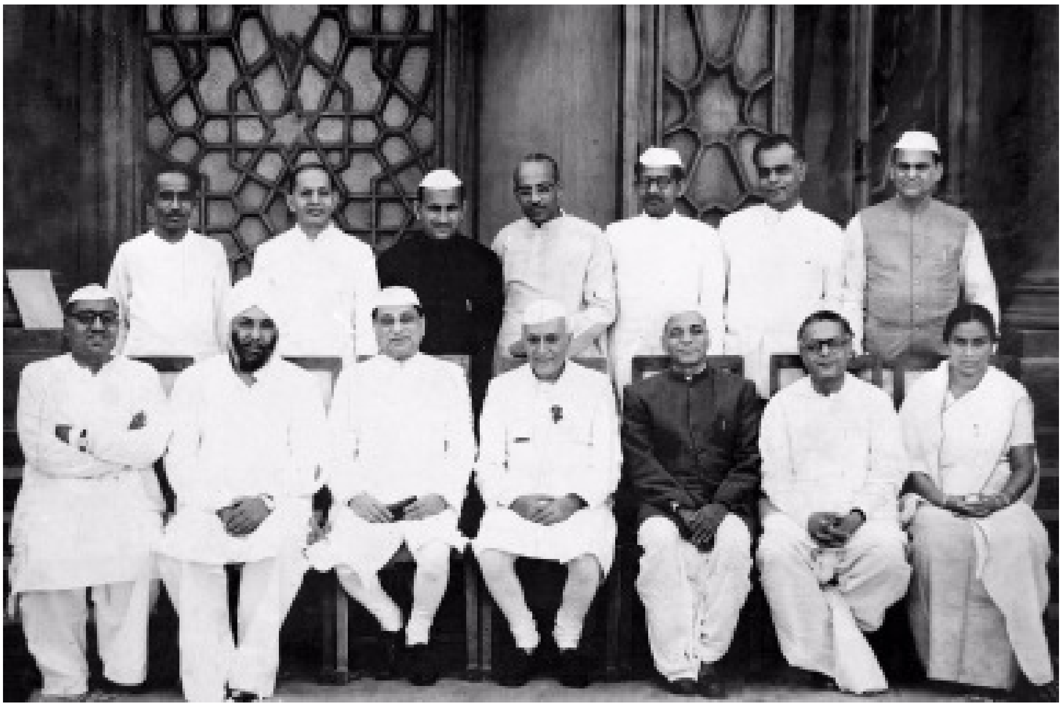

रहे। 1944 में प्रजामंडल की स्थापना कर नागरिक अधिकार सुविधाओं को देने के लिए आंदोलन किया। 1946 में हरिजन उद्धार और अस्पृश्यता निवारण में भी उन्होंने महती भूमिका निभाई। कुशलगढ़ में गांधी आश्रम और खादी केंद्र की स्थापना की। डोसी के क्रांति कार्यों को देखते हुए मारवाड़ के क्रांतिकारियों में भी जोश जाग उठा, जिससे कई क्रांतिकारी उनके साथ जुड़ गए।

7. डालिमचंद सेठिया : डालिमचंद सेठिया सुजानगढ़ के थे। सेठिया का राजस्थान के स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों में अग्रगण्य स्थान रहा है। 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन में राष्ट्रनायक श्री जयप्रकाश नारायण और श्री राममनोहर लोहिया ने फरार होकर आपके निवास पर ही शरण ली थी। फ लत: आपको ब्रिटिश शासन में 54 दिन का कारावास भोगना पड़ा। आप कलकत्ता में मारवाड़ी छात्रसंघ के सभापति रहे।

8. देवराज सिंघी : देवराज सिंधी का जन्म 1922 जोधपुर में हुआ। बचपन से ही क्रांति का विचार आपके मानस को आंदोलित करने लगा। 1942 में 'भारत छोड़ो आंदोलन' के समय जोधपुर में बम बनाने का काम आपने किया और उस बम को सिनेमा घर में रखा, जिसमें अंग्रेजी वायुसेना फिल्म देखने वाली थी। आपके बड़े भाई लालचन्द के हाथों से उसे सिनेमा घर में टाइम बम थैले में रखवा दिया, जिससे विस्फोट हुआ। लेकिन कोई आहत नहीं हुआ, किंतु सरकार दहल गई। दोनों भाई पकड़े गए। लालचन्द अदालत से भाग गए और साधु बनकर रहे। देवराज को 10 वर्ष की सजा हुई।

9. नेमीचंद आंचलिया : नेमीचंद आंचलिया का जन्म बीकानेर रियासत के सरदारशहर में हुआ। आंचलिया निर्भीकता के साथ बीकानेर महाराजा की निरंकुशता और शासनाधिकारी की आलोचना करते थे। 1942 की क्रांति के समय अजमेर से प्रकाशित होने वाले साप्ताहिक राजस्थान में बीकानेर शासन की अंधेरगर्दी को बेनकाब करने वाला एक लेख प्रकाशित किया। बीकानेर के महाराजा ने उस राजद्रोहात्मक लेख के लिए अपराधी ठहराते हुए 7 वर्ष के कठोर कारावास की सजा सुनाई। सरदारशहर और बीकानेर में आतंक पैदा करने के लिए हथकड़ी लगाकर घुमाया और कालकोठरी में डाल दिया, लेकिन 1943 में महाराजा गंगा सिंह के निधन के बाद

महाराजा सार्दुल सिंह के गद्दी पर बैठते ही राजनीतिक बंदियों की रिहाई शुरू की, लेकिन नेमीचंद की नहीं। तब उन्होंने भूख हड़ताल की और प्रजा परिषद के प्रयासों के कारण रिहा हो गए।

10. पुखराज उर्फपुष्पेन्द्र कुमार : पुखराज उर्फपुष्पेन्द्र कुमार का जन्म बिलाड़ा, जोधपुर में 1912 में हुआ। 1930 में जब छात्र थे तभी राजनीति और आंदोलन में सक्रिय हो गए। 1932 में बंबई में विदेशी कपड़ों का बहिष्कार करने के कारण बंबई में पकड़े गए और 6 माह 18 दिन की जेल हुई। 1938 में बिलाड़ा में लोक परिषद की स्थापना की। 1942 में भी आपको 4 माह 18 दिन की जेल हुई।

11. फूलचन्द बाफना : फूलचन्द बाफना का जन्म 1915 पाली में हुआ। 1942 में जब परिषद ने जिम्मेवार हुकूमत आंदोलन चलाया, तब आपकी सक्रिय गतिविधियों के कारण गिरफ्तार कर दो वर्ष की सजा दी।

12. भंवर लाल सिंघी : भंवर लाल सिंघी का जन्म 1914 जोधपुर के निकट बड़ू गाँव में हुआ। हाई स्कूल की परीक्षा में जयपुर में आपने सर्वोच्य अंक प्राप्त किया। लेकिन जब आपके पिताजी को 'अमानत में खयामत' के मुकदमे में गिरफ्तार होने की नौबत आई तो माँ के गहने बेच कर भरपाई की। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा की बैठक में आप महात्मा गांधी से मिले, तब इन्होंने 'करो या मरो' और 'भारत छोड़ो आंदोलन' में 1942 में शामिल हो गए। इन्होंने नागपुर और बंबई के बीच रेल लाईन व ट्रेनों को डायनामाईट से उड़ाने की योजना बनाई। लेकिन अंग्रेजों को इसकी भनक लग गई। तब उन्हें गिरफ्तार कर लिया और जेल में डाल दिया। इनकी तबीयत ठीक नहीं रहने के कारण 1945 में रिहा कर दिया गया। वे अंतिम समय तक संघर्ष करते रहे। इसका उदाहरण जब 1946-47 में बंगाल में सांप्रदायिक दंगे भड़क उठे, तब सिंघी जी मुसलमानों की सुरक्षा-व्यवस्था में अहम भूमिका निभाई और सामाजिक सुधारों में लग गए। आजादी के बाद भी आपने 1950 में पाकिस्तान में फँसे हजारों हिंदुओं को पश्चिम बंगाल लाए।

13. मांगीलाल सदासुख पाटनी : मांगीलाल सदासुख पाटनी का जन्म 1906 कुचामन में हुआ। 1930 में विदेशी कपड़ों की होली जलाने के आंदोलन से स्वतंत्रता संग्राम में कदम रखा। 1940 में व्यक्तिगत सत्याग्रह में भी सक्रिय रहे। 1942 में भारत छोड़ो आंदोलन में 14 माह की जेल यात्रा की। नवभारत इंदौर में आपकी गिफ्तारी प्रजा मंडल के नेता के रूप में हुआ।

14. मानमल जैन : मानमल जैन का जन्म 1912 लाडनूं राजस्थान में हुआ। इन्होंने राजनैतिक प्रवृत्तियों को अपनाते हुए लोक परिषद द्वारा जागीरदारी प्रथा को समाप्त के लिए आंदोलन किया। 1942 के आंदोलन में वे जिम्मेदार हुकूमत आंदोलन में लाडनूं के सत्याग्रहियों का जत्था लेकर जोधपुर गए। तब वे गिरफ्तार कर लिए गए और सवा साल की जेल हुई। 1943 में वे रिहा हुए।

15. सेठ मोती लाल जैन : सेठ मोती लाल जैन का जन्म 1908 जोधपुर में हुआ। सेठ मोती लाल जैन ने राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन में तनमन धन समर्पित देश की आजादी में योगदान दिया। 1930 में विजय सिंह पथिक से राजनीति में आने की प्रेरणा मिली। 1941 में आप कोटा प्रजामंडल के सदस्यों को लेकर महात्मा गांधी से मिलने वर्धा गए। 1942 में अगस्त क्रांति के दौरान महात्मा गांधी की गिरफ्तारी के बाद विरोध करने पर तीन माह तक नजरबंद कर दिया गया। दूसरी बार कोटा स्टेशन से गिरफ्तार कर आठ दिन जेल में डाल दिया।

16. लालचंद जैन : लालचंद जैन का जन्म 1918 जोधपुर में हुआ। बचपन से ही आप में स्वतंत्रता की भावना हिलोरे ले रही थी। 1942 के आंदोलन में आपने सक्रिय भाग लिया। जोधपुर में सिनेमा गृह (जिसमें अंग्रेज अफसर फिल्म देखने आने वाले थे) में बम रखने के कारण आपको गिरफ्तार कर लिया गया। किंतु शौचालय जाने के बहाने आप वेश बदल कर भाग निकले और कपूर चन्द नाम से इधर-उधर घूमते रहे। दिल्ली में रॉयल एयर फोर्स में भर्ती हो गए। किंतु यहाँ से भी कुर्ता पजामा पहन ठेकेदार का वेश बनाकर भाग निकले। आजादी मिलने तक भूमिगत रहकर कार्य करते रहे। आजादी के बाद दिए साक्षात्कार में आपने बताया कि

'हमें स्वराज्य प्राप्त करने के लिए हिंसक घटनाओं से परहेज नहीं था, हमारा उद्देश्य तो देश को आजाद कराना था, किसी को कष्ट देना नहीं।'

17. संपत लाल लूंकड : संपत लाल लूंकड का जन्म 1900 को फलौदी (जोधपुर) में हुआ। संपतलाल लूकड बचपन से ही अन्याय का विरोध करने लगे थे। 1939 में फलौदी में लोकपरिषद की स्थापना होने पर वे उसमें शामिल हो गए और अनेक वर्षों तक उसके अध्यक्ष रहे। जागीरदारों से निरंतर संघर्ष किया तथा मारवाड़ लोकपरिषद के जिम्मेवार हुकूमत आंदोलन में 26 अगस्त, 1942 को गिरफ्तार कर लिए गए और 16 माह जोधपुर जेल, बिजोलोई पैलेस आदि स्थानों पर नजरबंद रखे गए।

18. सूरजमल गंगवाल : सूरजमल गंगवाल का जन्म लाडनूं (राजस्थान) में हुआ, जो जोधपुर रियासत में आता था। गंगवाल ने 'मारवाड़ लोक परिषद' के तृतीय लाडनूं अधिवेशन में सक्रिय सहयोग दिया। 1942 में आंदोलन में जोधपुर में सत्याग्रह करने के अपराध में गिरफ्तार कर लिए गए तथा 1 वर्ष की सख्त कैद की सजा भोगी।

उपसंहार :

राजस्थान का मारवाड़ क्षेत्र भी भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में कभी पीछे नहीं हटा। यहाँ के जैन धर्म के अनुयायी अपनी मातृभूमी की स्वतंत्रता के लिए अनेक कष्ट सहे। चाहे वह अंग्रेज हुकूमत के खिलाफ रहे या फिर स्थानीय जागीरदारी प्रथा के खिलाफ उन्होंने खुला विरोध किया और गुलामी और परतंत्रता से मुक्त करवाया। राजस्थान ही नहीं, भारत के स्वतंत्रता सेनानियों में इनका नाम स्वर्ण अक्षरों में लिखा गया है। ❑

संदर्भ :

- जैन डॉ. कपूरचंद, जैन डॉ. ज्योति- स्वतंत्रता संग्राम में जैन, प्रकाशक, प्राच्य श्रमण भारती, मुजफ्फनगर, संस्करण-प्रथम पृ. 24
- वही पृ.सं.- 53
- जैन संस्कृति और राजस्थान, पृ.- 344
- राजस्थान स्व. से., पृ.- 711
- रा. स्व. से. पृ.- 712
- रा. स्व. से. पृ.- 717
- रा. स्व. से. पृ.- 734
- जैन संस्कृति और राजस्थान, पृ.- 343
- इ. अ. ओ. भाग-2, पृ.-399
- इ. अ. ओ. भाग-2, पृ.-396
- रा. स्व. से. पृ.- 765
- स्वतंत्रता संग्राम में जैन, पृ. 295
- रा. स्व. से. पृ. 846
- वही पृ.-359
- स्वतंत्रता संग्राम में जैन,पृ. 849
- स्वतंत्रता संग्राम में जैन,पृ. 538
- लोक जीवन (साप्ताहिक) 14.08.2004)
- राज. स्व. से. पृ.-728
- राज. स्व. से. पृ.-50-68

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

आलेख

संस्कृति और राष्ट्र अंतर्संबंध

डॉ. आशीष

सहायक प्राध्यापक
संत क्लारेट महाविद्यालय,
5वीं क्रॉस रोड एमईएस रिंग रोड,
जलाहल्ली, बैंगलोर, कर्नाटक-560013
9958232816
ashish@claretcollege.edu.in

जब किसी राष्ट्र की बात की जाती है तो उसका संबंध राष्ट्र की संस्कृति से भी जोड़कर देखा जाता है। उस राष्ट्र की संपन्नता में संस्कृति की भी अहम भूमिका होती है। उस राष्ट्र में संस्कृति का पालन करने और कराने वाले दोनों का दायित्व होता है कि वे सजगता से उसका निर्वहन करें और करवाएँ। चूँकि, संस्कृति मनुष्य से जुड़ी है और मनुष्य राष्ट्र से जुड़ा है, अतः यह आवश्यक हो जाता है कि संस्कृति में किसी भी प्रकार की कुरीति (अपसंस्कृति) का समावेश न हो पाए। संस्कृति मनुष्य के आंतरिक और बाह्य जगत का विकास करने में अनिवार्य सहायक पहलू है। संस्कृति के माध्यम से मनुष्य को एक सकारात्मक ऊर्जा प्राप्त होती है, जिसका उपयोग वह समाज निर्माण में करता है। संस्कृति को कायम या जीवित रखने में मनुष्य की ही अहम भूमिका होती है। यह भी उल्लेखनीय है कि मनुष्य और संस्कृति का संबंध अन्योन्याश्रित है। एक के बिना दूसरे के अस्तित्व की कल्पना नहीं की जा सकती। व्यक्ति-राष्ट्र-संस्कृति ऐसा त्रिकोण है, जो एक-दूसरे से संस्कारित होता रहता है। मनुष्य समाज एवं राष्ट्र से जुड़ा है, इसलिए यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक राष्ट्र की अपनी संस्कृति होती है। उस राष्ट्र का प्रत्येक व्यक्ति उससे जन्मजात और सहज ही जुड़ा होता है।

उदाहरणस्वरूप द्रष्टव्य है कि बच्चा जिस घर में जन्म लेता है, वह उसी घर एवं समाज का सदस्य कहलाता है। वह उसी घर एवं समाज में संस्कारित होता है। धीरे-धीरे वह उस घर एवं समाज की संस्कृति से भी ओत-प्रोत होता है। समय आने पर वह घर की संपत्ति का अधिकारी होता है और समाजानुकूल व्यवहार करता है। इस प्रकार वह बच्चा एक परिवार में जन्म लेने के बावजूद उस समाज एवं राष्ट्र की संस्कृति से अनुप्राणित होता है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि पारिवारिक एवं सामाजिक स्तर पर विशेष ध्यान दिया जाता है कि उसे हर तरह के अपसंस्कार अथवा अपसंस्कृति से बचाया जाए। यह भी कि अपसंस्कार अथवा अपसंस्कृति से ग्रहण की हुई किसी भी प्रकार की कट्टरता और कुरीति से उसे मुक्त कर राष्ट्र का संरक्षण किया जाए। ऐसे अवगुणों से न

केवल परिवार, समाज अपितु राष्ट्र के लिए चुनौती उत्पन्न हो सकती है।

संस्कृति और राष्ट्र दोनों के केंद्र में मनुष्य है और यह मनुष्य की ही जिम्मेदारी है कि वह अपने राष्ट्र की रक्षा करे। भारत के संदर्भ में प्राय: यह कहा जाता है कि यह विविधताओं वाला देश है। भारतीय दृष्टि से चिंतन करने वाले विद्वान इस विविधता को एकता से नि:सृत बताते हैं। इस संदर्भ में डॉ. आनंद पाटील का यह कथन सटीक जान पड़ता है, वे लिखते हैं, ''यद्यपि हमारा समाज विविधतापूर्ण है, परंतु उससे नि:सृत एकता के पाठ जन-मानस में उचित रूप एवं परिमाण में प्रचारित-प्रसारित नहीं किए गए।''

यद्यपि विविधता मानी जाती रही है। अत: इन विविधताओं के अंतर्गत प्रत्येक धर्म एवं समुदाय के लोगों से यही अपेक्षा की जाती है कि वे अपनी सामुदायिक एवं धार्मिक संस्कृति के द्वारा भारतीय संस्कृति को धूमिल न होने दें। एक राष्ट्र में रहने के कारण उसका यह दायित्व है कि वह अपने राष्ट्र के प्रति पूर्ण निष्ठा रखे और किसी भी प्रकार उसकी अस्मिता को चोट न पहुँचने दे। यदि इसमें चूक होती है तो इससे देश की अखंडता और संप्रभुता प्रभावित हो सकती है।

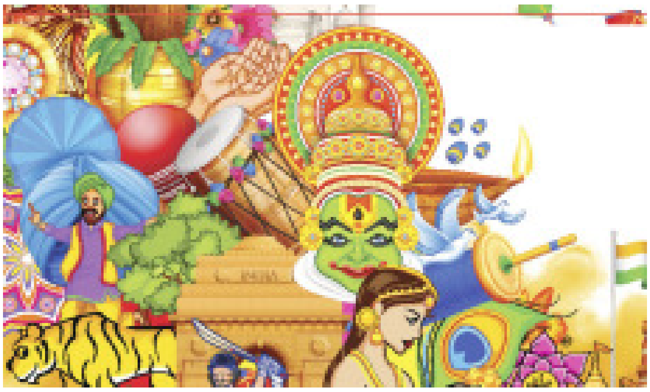

इस संबंध में एस. आबिद हुसैन ने अपनी पुस्तक 'भारत की राष्ट्रीय संस्कृति' में लिखा है कि ''संस्कृति मनुष्यों के समुदाय में रहती है, जिसे कि समाज कहा जाता है। ऐसे जिस समाज में राजनैतिक और सांस्कृतिक एकता पाई जाती है या वह समाज ऐसी एकता का इच्छुक होता है, तो उसे राष्ट्र माना जाता है।'' किसी भी बात के होते हुए संस्कृति के साथ-साथ राष्ट्र के प्रति प्रेम, त्याग, समर्पण आदि को सर्वोपरि माना गया है। प्राचीन ग्रंथों में भी राष्ट्र के प्रति प्रेम और समर्पण का उल्लेख मिलता है।

द्रष्टव्य है 'वयं राष्ट्रे जागृयाम' तात्पर्य है कि राष्ट्रहित चिंतकों को सदैव जाग्रत रहना चाहिए। वहीं, 'ऋग्वेद' में उल्लेख है 'राष्ट्रम् धारयताम् ध्रुवं' अर्थात् राष्ट्र को स्थिरता प्रदान करना चाहिए। राष्ट्र देश, लोक इत्यादि के संदर्भ में आधुनिक कवियों ने भी कई प्रकार से अपनी भावनाओं को व्यक्त किया है। ''जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है / वह नर नहीं, नर-पशु निरा है और मृतक समान है।'' ये पंक्तियाँ ठीक-ठीक किसकी है यह बताना यद्यपि कठिन है तथापि उपलब्ध स्रोतों के आधार पर इसे मैथिलीशरण गुप्त, गयाप्रसाद शुक्ल सनेही, महावीर प्रसाद द्विवेदी की काव्य पंक्तियाँ कहा गया है, परंतु कविता की भाव-भूमि में देशाभिमान को रेखांकित किया जा सकता है। इस प्रकार अनेकानेक संदर्भों में राष्ट्र के संबंध में प्रेम, समर्पण एवं जागृति को महत्वपूर्ण माना जाता रहा है।

राष्ट्र निर्माण में योगदान करना संस्कृति ही कहलाता है। राष्ट्र की मजबूती से ही संस्कृति युगों-युगों तक जीवित रहती है। भारत के इतिहास पर दृष्टिपात करें तो यह ज्ञात होता है कि भारत की अखंडता को अक्षुण्ण रखने के लिए अनेकानेक सम्राटों ने अथक प्रयास किए। उत्तर-दक्षिण और पूर्व-पश्चिम को संगठित करने में चंद्रगुप्त मौर्य, सम्राट अशोक, छत्रपति शिवाजी, पेशवा बाजीराव इत्यादि ने कई प्रयास किए और बहुत बार उन्हें सफलता भी मिली। राष्ट्र के प्रति संगठन एवं प्रेम के अन्यतम उदाहरणों में इन्हें देखा जा सकता है।

राष्ट्र और संस्कृति की एकता में क्षेत्रीय भाषा भेद व्यवधान बनता है। यद्यपि यह किसी क्षेत्रीय राजनीतिक दलों द्वारा समर्थित भेद होता है तथापि जनमानस को कलुषित करने का साधन बन जाती है। भाषा भेद की दृष्टि से परे राष्ट्र एवं संस्कृति की एकता सहज दृष्टिगोचर

होती है। कई विद्वान भारतीय भाषा के भेद विलगाव को स्वीकार नहीं करते। वे मानते हैं कि सभी भाषाओं का सांस्कृतिक दृष्टि से एक गहरा अंतर्संबंध है। अत: रूप एवं संरचना में पार्थक्य होने के बावजूद भाषाई एकता सहज ही स्थापित है।

एक राष्ट्र के सभी जन एक ही संस्कृति का निर्वाह करते हैं। पूर्वजों से प्राप्त मूल्यों को आत्मसात करते हुए भावी पीढ़ी को अंतरित करते हैं। भारत की एकता और अखंडता हमारी संस्कृति का अंग है। इसलिए भारत की अखंडता को खंड-खंड करने के लिए आक्रांताओं ने विभाजनकारी बीज बोए। उन्होंने भारतीय संस्कृति को नष्ट करने का उद्यम किया और अपनी संस्कृति को थोपने का प्रयास किया। वे जानते थे कि संस्कृति ही एक ऐसा हथियार है, जिसके बल पर किसी भी राष्ट्र को तोड़ा जा सकता है और जोड़ा भी जा सकता है। समय-समय पर भारत के कई हिस्से हुए हैं, परंतु उसकी अखंडता और संप्रभुता पर कभी भी चोट नहीं पहुँच पाई है। राष्ट्र के प्रति आदर्शवादी दृष्टि विकसित करने में संस्कृति सहायक होती है। सामाजिक एकता से सांस्कृतिक एकता और इन दोनों से राष्ट्रीय एकता का बोध निर्मित होता है। अत: किसी भी देश में एकता के लिए समानता का आग्रह सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण होता है।

भारत राष्ट्र के रूप में एक है, परंतु इस गणराज्य में प्रत्येक राज्य की अपनी एक प्रादेशिक संस्कृति देखने को मिलती है। जब भारतीय संस्कृति की बात होती है, तो सभी प्रादेशिक संस्कृतियों के समन्वय से भारतीय संस्कृति के विशाल स्वरूप का निर्माण होता है। इस तरह समन्वित भारतीय संस्कृति को सामासिक संस्कृति कहा जाता है। भारतीय संविधान में भी सामासिक संस्कृति पर विचार हुआ है। संविधान के अनुच्छेद 351 में इसका उल्लेख मिलता है। आचार्य किशोरीदास वाजपेयी ने अपनी पुस्तक 'संस्कृति का पाँचवाँ अध्याय' में लगभग इसी दृष्टि से राष्ट्रीय एकता के संबंध में लिखा है कि "संस्कृति की एकता उन्हें पृथक नहीं होने देती उनका वर्गश: या मतश: पार्थक्य जातीय एकता का बाधक नहीं हो सकता; क्योंकि एक जाति की एक ही संस्कृति होती है और सांस्कृतिक एकता सबको एक किए रहती है।"

उपरोक्त कथन भारतीय संदर्भ में सटीक जान पड़ता है। भारतीय संस्कृति के उस सामासिक स्वरूप को देखने के लिए भारतीय पर्वों का उदाहरण लिया जा सकता है। प्रत्येक राज्य में एक ही त्योहार अलग-अलग नामों से मनाया जाता है। इन त्योहारों को मनाने की रीति लगभग एक-सी है। जैसे ब्रह्म मुहूर्त में उठना, साफ-सफाई करना, स्नानोपरांत सूरज को प्रणाम करना, पशुओं को नहलाना, उनकी पूजा करना आदि-आदि। यह रीति लगभग सभी राज्यों में पाई जाती है। इसे एक गुण एवं नाम रूप अनेक कहा जा सकता है। भौगोलिक विविधता के कारण इन त्योहारों को अलग-अलग समय में मनाया जाता है। इस तरह इन त्योहारों के माध्यम से सामासिक संस्कृति और सांस्कृतिक एकता दिखाई देती है।

जब एक देश के निवासी किसी अन्य देश में बस जाते हैं और वहाँ की नागरिकता प्राप्त कर लेते हैं, तब समय के साथ-साथ वहाँ की संस्कृति का भी अनायास ही अंगीकार करते हैं। परंतु यह भी निर्विवाद सत्य है कि वे अपनी देशज संस्कृति का पूर्णत: त्याग नहीं कर सकते। भारत के लोग विश्व के अन्य देश यथा - कनाडा, अमेरिका, इंग्लैंड, ऑस्ट्रेलिया, श्रीलंका, रूस, मॉरीशस आदि देशों में बस चुके हैं। यह भौगोलिक विस्थापन कई दशकों एवं सदियों में हुआ है, परंतु वे लोग भारतीय संस्कृति का अनुसरण भी करते हैं और उस देश की संस्कृति में भी घुल-मिल जाते हैं। इस प्रकार उनके जीवन में वैश्विक स्तर पर एक सामासिक संस्कृति का नवीन रूप विकसित हो जाता है। यह भी कि विदेशों में बसे हुए भारतीय भारीत्य संस्कृति के संवाहक कहलाते हैं। अनेक प्रसंगों में देशज संस्कृति के परिचय की दृष्टि से सरकारें दूतावासों के माध्यम से सांस्कृतिक अध्ययन केंद्र स्थापित करती हैं। ऐसे ही केंद्रों में 'भारत अध्ययन केंद्र' भारतीय संस्कृति को विदेशों में पल्लवित करते हैं।

विदेशों में रहने वाले अलग-अलग राज्यों के भारतीय समग्र रूप में भारतीय ही कहलाते हैं। विदेशी भी उन्हें भारतीयों के रूप में पहचानते हैं। अत: भारत की आंतरिक विविधता की बात विदेश में जाकर बेमानी साबित होती है। इस प्रकार विदेशों में रहने वाले भारतीयों की दृष्टि से 'राष्ट्र' एवं 'संस्कृति' का एकात्म रूप उनके लिए

एकीकरण का सूत्र बन जाता है। इस संदर्भ में आचार्य किशोरीदास वाजपेयी का कथन सटीक प्रतीत होता है - ''एक जाति या राष्ट्र में जो एक सूत्र होता है, सबको बांध रखने वाला, वही संस्कृति है।'' उल्लेखनीय है कि राष्ट्र का सांस्कृतिक सूत्र ही सबको एकसूत्र में पिरोए रखता है।

प्रत्येक देश की अपनी पृथक संस्कृति होती है। उसकी अपनी विशेषताएँ होती हैं। इस दृष्टि से भारतीय संस्कृति का स्वरूप पाश्चात्य तथा अन्य संस्कृतियों से अलग है। प्राय: संस्कृति के संकर स्वरूप के कारण अलग-अलग देश के लोगों में एक स्वाभाविक उलझन दिखाई देती है। भारतीय संदर्भ में पाश्चात्य संस्कृति के कारण लोगों में प्राय: द्वंद्व दृष्टिगोचर होता है। भारत में पाश्चात्य संस्कृति की नकल को अपसंस्कृतिकरण की दृष्टि से देखा जाता है।

इसी प्रकार अन्य देशों में भी भारतीयों के सांस्कृतिक प्रेम के कारण यदा-कदा उनका विरोध देखने को मिलता है। उन देशों के मूल-निवासियों का मानना होता है कि समय आने पर या आवश्यकता पड़ने पर भारतीय लोग उनका साथ नहीं देंगे। उनके भारतीय संस्कृति प्रेम के कारण वे भारत देश का ही समर्थन करेंगे, परंतु अखिल विश्व में भारत की पहचान शांति प्रिय एवं उदारतावादी राष्ट्र के रूप में होने के कारण ऐसी प्रतिक्रियाएँ तात्कालिक और पूर्वाग्रहपूर्ण होती हैं। यह भी देखने को मिलता है कि विदेशों की सत्ता प्राय: एक संतुलन बनाने का प्रयास करती है, क्योंकि यह उनकी विदेश नीति का हिस्सा होता है।

वर्तमान में भिन्न-भिन्न देशों के व्यापारिक संबंधों के कारण विधि सम्मत लोगों की आवाजाही और श्रम विनिमय के कारण कार्मिकों का जीवन विदेशों में सहज-सुगम हो पा रहा है। इससे सांस्कृतिक आदान-प्रदान और भौगौलिक सीमाओं की संकीर्णता कुछ हद तक कम हुई है। इससे दूसरे देशों में रहने वाले किसी भी देश के नागरिक अपने राष्ट्र एवं संस्कृति के प्रति एक विराट भाव सहज ही व्यक्त कर पा रहे हैं। यह सहिष्णुता की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण परिवर्तन कहा जा सकता है।

अत: कहा जा सकता है कि प्रत्येक राष्ट्र की अपनी संस्कृति होती है और उस राष्ट्र के निवासियों द्वारा उसके प्रति स्नेह और लगाव होता है। संस्कृति राष्ट्र की पहचान होती है। यदि किसी राष्ट्र की संस्कृति पर हमला होता है तो उसे राष्ट्र पर हमला माना जाता है। इसलिए उसके संरक्षण और निर्वहन में वहाँ के निवासियों का अहम योगदान होता है।

संस्कृति को राष्ट्र से और राष्ट्र को संस्कृति से अलग करके नहीं देखा जा सकता। राष्ट्र एवं संस्कृति का संबंध भावना से जुड़ा हुआ है। यह भी कि संस्कृति के अनेक अंग हैं, जिनमें धर्म भी एक पहलू है। कई विद्वान धर्म को संस्कृति से जोड़कर भी देखते हैं। संस्कृति और धर्म के अंतर्संबंध को नकारा भी नहीं जा सकता। इसका अपना एक विशेष प्रभाव होता है। ❑

संदर्भ :

- डॉ. आनंद पाटील, राष्ट्र की उन्नति हेतु चिंतन का सकारात्मक उपक्रम है राष्ट्रवाद— चयनात्मक संवेदना भाग-3, स्वराज्य, 23 जुलाई 2020 (swarajyamag.com)
- एस. आबिद हुसैन, भारत की राष्ट्रीय संस्कृति (अंग्रेजी से हिंदी अनुवाद : दुर्गा शंकर शुक्ल), पृ. 04, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास दिल्ली, प्रथम संस्करण 1984
- यजुर्वेद, 9.23
- ऋग्वेद 10/173/5
- वी. गंगाधरन, द्विवेदीयुगीन आख्यान काव्य , पृ. 70, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2007
- किशोरीदास वाजपेयी, संस्कृति का पाँचवाँ अध्याय, पृ. 19, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2007
- वही, पृ. 26

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

आलेख

हिंदी उपन्यासों में किन्नर जीवन का मनोविज्ञान

दिवेश कुमार चंद्रा

पीएच.डी शोधार्थी, हिंदी विभाग
मिजोरम विश्वविद्यालय
आइजल-796004
9506764716

प्रो. सुशील कुमार शर्मा

शोध निर्देशक, वरिष्ठ आचार्य
मिजोरम विश्वविद्यालय
आइजल, मिजोरम-796004
9366112421

शोध सार :

मन के विशिष्ट और व्यवस्थित ज्ञान को मनोविज्ञान कहते हैं, जिसमें प्राणी और वातावरण के बीच संपूर्ण अभियोजन से संबद्ध अनुभूतियों और व्यवहारों का अध्ययन किया जाता है। सामान्य लैंगिक मनुष्य के समान ही किन्नर व्यक्ति में भी संवेगों की प्रधानता होती है। देखा जाए तो प्रेम, अपनत्व, सुरक्षा की चाह एक किन्नर में सामान्य मनुष्य से अधिक होती है। विडंबना ही है कि किन्नरों को अपने संवेगों के कारण ही समाज में मानसिक यंत्रणा से गुजरना होता है। जिस अपनत्व की चाह की किन्नर समाज से अपेक्षा रखता है, समाज में उसे उसी रूप में उपेक्षित किया जाता है। समाज में किन्नरों को अपनी दैहिक विशेषताओं के लिए शर्मसार होना पड़ता है। निरंतर मिलने वाली मानसिक प्रताड़ना से किन्नर व्यक्ति का व्यक्तित्व निर्माण नहीं हो पाता। उसे अपना सारा जीवन डर के साये में ही गुजारना पड़ता है। जिस मानसिक संबल और सहानुभूति की तलाश में किन्नर भटकता रहता है, वह उसे आजीवन नहीं मिल पाता।

मूल विषय : भारतीय समाज एक पुरुष प्रधान समाज है। हमारे समाज में आए दिन स्त्रियों का यौन उत्पीड़न होता है। जिस समाज में स्त्रियों के साथ इतना घृणित व्यवहार किया जाता है, वहाँ किन्नरों के साथ होने वाले व्यवहार की हम कल्पना मात्र नहीं कर सकते हैं। किन्नर बालक अपने हाव भाव एवं व्यवहार से स्त्री सदृश्य होता है। किन्नरों को भी शारीरिक शोषण का शिकार होना पड़ता है। किन्नर बालक को बचपन से ही अपनी यौनिकता के कारण उपेक्षा का शिकार होना पड़ता है। किन्नर बालक को अपने निकट के पारिवारिक एवं सामाजिक रिश्तों में ही सर्वप्रथम कम उम्र में ही सारे शोषण का शिकार होना पड़ता है। उसका यौन उत्पीड़न किया जाता है, जिससे किन्नर बालक को भय वह मानसिक यंत्रणा से गुजरना पड़ता है।

लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी अपनी आत्मकथा 'मैं लक्ष्मी... मैं हिजड़ा' में बचपन में ही अपने स्त्री स्वभाव के कारण गाँव में आयोजित विवाह

समारोह में अपने से बड़ी उम्र के लड़कों द्वारा बलात्कार का शिकार होती है। अपनी आत्मकथा में लक्ष्मी अपने साथ हुई आपबीती को बताती है। ''एक दिन खेलते-खेलते एक रिश्तेदार का लड़का मुझे अंधेरे कमरे में ले गया, और ... मुझे कुछ याद नहीं; ... मुझे बहुत तकलीफ हुई और चक्कर आ गया। बस इतना सा कुछ कुछ याद है। उसने बहुत प्रयासों के बाद मुझे जगाया और धमकाया कि अगर किसी को कुछ बताया तो देख लेना।... उसके बाद शादी के घर में इस तरह की घटनाएँ बार-बार घटीं और सिर्फ वही लड़का नहीं और भी कई लड़के मेरा फायदा उठाते रहे बहुत तकलीफ हो रही थी। शारीरिक और मानसिक।''[1]

'जिंदगी 50-50' भगवंत अनमोल की कृति है। इस उपन्यास की किन्नर पात्र हर्षा सारी परिस्थितियों से जूझती है। वह स्कूल से वापस आते समय गाँव के आदमी के द्वारा बलात्कार करने की घटना पिता के डर के कारण किसी के सामने उजागर नहीं कर पाती...।

''अब मेरी आँखों में सिर्फ दर्द के आँसू निकल रहे और वह हैवान मेरे शरीर से मजे लेता रहा। मैं पेट के बल लेटी रही, मेरा हाथ सीने से दबा था और उस पर कंकड़-पत्थर चुभ रहे थे। मैं चीख रही थी, वैसी का आनंद लेता रहा था कुछ देर बाद उसने मुझे झिड़क कर फेंक दिया, जैसे कोई संडास में इस्तेमाल के बाद टिशू पेपर फेंक देता है, कपड़े पहन कर चुपचाप घर चले जाना! और सुन अगर कौनो से बताया तो तेरी और अमन की कहानी जगजाहिर कर दूँगा।''[2]

'गुलाम मंडी' उपन्यास प्रदीप सौरभ की कृति है। उपन्यास में अंगूरी किन्नर होने के बाद भी सम्मानजनक जीवन जीने की तलाश में वे घरों में जाकर काम माँगती है। तब वहाँ रहने वाले उसे न सिर्फ बेइज्जत कर भगाते हैं, बल्कि पुलिस के हवाले भी कर देते हैं। पुलिस भी अंगूरी का शारीरिक शोषण करती है। ''मेरे दाढ़ी मूँछ नहीं निकले। आवाज छोरियों जैसी रह गई तो सब मेरे को मारते- चिढ़ाते- खिजाते थे। बाप भी जब देखो तब हाथ छोड़ देता था। मैं घर से भाग गई पर भूखी मर गई, कोई काम भी नहीं देता था। लोगों के घर बर्तन माँजने गई तो बोले हिजड़े से बरतन... ? मैंने कह दिया ...से बर्तन थोड़ी माँजते हैं, माँजते तो हाथ से हैं ना तो घराती ने थाने में रिपोर्ट कर दी कि हिजड़ा घर की औरतों को छेड़ रहा है। अश्लील बातें कर रहा है। पुलिस पकड़ कर ले गई। मारा भी और रेप भी किया। अब पूछो कानून के रखवालों से, भला हिजड़ों को पुरुष थाने में क्यों भेजते हैं।''[3] अंगूरी किन्नर होने के कारण समाज और प्रशासन की यातना का शिकार होती है।

'पोस्ट बॉक्स नं. 203 नालासोपारा' चित्रा मुद्गल द्वारा लिखित एक प्रसिद्ध उपन्यास है। उपन्यास की किन्नर पात्र 'पूनम जोशी' को सामान्य मुख्यधारा में शामिल लोगों की बर्बरता का शिकार होना पड़ता है। ''विधायक की पार्टी में उसके फार्म हाउस पर 'पूनम' को डांस के लिए बुलाया जाता है और विधायक का भतीजा बिल्लू और उसके साथी पूनम के साथ नृशंस तरीके से शारीरिक शोषण करते हैं। वे लोग पूनम को अकेले में कपड़े बदलते समय अपना शिकार बनाते हैं।''[4]

किन्नर बालकों को अपनी लैंगिक प्रकृति स्त्री के समीप होने के कारण विद्यालय जैसी शिक्षण संस्थाओं में भी हैवानियत का शिकार होना पड़ता है। विद्यालय में साथ ही छात्रों के साथ-साथ ईश्वर एवं माता-पिता के बराबर माने जाने वाले गुरु भी बालकों का शारीरिक शोषण करने से नहीं चूकते हैं। बेंगलुरु के विद्यालय में रंजीता किन्नर अपने सहपाठी लड़कों एवं अध्यापकों की यौन हिंसा का शिकार होती है। वह स्वयं बताती हैं- ''वे मुझ पर कमेंट करते जबरन मेरा चुंबन लेते। अब

तक मेरा हाव-भाव लड़कियों की तरह जाहिर होने लगा। मेरी आवाज बारीक थी। सभी मुझ पर हँसते थे । फिर एक दिन वह दिन भी आया, जब मेरे ही स्कूल के 12वीं के लड़कों ने मेरे साथ क्लास के टॉयलेट में बलात्कार किया। यह अक्सर होने लगा। सहपाठियों के अलावा रंजीता टीचर से भी बुरी तरह परेशान थी। कुछ टीचर ने भी उसका यौन शोषण किया। कुछ टीचर उसे मारते पीटते। रंजीता के अनुसार वे कहते-मर्द की तरह रहो मुझे रोने तक नहीं दिया जाता।''[5] इस प्रकार विद्यालयों में किन्नर बालकों के साथ शारीरिक शोषण किया जाता है।

किसी तरह की शारीरिक विकृति एक मनुष्य को भावनात्मक स्तर पर पूर्ण रूप से तोड़ देती है और अगर यह विकृति एक किन्नर की हो तो और बृहद परिप्रेक्ष्य में सामने आती है। अपनी लैंगिकता के कारण किन्नर को मानसिक एवं भावनात्मक पीड़ा से गुजरना पड़ता है। अपनी लैंगिकता एवं अजीब शारीरिक बनावट, अजीब हरकतों एवं पहनावे के बावजूद एक किन्नर अपने मन, अपनी भावनाओं और संवेदनाओं को समेटे हुए होता है। दैहिक, जैविक रूप में चाहे वह बाह्य आवरण एक पुरुष का हो, परंतु आंतरिक अनुभूतियों, परिधान में यह पूर्ण स्त्री के समकक्ष है। सभ्य समाज चाहे किन्नरों की संवेदना, अनुभूतियों को नकारता रहे, फिर भी ये गुण किन्नरों में भी सामान्य मनुष्य की तरह जन्मजात होते हैं।

डिंपल किन्नर गुरु होने के साथ-साथ मंजू की माँ भी थी। वह मंजू का ध्यान उसी तरह रखती है, जिस तरह कोई सामान्य माँ अपनी संतान का ध्यान रखती है। डिंपल में आ रहे शारीरिक बदलाव से मंजू कुछ हैरान होते हुए भी ज्यादा परेशान नहीं थी, पर मंडली के साथ धंधे पर जाने वह अक्सर ही आनाकानी करने लगी, डिंपल का चिंतित होना स्वाभाविक था। हालाँकि डिंपल के मन में हमेशा यह रहता कि मंजू उसकी बिरादरी की नहीं है, पर उसने मंजू को बड़े नाज से पाला था और उसे हर बुरी नजर से दूर रखने में उसने कोई कसर नहीं छोड़ी थी। हर शनिवार को वह शनि मंदिर में जाकर उसकी नजर उतरवाती थी। उसके खाने-पीने का भी वह खास ध्यान रखती थी। सोते वक्त अपने हाथ से दूध पिलाती। मंजू डिंपल को अपनी माँ की तरह मानती थी।''[6]

अपनी संतान के लिए ही नहीं, बल्कि किन्नर मन में अपने माता-पिता के लिए भी संवेदनाएँ रहती हैं। माता-पिता चाहे समाज के डर से उस संतान को त्याग दें, अपने से दूर कर दें, फिर भी अपने जन्म देने वाले माता-पिता से किन्नर अपना लगाव नहीं खत्म कर पाते।

'यमदीप' उपन्यास की किन्नर पात्र नाजबीबी को अपने अन्य संतानों के भविष्य को देखते हुए माता-पिता त्याग देते हैं। बड़े भाई की हिदायत पर वह अपने घर माता-पिता से मिलने भी नहीं आ पाती। जब नाजबीबी को अपनी माँ के बीमार होने की सूचना मिलती है तो वह संतान होने के नाते स्वयं को नहीं रोक पाती। तमाम अपमान के बावजूद वह अपनी माँ से मिलने घर पहुँच जाती है। ''कल वह मम्मी को देखने जरूर जाएगी। भले ही घर में अपमान हो, पर अब मम्मी से मिले बिना उसे चैन नहीं आएगा। एक बार गले से लिपट कर रो लेगी तो संतोष हो जाएगा। मम्मी की विदा होने वाली आत्मा से वचन ले लेगी कि अगले जन्म में भी वही उसकी माँ बने... पर इस तरह उससे अलग रहने के लिए नहीं... अपने साथ रखें मम्मी उसे... अपने आँचल की छाह में बहुत धूप लगती है अलग रहकर।''[7] इसमें वात्सल्य प्रेम अभिव्यक्त हुआ है। संतान का पूर्ण कर्तव्यबोध निमित है और अपने दायित्व को नि:स्वार्थ निर्वहन करता है।

किन्नरों के शरीर में विभिन्न संवेग उद्वेलित होते रहते हैं। समय एवं परिस्थितियों के साथ ये संवेग बाहर भी प्रकट होते हैं। समाज एवं परिवार द्वारा त्यागने पर किन्नर जहाँ अकेलापन महसूस करता है, वहीं सभ्य समाज द्वारा किए जाने वाले व्यंग्यात्मक व्यवहार से उनके मन में घृणा, ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध जैसे संवेग भी उत्पन्न होते हैं। 'तीसरी ताली' महेंद्र भीष्म की कृति है। गौतम साहब द्वारा अपनी पुत्र विनीत के अस्तित्व को अस्वीकार करने के कारण विनीत से विनीता बनने के सफर में विनीता को जीवन के अनेक उतार-चढ़ाव से गुजरना पड़ता है। इन्हीं उतार-चढ़ाव में विनीता कभी अकेलापन, कभी घृणा तो कभी क्रोध आदि संवेगों का अनुभव करती है।

अपने संघर्षों से प्राप्त सफलता में भी वह स्वयं को अकेला ही महसूस करती है। किन्नर की चाह एक पुरुष साथी के साथ शारीरिक संबंध बनाने की होती है।

सृष्टि के सभी प्राणियों में मानव सर्वाधिक भावुक प्राणी है। अपने जीवन संघर्ष में वह अनेक अनुभवों से गुजरता है। इन्हीं अनुभवों से वह अपने संबंधों में स्थिरता व परिपक्वता प्राप्त करता है। 'आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी' के अनुसार, ''कमजोरों में भावुकता अधिक होती है।''[8] अर्थात जो स्त्री या पुरुष शारीरिक, मानसिक व संवेगात्मक रूप से कमजोर अस्थिर होते हैं उनमें भावुकता सामान्य लोगों की तुलना में अधिक पाई जाती हैं। स्त्रियों में शारीरिक कमजोरी पुरुषों की तुलना में ज्यादा होती है, इसीलिए स्त्रियाँ भावुकता के झंझावतों से अधिक करीब होती हैं। किन्नर बालक शारीरिक कमी से जीवन पर्यंत जूझता है, इसलिए उसका भावुक होना, उसके संवेग में अस्थिरता स्वाभाविक है। किन्नर बालक बचपन से ही अपनी लैंगिकता को लेकर आशंकित रहता है। कई बार अपने मूल लिंग को स्वीकार न कर पाने के कारण एवं शरीर व मन में भिन्नता के कारण वह आजीवन असमंजस की स्थिति में रहता है।

किन्नरों के मनोभाव स्त्रियों की तरह होते हैं, इसीलिए अपने शरीर एवं मन दोनों में ही दोनों लिंगों की प्रकृति के कारण किन्नर व्यक्ति मानसिक रूप से अस्थिरता का शिकार होता है। मानोबी बंधोपाध्याय एक ट्रांसजेंडर है, 'पुरुष तन में फँसा मेरा मन' अपनी आत्मकथा में लिखा है कि जिनका जन्म पुरुष शरीर के साथ हुआ है। बचपन से ही मानोबी अपनी लैंगिक पहचान को लेकर घुटन में रहती है। अपनी आपबीती को वह अपनी आत्मकथा में साफ-साफ बताती है। ''मेरा दिमाग दुविधा में उलझ जाता और यह संघर्ष मुझे भीतर ही भीतर चीर देता। क्या मैं सच में एक स्त्री हूँ और पुरुष की देह में कैद हूँ या केवल भ्रामक विचार है? ऐसा क्यों है कि सारा संसार मुझे एक पुरुष मानता है, जो एक जनखे से ज्यादा नहीं है? मैं घंटों दर्पण के सामने खड़ी होकर, अपने सामने दिख रही छवि का परीक्षण करती जो मुझे घूरती दिखाई देती। मुझे उस पुरुष देह से घृणा थी। मैं उस पुरुष देह से इतना सा भी जुड़ाव महसूस नहीं कर पाती थी। उस सपाट देह में कहीं कोई उतार-चढ़ाव नहीं थे।''[9]

निष्कर्ष : किन्नर व्यक्ति को विभिन्न परिस्थितियों से गुजरने के कारण अपने संवेगों को स्थिरता प्रदान करने में कठिनाई होती है। अपने विभिन्न संवेग प्रेम, संवेदना, क्रोध, घृणा आदि पर समय के साथ किन्नर व्यक्ति भी काबू करना सीखता है। विभिन्न परिस्थिति में सामान्य व्यक्तियों की तरह ही विभिन्न संवेग समय-समय पर उद्वेलित होते हैं। समाज से परित्यक्ता होने के कारण किन्नर बालक में आत्मविश्वास की कमी होती है। उसे कभी वह माहौल ही प्राप्त नहीं होता, जिसमें वह अपने व्यक्तित्व के गुणों का विकास कर सके। ❑

संदर्भ :

1. मैं लक्ष्मी... मैं हिजड़ा!, लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी, पृ. 28
2. जिंदगी 50-50, भगवंत अनमोल, पृ. 159
3. गुलाम मंडी, प्रदीप सौरभ, पृ. 11
4. पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा, चित्रा मुद्गल, पृ. 203
5. पोस्ट बॉक्स नंबर 203 नालासोपारा, चित्र मुद्गल, पृ. 205
7. तीसरी ताली, महेंद्र भीष्म, पृ. 28
8. https://www.hindisahity.com/hajari-prasad-dwivedi/
9. पुरुष देह में फँसा मेरा मन, मानोबी बंधोपाध्याय, पृ. 97

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

आलेख

जीवन मूल्य के धनी कवि रमाशंकर यादव 'विद्रोही'

आलिया जेसमिना

पीएच.डी. शोधार्थी
हिंदी विभाग, तेजपुर केंद्रीय विश्वविद्यालय
नपाम, तेजपुर, शोणितपुर, असम-784028
6901609418/7663894818
aliyajesmina12@gmail.com

शोध-सार :

आदिकाल से ही भारतीय साहित्य में कविता सृजन की समृद्धशील परंपरा रही है। हिंदी साहित्य भी इससे अछूता नहीं है। हिंदी साहित्य की काव्य विधा अनेक परिस्थितियों के चलते समय-समय पर परिवर्तन व प्रगतिशीलता के पथ पर अग्रसरित रही। समाज के तमाम मूल्य को अभिव्यक्त करने या उसके परिवर्तनशीलता को व्याख्यायित करने की सशक्त विधा है 'कविता'। इसीलिए अनादि काल से ही कविताओं के माध्यम से जीवन यथार्थ का जो स्वर गाया जा रहा है, उसकी प्रासंगिकता आज भी बनी हुई है। अत: हिंदी साहित्य में ऐसे अनेक कविगण हुए, जिन्होंने अपनी कवि-प्रज्ञा के माध्यम से भारतीय समाज व संस्कृति, जीवन-मूल्य तथा समकालीन परिदृश्य को सफलतापूर्वक शब्दबद्ध करने का प्रयास किया है। इसी पारंपरिक श्रृंखला में आने वाले महान हस्ताक्षर समकालीन कवि रमाशंकर यादव 'विद्रोही' अप्रतिम हैं, जिन्होंने अपनी काव्य-प्रतिभा के माध्यम से भोगे हुए यथार्थ के साथ-साथ समाज में फैले अराजकता, अनाचार, व्याभिचार, खोखलेपन, भ्रष्टाचार आदि का अभिनव चित्रण किया है। आपने अपनी कविताओं के माध्यम से समाज में व्याप्त सकारात्मक और नकारात्मक, दोनों तरह के मूल्य को बारीकी से पहचाना है और अपने विद्रोही स्वर के साथ उसे गाया भी है। समकालीन कविता के दौर में आप एक ऐसे समावेशी चेतना हैं, जो न केवल समकालीन परिस्थितियों तक ही जीवित हैं, बल्कि अतीत के गर्त और भविष्य के परिदृश्य को भी सफलतापूर्वक प्रकट करने की अनवरत क्रम में सप्राण हैं। अत: प्रस्तुत शोधालेख में समकालीन कवि रमाशंकर यादव 'विद्रोही' जी की कविताओं को गहराइयों के साथ समझने की कोशिश एवं उनकी कविताओं में अभिव्यक्त तमाम मूल्यों को विस्तार से जानने की भरसक प्रयास रहा है।

बीज शब्द : भारतीय साहित्य, हिंदी साहित्य, समकालीन कविता, रमाशंकर यादव 'विद्रोही', जीवन मूल्य, सकारात्मक, नकारात्मक, अराजकता, अनाचार, व्याभिचार, भ्रष्टाचार, खोखलापन आदि।

मूल आलेख : समकालीन कवि रमाशंकर यादव 'विद्रोही' (1957 ई.-2015 ई.) की कविताओं के संवेदना पक्ष पर मुखर रूप से दृष्टि डालने से पूर्व उस युग की पृष्ठभूमि पर संक्षिप्त रूप से प्रकाश डालना आवश्यक है। समकालीनता का संदर्भ सामाजिक सापेक्षिकता से हैं। विद्रोही उस दौर के कवि हैं, जिस दौर में भारतीय जनमानस सत्ता पक्ष से मोहभंग होकर क्षोभित था। एक तरह स्वाधीनता के पश्चात देश में उपजे मोहभंग, तो दूसरी ओर विस्थापन की भयानकता, विभाजन की त्रासदी, धोखादारी, ऊँच-नीच, जाति-भेद की सामाजिक असमानता ने देश को टुकड़ों में बाँट दिया। स्वराज प्राप्ति के उपरांत देश में स्वतंत्रता की लहर प्रवाहित तो अवश्य हुई, लेकिन यह आजादी समवेत दस्तावेजों तक सीमित रही, आम आदमियों के प्रगतिशील स्वप्न को पूर्णतः छू नहीं पाई। परिणामतः तमाम विमर्श एवं आंदोलन के विचार उभर कर आए। यह आंदोलनमुखी विचारधारा शोषण के हर पहलुओं को खत्म कर नए अभ्युदय के लिए विकसित होने लगी। सत्ता के राजनेताओं व ठेकेदारों के मुखौटे खुलने लगे। संवैधानिक तौर पर प्राप्त हुई स्वाधीनता के मूल्य जनता जनार्दन के सन्मुख तक तो पहुँची, लेकिन मानसिक रूप से भारतीय अवचेतन अभी भी अनन्याश्रित न हुई। लोग आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक विडंबनाओं से संघर्षरत थे। साहित्य इससे अछूता न रह पाया। साहित्यकार के रग-रग में विद्रोही स्वर उभरने लगे। यह क्रांतिकारी स्वर समकालीन कविता की जमीन तैयार कर रहे थे। यह क्रांतिकारी चेतना कविताओं में नवीन जीवनबोध, नई भाव-भूमि, नई-संवेदना, नए शिल्प-शैली चेतना समाहित करने लगी। साहित्यिक समाज भारतीय जनमानस के भोगे हुए यथार्थ को कविता का विषय बनाने लगा। इस दौर के साहित्य में आम-जनमानस की त्रासद एवं उनकी समस्याओं का यथार्थपरक चित्रण हुआ। कवि समाज को यह ज्ञात हो गया था कि देश के सत्ताधारी लोग आम जनता के दुःख दर्दों से मुँह फेर चुके हैं। उनके यह गैरमुनासिब करतूतों पर तीखे प्रहार की आवश्यकता महसूस हुई। इस संदर्भ में हम समकालीनता के मुखर व्यतित्व, जनपक्षधर कवि, जनचेतना परक कविता के अग्रिम कृतित्व 'रमाशंकर यादव विद्रोही' को सूचीबद्ध कर सकते हैं। आपने समकालीन मुद्दों के साथ जिस तरह से चुनौतीपूर्ण लेखनों को हमारे सामने रखा है, जिससे आपके बेबाक व्यक्तित्व को सहज ही परखा जा सकता है।

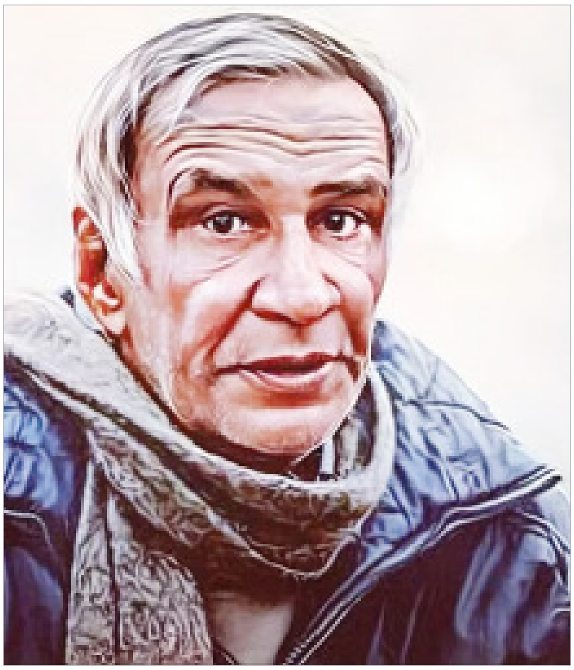

'विद्रोही' की कविताएँ मानव जीवन मूल्य, उनके अस्तित्व, सामाजिक विसंगति आदि संवेदनाओं से परिपूर्ण हैं। आपकी कविताओं को पढ़ने के पश्चात यह सहज ही बोध होता है कि आप मध्यकालीन दौर के महाकवि कबीर, छायावादी कवि निराला और आगे मुक्तिबोध आदि की परंपराओं में आने वाले कवियों की तरह ही आक्रोश भरी वाणियों को शब्दबद्ध करने में उच्च स्थान के हकदार रहे। क्रांतिकारी लहर उत्पन्न करने वाले कवि रमाशंकर यादव की कविता अपने समकालीन समय और समाज से जुड़ी हुई प्रतीत होती है। वे अपनी कविताओं के माध्यम से तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक आदि की बनावटी व्यवस्था से न केवल बुनियादी तौर पर, बल्कि उसकी अमानवीय

परिस्थितियों से लगातार संघर्ष करते हुए परिलक्षित होती हैं। मुझे कभी यह सौभाग्य नहीं हुआ कि आपको सामने से सुन सकूँ, परंतु तकनीकी विकास के इस दौर में किसी तरह आपकी बुलंद आवाज से बकायदा परिचित हुई हूँ। आपके स्वर्गवास के तीन महीने पूर्व आपकी जीवन शैली को लेकर लगभग सात साल पूर्व एक डॉक्यूमेंट्री (जिसका शीर्षक है-'मैं तुम्हारा कवि हूँ') यू-ट्यूब पर आया था और उससे मुझे काफी कुछ जानकारियों से रूबरू होने का सु-अवसर मिला तथा जेएनयू परिसर में आपकी सादगी जीवनानुभव से, विचारानुभव आदि से प्रेरणा भी मिली। आपकी कविताओं की वाणी कानों में गूँजते ही हृदय के अंत:कण में एक क्रांतिकारी भावनाओं की लहर उत्पन्न हो जाती है। विद्रोही की प्रभावमय वाणियों में ध्वंसात्मकता के साथ-साथ निर्माणात्मक संवेदनजन्यता परिलक्षित होती है। अत: यह तर्क है कि रमाशंकर की कविताएँ नवीन मूल्यों के साथ ही सामाजिक परिवर्तन और विकास की दिशा की ओर अतुलनीय कारक सिद्ध होती हैं।

'विद्रोही' एक जनकवि व जनपक्षधर क्रांतिकारी कवि थे। वे अपनी सारी कविताओं में जनवादी आंदोलन के स्वर को गाया है। इसीलिए इनको जनवादी कविता का नायाब हीरा कहा जा सकता है। इस दृष्टि से आपकी कुछ उल्लीखनीय कविता की सूची है-'नयी खेती, औरतें, मोहनजोदड़ो, जन-गण-मन, दुनिया मेरी भेंस, बीड़ी पीते बाघ, नूर मियाँ का सूरमा, धरम, पुरखे, कथा देश की, कवि, कविता और लाठी, परिभाषा, नानी, गुलाम, हकीकत, तुम्हारा भगवान, चूहे के पक्ष में बयान, लड़ाई, जवाबी कार्यवाही, तोड़ डालो मंदिरों को और फोड़ डालो मास्दिें, खून जलता है, इंकलाब आदि। उक्त कविताओं से यह सहज ही ज्ञात हो जाता है कि कवि विद्रोही के पास न विचारों की ही कमी थी, न ही सौंदर्यबोध की। वे एक सच्चे हृदय के लोक कवि थे। उनके व्यक्तिगत जीवन में आए उत्थान-पतनों को कहीं-कहीं हम उनकी कविताओं में भी ढूँढ़ पाते हैं। आपकी हर एक कविता प्रतीकात्मक है। उन प्रतीकात्मकता के पीछे भारतीय ग्राम्य जीवन के संघर्ष तथा प्राचीन रूढ़िवादी सभ्यताओं के खोखलेपन की अभिव्यक्ति मिली है। 'विद्रोही' ने आदि काल से चली आ रही धर्म की मान्यताओं पर भी चुनौतीपरक उक्ति कहे हैं। धर्म व ईश्वर पर लिखे गईं आपकी बेजोड़ कविताएँ हैं- 'धरम', 'नयी खेती', 'तुम्हारा भगवान', 'तोड़ डालो मदिरों और फोड़ डालो मस्जिदें' आदि। आपकी इन कविताओं के भावपक्ष से यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि आप एक प्रगतिशील क्रांतिकारी थे और धर्म के नाम पर चल रहे छल-कपट, दिखावा, धर्म के नाम पर राजनीति, ऊँच-नीच जाति-भेद आपको कतई पसंद नहीं था। कवि विद्रोही इन तमाम चीजों से लोगों को मुक्ति दिलाने के लिए अनायास लड़ाई लड़ते रहे। रमाशंकर की 'तुम्हारा भगवान' नामक कविता में कहते हैं कि- "**तुम्हारे मान लेने से/ पत्थर भगवान हो जाता है/ लेकिन तुम्हारे मान लेने से/ पत्थर पैसा नहीं हो जाता**"[1], अर्थात कवि इन पंक्तियों के माध्यम से यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि हमारे समाज में अनादि काल से चली आ रही धार्मिक मान्यता, जिसमें हम पत्थर में भी भगवान को पाते हैं और उस पत्थर की पूजा भी करते हैं, अगर किसी पत्थर में भगवान विद्यमान हो सकते हैं तो क्यों हमारे मान लेने से पत्थर पैसा नहीं हो जाता। अगर ऐसा संभव नहीं है तो हम क्यों पत्थर को मानते हैं? क्यों हम पत्थर को पूजते हैं? कवि इन तमाम मान्यताओं का विरोध करते हैं। आगे इनका एक और उदाहरण देख सकते हैं, जैसे- 'धरम' शीर्षक कविता में कवि धर्म के नाम पर होता हुआ भ्रष्टाचार, अन्याय, व्यभिचार, दुर्नीति, भेद-भाव, छुआछूत आदि पर क्षोभ आक्षेप किया है। हमारे देश में धर्म को मानने वाले, उसके निर्माता आदि पर कटु व्यंग्य किया है। आपके शब्दों में, "**धरम देश से बड़ा है/ उससे भी बड़ा है धरम का निर्माता/ जिसके कमजोर बाजुओं की रक्षा में/ तराशकर गिरा देते हैं/ पुराने पोथियों में लिखे हुए हथियार/ तमाम चट्टान तोड़ती छोटी-छोटी बाहें,/ क्योंकि बाम्हन का बेटा/ बूढ़े चमार के बलिदान पर जीता है।**"[2] उक्त काव्य पंक्तियों के माध्यम से यह संवेदना सहज ही उभर कर सामने आती है कि कवि ने उनके बारे में यहाँ वाणी दी है, जिन लोगों ने धर्म के नाम पर न जाने कितने लोगों के साथ अन्याय किया है, उन्होंने धार्मिक ग्रंथों को अपना हथियार

रमाशंकर विद्रोही एक ऐसे कवि है, जिन्होंने इन यथार्थपरक मूल्यों का सामना किया है और उसे कविताओं के माध्यम से सफल अभिव्यक्ति दी है। बहरहाल, यह कहा जा सकता है कि 'विद्रोही' यथार्थ के ठोस धरातल पर खड़े अपने समय के महान हस्ताक्षर हैं। आपकी कविता सहज-सरल बोलचाली भाषा से निकली गंभीर अर्थ प्रकट करने वाली कविता है। व्यवस्थाओं पर प्रश्नचिन्ह लगाने वाले, हक की लड़ाई लड़ने वाली कविता नवीन जीवन मूल्य की बात करती है। आप हमेशा मानव जाति की पीड़ा और दर्द से लड़ने के लिए तत्पर रहते थे। शायद आप इसी क्रांतिकारी स्वभाव के कारण विद्रोही कहे गए।

स्वरूप बना लिया है। जो लोग केवल निम्न जाति के हैं, उनसे कड़ी मेहनत तो कराया जाता है, परंतु धार्मिक दृष्टिकोण से समानता नहीं दी जाती। धर्म के नाम पर हमेशा से ही निम्न जाति को ही बलिदान पर चढ़ाया जाता है। क्या निम्न जाति का कोई जीवन मूल्य नहीं है? क्या उनको आराम से जीने का हक नहीं है? इन तमाम तरह के भाव को तथा इस तरह की धार्मिक मान्यताओं से एवं धार्मिक असमानता पर कवि ने कटुक्ति भरा स्वर मुखरित किया है। कवि हमारे समाज से उन सभी कर्मकांड को उखाड़ फेंकना चाहते हैं, जिनके बलबूते पर समाज में अनैतिक मूल्य का जन्म होता रहा है। इस तरह के भाव की अभिव्यक्ति 'नयी खेती' कविता में भलीभाँति स्वरूपित हुआ है। इसके अलावा कवि उन तमाम धार्मिक अनुष्ठानों को नष्ट करने को कहते हैं, जिसके कारण दिन-ब-दिन धार्मिक रूढ़िवादी स्वर मजबूत होता जा रहा है। कवि मंदिरों को, मस्जिदों को तोड़ने की आपील करते हैं, क्योंकि कवि के ख्याल से इन सबके कारण ही आज समाज व्यवस्था में असमानता पैदा हुई है।

धार्मिक मूल्य के अलावा विद्रोही की कविताओं में अन्य सभी चेतनाओं के लहर भी भरपूर मात्रा में दिखाई पड़ते हैं। जनपक्षधर कवि रमाशंकर की कविताएँ तरह-तरह के दु:ख, तकलीफ, आस्था और उससे मुक्ति की कामनाओं से ओत-प्रोत हैं। कविताओं में व्यक्त दु:ख-दर्द कवि का स्वयं का न होकर हजारों सालों का अंधविश्वास, अज्ञानता, अशिक्षा आदि में पड़े रहे समाज का दु:ख है। इन अंधविश्वासों को, अज्ञानता को दूर करने का भरसक प्रयास कवि का रहा है। इसी तरह उनकी कविता में मानो तार्किकता और वैचारिकता दोनों यूँ ही आ गए हैं। प्रत्येक कविता तर्क के बुनियाद पर खरी उतरती है। विद्रोही ने स्त्री मुक्ति और पितृसत्ता समाज पर भी तर्क दिया है। उन्होंने अपनी कई कविताओं के माध्यम से यह साबित करने का प्रयास किया है कि स्त्री न केवल आज से, बल्कि यह पता नहीं कि जबसे स्त्री का जन्म हुआ है, शायद तब से स्त्री लगातार अपने आपको लेकर तमाम तरह के संघर्ष करती हुई आई है। समाज में, घर परिवार में स्त्री निरंतर अत्याचार, अनाचार का सामना करती हुई दिखाई पड़ती है। अत: धर्मसत्ता के साथ ही पितृसत्ता पर भी विद्रोही का क्रांतिकारी स्वर उभरता है। कवि पितृसत्ता एवं राजसत्ता की शोषणकारी व्यवस्था को तोड़ डालने की कोशिश करते हैं। कवि स्त्री दमनकारी चरित्र तथा स्त्रियों के समक्ष पुरुष पक्ष को और मजबूत बनाने वाले विचारों को निरस्त करते हुए यह चुनौतीपूर्ण तर्क रखने का प्रयास करता है कि आज तक होता आया स्त्रियों पर जुल्म और मैं नहीं होने दूँगा। वह कहते हैं कि जो जुल्म मेरी माँ, पत्नी, बहन के साथ सदियों से होता आ रहा है, उसे मैं अपनी बेटियों के साथ नहीं होने दूँगा। इस दृष्टिकोण से 'औरतें' कविता के कुछ अंश को देखा जा सकता है, जहाँ यह स्पष्ट हो जाता है, "**इतिहास में वह पहली औरत कौन थी/ जिसे सबसे पहले जलाया गया/ मैं नहीं जानता/ लेकिन जो भी रही होगी/ मेरी माँ रही होगी/ लेकिन मेरी चिंता यह है कि/ भविष्य में वह आखिरी औरत कौन होगी/ जिसे सबसे अंत में जलाया जाएगा/ मैं नहीं जानता/ लेकिन जो भी होगी/ मेरी बेटी होगी/**

मैं यह नहीं होने दूंगा।''[3] इसी तरह कवि विद्रोही स्त्री अस्मिता को मुखरित करते हुए शोषित नारियों के संरक्षण एवं संवर्धन के लिए आवाज उठाते हैं। हालाँकि ऐसा नहीं कि उनसे पूर्व किसी कवि या साहित्यकार ने स्त्री अस्मिता के संदर्भ में कुछ अभिव्यक्त नहीं किया है। परंतु रमाशंकर विद्रोही ने जिस चुनौती भरे स्वर में पूरी दुनिया के सामने नारी सशक्तिकरण, उनके अधिकार एवं स्वाभिमान, उनके लिए सदियों से बनी-बनाई व्यवस्था, स्त्री-उत्पीड़न और उसकी हत्या आदि तमाम विषयों पर सवाल खड़ा कर दिया है, वो वाकई सराहनीय है। कवि स्त्री अस्मिता के साथ जिस तरह धर्मसत्ता, पितृसत्ता, राजसत्ता, रूढ़िवादी परंपरा आदि पर न केवल भारतवर्ष के संदर्भ में, बल्कि वैश्विक स्तर पर हो रहे छल-कपट, पाखंडता, निरंकुश क्रूरता, शोषण, दुर्नीति आदि का पर्दाफाश करते हुए समाज के सामने उजागर किया और पीड़ित, शोषित जनताओं को उससे लड़ने के लिए प्रेरणा दी है, वैसा उदाहरण कम ही है। इतिहास के पृष्ठ को पलटने से यह पता चलता है कि साम्राज्यवादी क्रूरता किस हद तक फैली हुई थी। वैश्विक स्तर पर साम्राज्यवादी निष्ठुरता, क्रूरता का बोलबाला देखने को मिलता है। कवि विद्रोही की वाणियों में, **''और ये इंसानों की बिखरी हुई हड्डियाँ/ रोमन के गुलामों की भी हो सकती हैं/ और बंगाल के जुलाहों की भी/ या अति आधुनिक वियतनामी, फिलिस्तानी, इराकी/ बच्चों की भी/ साम्राज्य आखिर साम्राज्य ही होता है/ चाहे वो रोमन साम्राज्य हो या अति आधुनिक अमरीकी साम्राज्य/ जिसका एक ही काम है कि/ पहाड़ों पर, पठारों पर/ नदी किनारे, सागर तीरे,/ मैदानों में/ इंसानों की हड्डियाँ बिखेर देना।''** [4] इसी तरह कविवर रमाशंकर की 'मोहनजोदड़ो' नामक कविता के माध्यम से स्त्री की जली हुई लाशें और इंसानों की बिखरी हुई हड्डियों के माध्यम से सदियों पुरानी सभ्यता के भग्नावेषों का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है, जिसे कवि ने जीवंतता के साथ शब्दबद्ध किया है। कवि को उक्त कविताओं में एक सवाल से बार-बार टकराना पड़ा है कि आखिर क्या कारण रहा होगा कि प्रत्येक सभ्यता-संस्कृति के मुहाने पर क्यों औरतों की जली हुई लाश तथा इंसानों की बिखरी हड्डियाँ ही मिलती हैं। अत: शायद कवि इन कविताओं के माध्यम से उस समय के इंसानी पशुता, बर्बरता आदि का पर्दाफाश करना चाहते थे, जिसकी निशानी एक जली हुई लाश और इंसानों की बिखरी हुई हड्डियाँ छोड़ गई है।

समकालीन कवियों में बोहेमियन कवि रमाशंकर ने सामंतवाद, अधिनायकवाद, पूँजीपति परंपरा आदि का खुला विरोध किया है। कवि उस सभ्य समाज का विरोध करते थे, जो हमेशा से श्रमजीवी मेहनतकश मजदूरों की, किसानों की शोषण करता आया है और उनके हक छीनने की कोशिश करता रहा है। आपने इस तरह के समाज को लेकर क्रांतिकारी भाव का सफलतापूर्वक उजागर किया है। हमारे समाज में नैतिक मानवीय मूल्य विघटन के इस दौर में कविवर विद्रोही शोषित, पीड़ित, वंचित और कमजोर वर्ग की आवाज बनकर खड़े हुए हैं। आपकी बहुप्रचलित 'कविता और लाठी' शीर्षक कविता की पंक्तियों के माध्यम से यह अभिव्यक्त करने की कोशिश रहा है कि आपकी कविता केवल आम जनता की आवाज है। आप उनके लिए राहों का अन्वेषी बनकर पधारे हैं। विद्रोही की कलम से-**''ये वो लाठी नहीं है जो/ हर तरफ भंज जाती है,/ ये सिर्फ उस तरफ भंजती है/ जिधर मैं इसे प्रेरित करता हूँ/...तुम इसे भगवान् के खिलाफ भांजोगे,/ भंज जाएगी/ लेकिन तुम इसे इंसान के खिलाफ भांजोगे,/ न,/ नहीं भंजेगी/ कविता और लाठी में यही अंतर है।''**[5] अत: यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि कवि की लाठी और उनकी कविता केवल इंसानियत के लिए हैं। मानव जीवन मूल्य के लिए हैं, उनके अस्तित्व, पहचान, हक के लिए हैं। उत्तर आधुनिकता के इस समय में प्रगतिशील तकनीकी विकास, औद्योकिक क्रांति आदि के कारण मानव, मानव का शत्रु बन चुका है। आए दिन ऐसी अनेक घटनाओं को हम देखते हैं, सुनते हैं, जिससे हमारे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। कवि विद्रोही एक कथा कलाकार के नाते इसे भली-भाँति पहचानते थे और उसे कविता के माध्यम से पाठक समाज तक पहुँचाने का भरसक प्रयास किया है। इस दृष्टिकोण वाली दो अत्यंत महत्वपूर्ण कविता हैं 'गुलाम' और 'कथा देश की'।

'गुलाम' कविता के माध्यम से हमें सामाजिक मूल्य से परिचित कराते हैं। हमारे समाज में एक ऐसी जगह नहीं है, जहाँ जिल्लत और जहालत न हो। वे कहते हैं कि यहाँ पुलिस भी है, अदालत भी है और पुरोहित भी मौजूद है, फिर भी मारा जा रहा है तो केवल कमजोर आदमी। चाहे वो आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक आदि की दृष्टि से ही क्यों न हो। कवि के कथन में–"**हर जगह ऐसी ही जिल्लत,/ हर जगह ऐसी ही जहालत,/ हर जगह पर है पुलिस,/ और हर जगह है अदालत,/ हर जगह पर है पुरोहित,/ हर जगह नरमेध है,/ हर जगह कमजोर मारा जा रहा है, खेद है।**"[6] इसी तरह कवि इन तमाम व्यवस्थाओं पर खेद प्रकट करता है। 'कथा देश की' शीर्षक कविता में आए दिन घटित दंगे, मार-काट, छेड़छाड़ पर अत्यंत मार्मिक भावनाओं की सच्ची तस्वीरें खींची हैं । वे कहते हैं–"**ढंगों और दंगों के इस महादेश में/ ढंग के नाम पर दंगे ही रह गये हैं/ ...जातीय दंगे,/ सांप्रदायिक दंगे,/ क्षेत्रीय दंगे,/ भाषाई दंगे,/ यहाँ तक की कबीलाई दंगे।**"[7] अत: हमारे समाज में हर दिन तमाम तरह के दंगे-फसाद होते रहते हैं, जो मानवीय मूल्य विघटन का एक महत्वपूर्ण स्रोत भी हैं। इससे न जाने कितने जीवन मूल्य नष्ट हो चुके हैं। इसीलिए कवि विद्रोही समाज को विघटित करने वाले इन तमाम कारकों को खत्म करने को निरंतर प्रयासरत रहे, जिसका स्पष्ट उदाहरण हम 'जन-गण-मन' शीर्षक कविता में देख सकते हैं। यहाँ कवि उन बड़े बड़े चरित्र की मृत्यु की कामना करते हैं, जिसके कारण शायद समाज की हालत बदत्तर होती जा रही है।

हम सब अच्छी तरह से वाकिफ हैं कि भारत अनेकता में एकता के स्वर को बुलंद करने वाला देश रहा है। यहाँ अनादि काल से ही हिंदू , मुस्लिम, ईसाई, जैन, बौद्ध आदि तमाम जाति-जनजाति का मिला-जुला रूप दिखाई पड़ता हैं। परंतु अंग्रेजों की कुटनीति के कारण भारत-विभाजन के समय सांप्रदायिक जाति-भेद चरम सीमा पर पहुँच चूँका ाा और आज भी कहीं-कहीं यह सांप्रदायिक भिन्नता परिलक्षित होती है। स्वाधीनता आंदोलन के दौरान भारत विभाजन के कारण हिंदू-मुस्लिमों में काफी दरार पैदा हो गई, जिसकी वजह से यहाँ आपस में मिलजुलकर रहने वाले हिंदू-मुस्लिमों का रिश्ता टूट गया। इसका स्पष्ट प्रतिफलन हम रमाशंकर की कविता 'नूर मियाँ' में देख सकते हैं। कविवर विद्रोही अपने शब्दों में व्यक्त करते हैं कि–"**और वहीं नूर मियाँ पाकिस्थान चले गए/...बिना हमारे दादी को बताये/ नूर मियाँ क्यों चले गए पाकिस्थान ?**"[8] कवि यहाँ पूर्व अखंड भारत को खंड होता हुआ देखकर भावुक हो जाते हैं। उनको लगातार विस्थापन और विभाजन की पीड़ा सताती है। इतना ही नहीं, कवि अपने देश के भविष्य को लेकर, आने वाली पीढ़ियों को लेकर, प्राकृतिक संसाधनों को विनष्ट होता देखकर अत्यंत चिंतनीय संवेदना प्रकट करते हैं। इस दृष्टिकोण से आपकी महत्वपूर्ण कविता 'दुनिया मेरी भैंस' सहज ही सामने आ जाती है। चूँकि हम मानव समाज और हमारी जीवन शैली उक्त सभी तत्वों से अंतर्संबंध रखते हैं और मनुष्य के हर एक जीवन मूल्य इन्हीं तत्वों के कारण बदलता रहता है। इसी बदलते परिदृश्य में हम आए दिन तमाम तरह के मूल्यों से जुड़ते जाते हैं और रमाशंकर विद्रोही एक ऐसे कवि है, जिन्होंने इन यथार्थपरक मूल्यों का सामना किया है और उसे कविताओं के माध्यम से सफल अभिव्यक्ति दी है। बहरहाल, यह कहा जा सकता है कि 'विद्रोही' यथार्थ के ठोस धरातल पर खड़े अपने समय के महान हस्ताक्षर हैं। आपकी कविता सहज-सरल बोलचाली भाषा से निकली गंभीर अर्थ प्रकट करने वाली कविता है। व्यवस्थाओं पर प्रश्नचिह्न लगाने वाले, हक की लड़ाई लड़ने वाली कविता नवीन जीवन मूल्य की बात करती है। आप हमेशा मानव जाति की पीड़ा और दर्द से लड़ने के लिए तत्पर रहते थे। शायद आप इसी क्रांतिकारी स्वभाव के कारण विद्रोही कहे गए। अत: यह तर्क दिया जा सकता है कि आपके वजूद, आपकी पहचान ही एक तरह से विद्रोही है। कविवर विद्रोही अपनी इसी पहचान को लेकर हमेशा ही गौरव करते थे, वे एक कवि होने पर कहते हैं, "**न तो मैं सबल हूँ,/ न तो मैं निर्बल हूँ,/ मैं कवि हूँ/ मैं ही अकबर हूँ,/ मैं ही बीरबल हूँ**"[9] अत: मानवता के गीत गाने वाले कवि 'विद्रोही' को जीवन मूल्य का धनी कवि कहना अत्यंत तर्कशील प्रतीत होता है।

निष्कर्ष :

समकालीन कविताओं की पृष्ठभूमि पर दृष्टि डालने से यह ज्ञातव्य होता है कि कवि ने अपने समकालीन समय को पहचान कर यथार्थ अन्वेषी कविताओं को तलाशने का प्रयास किया है। काव्य सृजन की प्रक्रिया में कवि ने अपने विचारानुभव को प्रकट करने की कोशिश की है। समकालीन काव्य-शृंखला में मुख्य रूप से निम्न-मध्यवर्गीय मानव केंद्रित कविताओं का ही सृजन अधिक मात्रा में हुई है। मानो कविता तत्कालीन परिस्थितियों से घुल-मिलकर जनपक्षधर की प्रतिनधि बन गई हो। समकालीन कविता की एक मुख्य विशेषता यह भी है कि यह अंतर्विरोधों की कविता है। मनुष्य के अंतर्मनों की अभिव्यक्ति, उनकी समस्याओं को प्रकट करने के प्रयास कविता में मानवीयतात्मकता प्रदान करती है। समकालीन परिदृश्य की कविताएँ समाज के शोषित और उत्पीड़ित वर्ग के प्रति आंतरिक सहानुभूति प्रकट करने में सिद्धहस्त हैं। इस संदर्भ में समकालीन कवि रमाशंकर यादव 'विद्रोही' सु-प्रसिद्ध कवि रहे हैं। प्रखर व्यक्तित्व के अधिकारी 'विद्रोही' की कविता पूर्ण रूप से अपने समय और समाज से जुड़ी हुई प्रतीत होती है। निरंतर संघर्षशील कवि रमाशंकर की कविताओं में बहुआयामी स्वर स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। उनकी कविताओं में जीवन मूल्य के उन सभी पहलुओं का स्वर मुखरित हुआ है, जिससे आए दिन मानव-जाति संघर्षरत रही है। आपने अपने काव्य-सृजन के माध्यम से भावनाओं की सच्ची तस्वीरों में आँकने के साथ ही विवेक का संवेग भी खिंचा है। जीवन मूल्य के धनी कवि विद्रोही की कविताओं में एक तरफ यदि मजदूर, किसान, छात्र, स्त्री, शोषित, पीड़ित आदि की आह, दर्दभरी गूँज है तो दूसरी तरफ शोषक, पूँजीपति, भ्रष्टाचारी नेताओं, सत्ताधारी के लिए कटुक्ति भरी फटकार भी सुनाई पड़ती है। सत्ता और समाज के नैतिक मूल्य पक्ष में हमेशा आपकी आवाज बुलंद रही है। अंत में निष्कर्षत: यह तर्क दिया जा सकता है कि रमाशंकर यादव 'विद्रोही' सत्ता-व्यवस्था के खिलाफ अपने तर्क देने वाले प्रतिनिधि कवि रहे हैं और वे समकालीन काव्य धारा के उच्च स्थान के हकदार हैं। ❑

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. http://kavitakosh.org/
2. http://kavitakosh.org/
3. http://kavitakosh.org/
4. http://kavitakosh.org/
5. http://kavitakosh.org/
6. http://kavitakosh.org/
7. http://kavitakosh.org/
8. http://kavitakosh.org/
9. http://kavitakosh.org/

सहायक ग्रंथ सूची :

1. भारती, धर्मवीर, (1999), मानव मूल्य और साहित्य. दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
2. सिंह, डॉ. शिव कुमार, (1985), मूल्य का सिद्धांत, बिहार : बिहार हिंदी ग्रन्थ अकादमी
3. तिवारी, विश्वनाथ प्रसाद, (2010), समकालीन हिंदी कविता, दिल्ली : लोकभारती प्रकाशन
4. श्रीवास्तव, डॉ. सविता, (2014), समकालीन कविता की समझ, वाराणसी : अनुराग प्रकाशन
5. https://youtu.be/sGRLi11GneU
6. https://youtu.be/WrgDXyo6gMU

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

आलेख

स्त्री प्रश्न और प्रसाद के नाटक

डॉ. ऐश्वर्या झा

एसोसिएट प्रोफेसर
हिंदी विभाग
स्वामी श्रद्धानंद कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय
9810407023
aishwarya@ss.du.ac.in

शोध सार :

स्त्री संसार की आधी आबादी है। इस कारण स्त्री जीवन से जुड़ा हर पहलू हर युग में जरूरी रहा है। लेकिन स्त्री की प्रगति पुरुष सत्तात्मक समाज द्वारा बाधित की जाती रही है। तथाकथित बौद्धिक समाज स्त्री जीवन के विभिन्न प्रश्नों को नकारता रहा है। हिंदी साहित्य में इस ओर चर्चा लगातार होती रही है। हिंदी नाटकों में इसकी शुरुआत भारतेंदु ने 'नील देवी' जैसा नाटक लिखकर की थी। इसी परंपरा को जयशंकर प्रसाद ने आगे बढ़ाया है और स्त्री के दर्द ,उसकी टीस को नाटकों में स्थान दिया है। जयशंकर प्रसाद के नाटक अपने समकालीन परिवेश से तो प्रभावित हैं ही, उनमें एक साथ भूत, वर्तमान एवं भविष्य के कालातीत सत्य को साधने की क्षमता है। प्रसाद के रचनाकाल का समय राष्ट्रीय जीवन में उथल -पुथल का समय था। इस कारण उनके नाटकों में राष्ट्रीय चेतना कूट-कूट कर भरी हुई है। उस समय भी स्त्रियों की स्वाधीनता, शोषण-मुक्ति, नारी-अस्मिता, स्त्री का अस्तित्व एवं उसकी भूमिका से जुड़े प्रश्न महत्वपूर्ण थे। आज भी ये प्रश्न उतने ही प्रासंगिक हैं। प्रसाद के नाटकों की स्त्रियाँ राष्ट्रीय संकटों के साथ -साथ अपनी निजता, स्वाभिमान के प्रति पूरी तरह से जागरूक हैं। ध्रुवस्वामिनी, अलका, देवसेना, सरमा जैसी नायिकाएँ इसका प्रमाण हैं।

बीज शब्द : स्त्री विमर्श, पुरुष सत्तात्मक समाज, नायिका, स्त्री सशक्तिकरण।

विश्लेषण :

शताब्दियों से स्त्री विचार के केंद्र में रही है। स्त्री सशक्तिकरण, स्त्री विमर्श, स्त्रीत्ववाद-पता नहीं स्त्री संबंधित कितने चिंतन। प्रश्न यह उठता है कि इन विमर्शों से समाज में आधी आबादी को समुचित स्त्री अधिकार, सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति में परिवर्तन, राजनीतिक भागीदारी मिली या ये सिर्फ बहसों और नारों तक ही सीमित रहे हैं। हाल के कुछ दशक में महिलाएँ सफलता, उन्नति और विकास की नई ऊँचाई की ओर तेजी

से अग्रसर हुई हैं। 21वीं सदी की वैश्विक व्यवस्था में बदलाव की गति तीव्र है तो स्त्री विमर्श, बहसों और नारों में अपेक्षित बदलाव की आवश्यकता है। भारतीय समाज में स्त्री की एक जैसी स्थिति कभी नहीं रही। एक तरफ 'यत्र नार्यस्तु पूजयन्ते' कह देवी सरस्वती काली, लक्ष्मी के रूप में पूजा गया है, वहीं दूसरी तरफ 'अबला' कह पुरुष सत्ता द्वारा उसे अपने अधीनस्थ बनाए रखने की पुरजोर कोशिश की जाती है। पितृ सत्तात्मक समाज स्त्री को स्वतंत्र मानवीय इकाई के रूप में मानने से इनकार करता रहा है। उसकी पहचान किसी की माँ, बहन, बेटी या पत्नी के रूप में ही होती है। आधुनिक काल में भी आर्थिक पराधीनता और उत्पादन के साधनों से उसका कटा होना है। पुरुष संचालित परिवार, धर्म, रीति-रिवाज आदि उसकी दुरावस्था को और बढ़ाते हैं। कहा जा सकता है कि पितृ सत्ता ने धर्म का सहारा लेकर 'भोग' को पुरुषों के खाते में डाला और 'त्याग' को स्त्रियों के खाते में। स्त्री विरोधी कट्टरता की कई कहानियाँ लिखी गई हैं और कई अलिखित बर्बर किस्से इतिहास में दफन हैं। कहने के लिए स्त्री विमर्श पश्चिम की देन है, किंतु भारत में इसके सूत्र प्राचीन काल से ही प्राप्त होते हैं। आधुनिक काल में स्त्री मुक्ति के सूत्र औद्योगिक क्रांति और मानवतावाद में भी ढूँढ़े जा सकते हैं। भारत में यह जागरण स्वतंत्रता आंदोलन के साथ चला। आज स्त्री विमर्श समाज, संस्कृति, साहित्य में कई रूपों में मौजूद है। भारत की कुल जनसंख्या का 48 प्रतिशत महिलाओं का है, किंतु रोजगार में इनकी भागीदारी 26 प्रतिशत ही है। आर्थिक स्वतंत्रता कुछ मिली अवश्य है, लेकिन घरेलू शोषण एवं हिंसा के आँकड़े अभी भी चिंतनीय हैं। स्त्री विमर्श प्रगतिवादी विचारधारा है। आज स्त्री अपने स्वतंत्र अस्तित्व और अस्मिता के प्रश्न को मुखरता से उठा रही है। वह राजनीति, खेल, प्रशासन, सेना, उद्योग से लेकर अंतरिक्ष का सफर करने लगी है। उसे अपनी मुक्ति के हर आयाम को पाना है। अपनी स्वतंत्रता को सिर्फ दैहिक या कपड़ों तक सीमित नहीं करना है। यह स्त्री मुक्ति के वृहद लक्ष्य की संकीर्णता है। ''स्त्री क्या चाहती है यह इसीलिए स्पष्ट नहीं हो पाया है, क्योंकि अपनी मर्जी से चाहने की छूट उसके लिए एक सर्वथा अपरिचित अनुभव है। यह एकमात्र ऐसी जाति है, जो कई हजारों वर्षों से पराधीन है। इसलिए स्त्री को अंतिम उपनिवेश कहा गया है। लेकिन कोई भी उपनिवेश एक दिन में नहीं टूटता। उसके जोड़ धीरे-धीरे शिथिल होते हैं।''[1]

हिंदी साहित्य स्त्री जीवन से जुड़े विभिन्न पक्षों को अपनी हर विधा में उजागर करता रहा है। हिंदी नाटक भी प्रारंभ से ही नारी जीवन के अलग-अलग रूपों, आयामों प्रस्तुत करता है। भारतेंदु काल से अद्यतन नाटक स्त्री जीवन की भिन्न-भिन्न छवियों का चित्रण करते हैं। जयशंकर प्रसाद ने अपनी लेखनी से हिंदी साहित्य (कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक) को समृद्ध किया। उनकी नाट्य -कुशलता का उदाहरण चन्द्रगुप्त, स्कंदगुप्त, अजातशत्रु, ध्रुवस्वामिनी, विशाखा, राज्यश्री, जनमेजय का नागयज्ञ जैसे कई नाटक हैं। प्रसाद ने स्वर्णकालीन इतिहास से तत्कालीन विस्मृत भारतीय सांस्कृतिक बोध को जागृत कारण का प्रयास अपने नाटकों के माध्यम से किया। उनकी दृष्टि इतिहासपरक अवश्य थी, किंतु उससे आधुनिक विचार परिलक्षित होते थे । वे कभी इतिहास को आँखें मूँद कर विश्वास नहीं रखते हैं, वरन इतिहास के अनुभवों से वर्तमान एवं भविष्य का निर्माण करने का प्रयास करते हैं। उन्होंने स्वयं लिखा है, ''इतिहास का अनुशीलन किसी भी जाति को अपना आदर्श संगठित करने के लिए अत्यंत लाभदायक होता है, क्योंकि हमारी गिरी दशा को उठाने के लिए हमारे जलवायु के अनुरूप जो हमारी अतीत सभ्यता है उससे बढ़कर कोई आदर्श होगा ही नहीं नहीं, इसमें हमें पूर्ण संदेह है।''[2] जयशंकर प्रसाद दूरदर्शी नाटककार थे। उनके नाटक अतीत पर आधारित थे, किंतु अपने समय से कहीं आगे थे। उन्होंने राष्ट्रीयता को आधार बनाकर नाटक लिखे, किंतु वे समसामयिक समस्याओं से विमुख भी नहीं रहे। उन्होंने अपने नाटकों में स्त्री पात्रों को स्वतंत्र अस्तित्व प्रदान किया है। उन्होंने स्त्री को न तो देवी के भाव से जोड़ा है और न अबला के रूप में चित्रित किया है। प्रसाद के नाटकों में स्त्री शक्ति है। वे स्त्री अस्मिता के प्रति पूर्णत: जागृत थे। उन्होंने स्वस्थ, सकारात्मक समाज के लिए, राष्ट्र के विकास के लिए दृढ़ ,जागरूक स्त्री पत्रों को

चुना। प्रसाद की स्त्री-विषयक यह भावना भारतीय ग्रंथों के अध्ययन का परिणाम है। विभिन्न वैदिक, वैष्णव और शैव साहित्य के अध्ययन से भारतीय संस्कृति के प्रति उनका एक अलग निश्चित दृष्टिकोण बन गया था। वैदिक ग्रंथों में नारी पुरुष को उन्नतिशील बनाने में चेष्टारत है तो ऋग्वेद में वह वंदनीय मानी गई है। प्रसाद की स्त्री संबंधी धारणा आदर्शवादी, सुधारवादी धारणा से अवश्य प्रभावित थी, किंतु इसके साथ साथ वे स्त्री पात्रों को विद्रोही दिखाने से भी परहेज नहीं करते हैं। उन्होंने स्त्री या उससे संबंधित समस्याओं का हल पारलौकिक ईश्वरीय ताकतों में नहीं, बल्कि इसी लोक में ढूँढ़ा है। शायद यही कारण है कि उनके नाटकों में अलका, ध्रुवस्वामिनी, देवसेना, राज्यश्री जैसी पात्र अस्तित्व में आई हैं। ''प्रसाद जी कुछ अर्थों में आदर्शवादी जरूर थे, लेकिन उन्होंने कभी भी ऐसा चरित्र दिखाने की कोशिश नहीं कि जो सिर्फ आदर्श ही रह जाए। उन्होंने मानवीय गुणों को ध्यान में रखते हुए मानव सुलभ दुर्बलताओं को भी स्वीकार किया है। वे ऐसी नारी का चरित्र प्रस्तुत करना चाहते थे जो आधुनिक हो, अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो और सुसंस्कृत भी हो। प्रसाद जी ने जिन अधिकारों की बात कही है वह स्वतंत्रता है स्वच्छंदता कभी नहीं।''[3]

प्रसाद का प्रारंभिक नाटक 'राज्यश्री' स्त्री केंद्रित है। संपूर्ण नाटक षड्यंत्र, विद्रोह, रक्तपात से भरा हुआ है। लेकिन इस उथल पुथल से भरे कथानक में मानवीय करुणा, क्षमा, उदारता का निदर्शन राज्यश्री के चरित्र से ही होता है। उसका चरित्र भारतीय संस्कृति की सर्वोच्चता को दिखाता है। वह त्याग, प्रेम की मूर्ति है। समय आने पर भयंकर विपत्तियों से विचलित नहीं होती। ''मैं तुम्हारा वध न कर सकी तो क्या अपने प्राण भी नहीं दे सकती''[4] उसका देवगुप्त को कहा यह संवाद उसकी निर्भीकता को प्रमाणित करता है। 'अजातशत्रु' नाटक में प्रसाद ने आदर्श

बासवी, पद्मावती जैसे आदर्शवादी चरित्र प्रस्तुत किए हैं। इसके विपरीत मागंधी, छलना और शक्तिमती उस नारी का प्रतिनिधित्व करती हैं, जो पश्चिमी सभ्यता और विलास भावना का अंधानुकरण करने वाली हैं। संभवत: इस नाटक में प्रसाद ने स्वतंत्र नारी की प्रतिष्ठा की है। युगीन परिप्रेक्ष्य में नारी से संबंधित क्रांतिकारी विचार और उन विचारों एवं बदलाव की स्थितियों में नाटक के नारी चरित्र काफी प्राणवान बन गए हैं। ''युगीन विचारों एवं सामाजिक बदलाव की पृष्ठभूमि में 'अजातशत्रु' में प्रसाद के नारी पात्र अपने अधिकारों और स्वत्व के प्रति पूर्ण जागरूक ही नहीं, उनकी रक्षा के लिए संघर्षरत भी हैं। मल्लिका, बासवी तथा पद्मावती सदृश नारी चरित्रों में युगानुकूल चिंतन के तहत मानवोचित गुणों का आकलन करने के साथ-साथ आधुनिक विचारधारा एवं पुरुष-प्रधान समाज की सामंतीय भावना के विरुद्ध विद्रोही तेवर लिए महत्वाकांक्षी नारी चरित्र भी नाटक में सक्रिय भूमिका में आए हैं। ये चरित्र युगीन विचारधारा से प्रभाव ग्रहण कर स्त्री-स्वातंत्र्य की घोषणा करते हैं। ये नारी चरित्र आदर्शों में ही अथवा पारिवारिक अथवा दांपत्य प्रेम की परंपरागत कर्तव्य-भावना में ही नहीं घिरे रहे हैं, अपितु राजनैतिक आकांक्षा से विद्रोह का डंका बजाते हैं। पुरुष द्वारा उपेक्षित और अपमानित होने पर अपने अस्तित्व स्थापन के लिए संघर्ष करती हैं।''[5]

प्रसाद की स्त्री समाज पर बोझ बनकर हमारे सामने उपस्थित नहीं होती, बल्कि सभी स्त्री पात्र स्वतंत्र व्यक्तित्व की स्वामिनी हैं। वे संकीर्ण, सदियों से जकड़ी परंपराओं में न बंधकर नए रूप में अपना अस्तित्व बनाती हैं। 'स्कंदगुप्त' नाटक की देवसेना मालवराज बंधुवर्मा की बहन है। उसका चरित्र आदर्श होने पर भी स्वतंत्र व्यक्तित्व से आपूर्ण है। उसकी चरित्र अलौकिकता -त्याग, देशप्रेम, सेवा, सहिष्णुता, गांभीर्य से भरा हुआ है। वह सामाजिक दायित्व के प्रति सजग है। देवसेना भावुकता की साक्षात प्रतिमा है। वह स्कंदगुप्त से प्रेम करती है, किंतु उसका प्रेम विषय वासनायुक्त प्रेम के स्थूल स्वरूप से इतर सूक्ष्म में संतोष को तलाशता प्रेम है। वह अपने प्रिय के सुख के लिए अपनी कोमलतम भावनाओं की आहुति देती है। वह स्कंद के प्रणय प्रस्ताव को ठुकराती है, ''प्रतिदान लेकर मैं उस महत्व को कलंकित नहीं करूँगी, आजीवन दासी बनी रहूँगी किंतु आपके प्रणय में भाग नहीं लूँगी। देवसेना त्याग में ही ईश्वर की प्राप्ति समझती है, इसलिए प्रेम का मूल्य नहीं चाहती। वहीं स्कंदगुप्त नाटक की एक पात्र विजया है, जो प्रेम में संयम, त्याग के स्थान पर उन्माद और प्रतिहिंसा को महत्व देती है। वह न स्वार्थ में स्थिर रह पाती है और न परमार्थ में। विचारों के द्वंद्व में पड़कर आत्महत्या कर लेती है। स्कंदगुप्त की दोनों स्त्री पात्रों में प्रेम के दोनों रूप दृष्टिगत होते हैं। जहाँ देवसेना के हृदय में पवित्र, वासनामुक्त प्रेम निवास करता है तो वहीं विजया के हृदय में वासनायुक्त स्वार्थपूर्ण प्रेम। प्रसाद की देवसेना नि:स्वार्थ प्रेम की उत्कृष्ट उदाहरण है। उसमें विलास और प्रतिदान की कोई चाहत नहीं है। उसके हृदय में स्कंदगुप्त के अतिरिक्त किसी और का स्थान नहीं है। ''इस हृदय में आह कहना पड़ा। स्कंदगुप्त को छोड़कर न तो कोई दूसरा आया और न कोई आएगा।''[6] देवसेना प्रसाद के स्त्री पात्रों में अतुलनीय

जयशंकर प्रसाद दूरदर्शी नाटककार थे। उनके नाटक अतीत पर आधारित थे, किंतु अपने समय से कहीं आगे थे। उन्होंने राष्ट्रीयता को आधार बनाकर नाटक लिखे, किंतु वे समसामयिक समस्याओं से विमुख भी नहीं रहे। उन्होंने अपने नाटकों में स्त्री पात्रों को स्वतंत्र अस्तित्व प्रदान किया है। उन्होंने स्त्री को न तो देवी के भाव से जोड़ा है और न अबला के रूप में चित्रित किया है। प्रसाद के नाटकों में स्त्री शक्ति है। वे स्त्री अस्मिता के प्रति पूर्णत: जागृत थे।

है। ''प्रसाद गंभीर चिंतन एवं जीवन-द्रष्टा थे, मूल रूप में वे कवि थे। भूत और वर्तमान की गतिशीलता को आत्मसात कर भविष्य के निर्माण के प्रति सतर्कता का भाव रखते हुए साहित्य-निर्माण में तल्लीन प्रसाद का व्यक्तित्व निरंतर नवीनता, स्वच्छता एवं मौलिकता का ही पाठ पढ़ाता हुआ दृष्टिगोचर होता है। उन्होंने अपने नाटकों के ऐतिहासिक परिवेश में मानव जीवन की विशद व्याख्या काव्यात्मक भाषा एवं गद्य-गीत शैली में प्रस्तुत की है।''[7]

प्रसाद युगद्रष्टा ,युगचेता सर्जक रचनाकार थे। वे अपने नाटकों में स्त्रियों को अबला, लाचार रूप में प्रस्तुत नहीं करते हैं, बल्कि स्त्री को पुरुष की सहभागी रूप में चित्रित करते हैं। चन्द्रगुप्त नाटक की अलका ऐसी ही स्त्री पात्र है, जो नेतृत्व की क्षमता रखती है। वह सामाजिक, राष्ट्रीय भावनाओं से परिपूर्ण शक्ति का प्रतीक है। प्रसाद जैसे भविष्यदर्शी की कल्पना से ही अलका जैसे पात्र की सृष्टि संभव है, जो आज से लगभग सौ साल पहले स्त्री को घरों की चारदीवारी से बाहर निकल कर राष्ट्र एवं समाज में सक्रिय योगदान की अपेक्षा रखते हैं। वह गांधार नरेश की पुत्री है। आम्भिक द्वारा यवनों की सहायता से उसका राष्ट्र प्रेम चोटिल होता है और वह राजसी सुखों का त्याग कर देती है। ''यवनों के हाथ बेचकर उनके दान से जीने की शक्ति मुझमें नहीं है''- दाण्डायन को कहा उसका यह संवाद उसके देश के प्रति निष्ठा को परिलक्षित करता है। अलका न सिर्फ स्वयं युद्ध करती है, बल्कि अपने नेतृत्व क्षमता से दूसरों को भी प्रेरित करती है। ''हिमाद्रि तुंग श्रृंग से, प्रबुद्ध शुद्ध भारती, स्वयं प्रभा समुज्वला स्वतंत्रता पुकारती ...''[8] नाटक में अलका द्वारा गाया यह गीत भारतीय स्वतंत्रता के उद्बोधन का प्रतीक है।

चंद्रगुप्त नाटक की कार्नेलिया प्रेम की कोमलता का उदाहरण है। वह सेल्युकस की राजकुमारी है। पूरे नाटक में संभवत: यही ऐसा पात्र है, जिसमें भावात्मक प्रबलता, बौद्धिक अचलता विद्यमान है। उसके चरित्र में कहीं भी उतार चढ़ाव नहीं है। विदेशी होते हुए भी वह भारत के कण-कण से प्यार करती है। 'अरुण यह मधुमय देश हमारा' गीत उसके भारत प्रेम को दर्शाता है। भारत को वो मनुष्यता की जन्मभूमि मानती है। जब इसी भारत को उसका पिता रक्तरंजित करना चाहता है तो कार्नेलिया अपने पिता को युद्ध न करने की सलाह देती है, ''पिताजी...... यह पाप की मलिन छाया है। उसकी भवों में कितना अन्धकार है, आप देखते नहीं। उससे अलग रहिए। विश्राम लीजिए। विजयों की प्रवंचना में अपने को न हारिए। महत्वाकांक्षा के दांव पर मनुष्यता सदैव हारी है।''[9] यह संवाद उसके चरित्र की दृढ़ता और सदाशयता को प्रकट करता है।

'ध्रुवस्वामिनी' नाटक प्रसाद का अंतिम नाटक है। इस नाटक में प्रसाद स्त्री के अधिकारों की चर्चा ही नहीं करते, बल्कि धर्मानुमोदित अधिकार दिलाते हैं। नाटक की भूमिका में सूचना के अंतर्गत प्रसाद ने इतिहास सूत्रों को खोजते हुए नारद, पराशर, कौटिल्य के चिंतन का उल्लेख किया है। यह नाटक समस्यामूलक है और साथ ही समधान में प्रसाद अपने युग से कहीं आगे दिखाई देते हैं। ध्रुवस्वामिनी नाटक में तीन स्त्री पात्र हैं- ध्रुस्वामिनी, कोमा और मंदाकिनी। प्रथम दोनों पात्र रूढ़िग्रस्त समाज व्यवस्था के शिकार हैं, किंतु ध्रुवस्वामिनी का नारीत्व जहाँ अंतत: संघर्ष लिए जागृत होता है, वहीं कोमा सारा तिरस्कार चुपचाप सहन कर लेती है। दोनों ही पुरुषों द्वारा प्रताड़ित, लांछित, अपमानित होती हैं, किंतु ध्रुवस्वामिनी इस अपमान के विरुद्ध विद्रोह करती है। वहीं कोमा की मृत्यु के पश्चात भी शकराज को नहीं छोड़ती। चुपचाप त्याग करने वाली कोमा इस सत्य की पुष्टि करती है कि अपने अधिकार के प्रति उदासीनता और तिरस्कार के विरुद्ध निष्क्रिय समर्पण स्त्री के विनाश का कारण बनता है। वहीं स्त्री मुक्ति की प्रतीक ध्रुवस्वामिनी अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो अपना काम्य प्राप्त करती है। मंदाकिनी स्वतंत्र व्यक्तित्व की स्वामिनी है तथा प्रगतिशील आधुनिक स्त्रियों की प्रतिनिधि है। वह नारी मन की व्यथा समझती है और उसके निवारण के लिए पूरे आत्मविश्वास के साथ प्रस्तुत रहती है। साथ ही वह सत्य का साथ देने में भी भयभीत नहीं होती, उसके विचार राजनीति को भी लेकर यह स्पष्ट हैं। ''भयानक समस्या है। मूर्खों ने स्वार्थ के लिए साम्राज्य

के गौरव का सर्वनाश करने का निश्चय कर लिया है। सच है, वीरता जब भागती है, तब उसके पैरों से राजनीतिक छलछंद की धूल उड़ती है।....मुझे कठोर हृदय करके अपना कर्तव्य करने के लिए यहाँ रुकना होगा। न्याय का, दुर्बल का पक्ष ग्रहण करना होगा।''[10] रामगुप्त अपनी विवाहिता पत्नी को उपहारस्वरूप देने का निर्णय करता है। पहले ध्रुवस्वामिनी उससे प्रार्थना करती है, किंतु जब उसके अनुनय -विनय का रामगुप्त पर कोई असर नहीं पड़ता, तब ध्रुवस्वामिनी का आत्मगौरव प्रदीप्त हो उठता है। वह सदियों से पुरुष प्रधान समाज में कैद भारतीय नारी की मुक्ति का प्रयास करती दिखाई देती है।''निर्लज्ज ! मद्यप! क्लीव !!! ओह! तो मेरा कोई रक्षक नहीं? नहीं, मैं अपनी रक्षा स्वयं करूँगी। मैं उपहार में देने की वस्तु शीतल मणि नहीं हूँ। मुझमें रक्त की तरल लालिमा है। मेरा हृदय उष्ण है और उसमें आत्मसम्मान की ज्योति है। उसकी रक्षा में ही करूँगी।''[11] वह अपनी रक्षा स्वयं करती भी है। शकराज पर विजय प्राप्त कर वह कायर पति के विरुद्ध विद्रोह करती है और अपने दुर्भाग्य को पुनः नहीं ओढ़ना चाहती। वह भरी सभा में पति के रूप में रामगुप्त को अस्वीकार करती है और धर्म की आड़ में स्त्रियों को गुलाम बनाने की परंपरा को तोड़ती है।''क्या धर्म केवल स्त्री के अधिकारों को छीनने के लिए ही हैं या उन्हें कोई और सुरक्षा प्रदान करने के लिए भी जिन स्त्रियों को धर्म बंधन में बाँधकर, उनकी सम्मति के बिना आप सब अधिकार छीन लेते हैं तब क्या धर्म के पास कोई प्रतिकार- कोई संरक्षण नहीं रख छोड़ते, जिससे वे स्त्रियाँ अपनी आपत्ति में अवलंब माँग सकें।''[12] मंदाकिनी का यह प्रश्न धार्मिक कुरीतियों के विरुद्ध विद्रोह का स्वर उठाता है। ध्रुवस्वामिनी नाटक में तलाक (मोक्ष), पुनर्विवाह जैसी समस्याओं को उठाया गया है, जिस पर आज भी समाज खुलकर बात नहीं करता। प्रसाद ने नारी अस्मिता से जुड़े प्रासंगिक प्रश्नों को सामयिक संदर्भों के अनुसार ध्रुवस्वामिनी के चरित्र के माध्यम से अंकित किया है। प्रसाद के नाटकों के स्त्री पात्र विशिष्ट हैं। एक तरफ उनमें दया, ममता, त्याग, समर्पण, स्नेह जैसे स्त्री सुलभ गुण हैं तो वहीं दूसरी ओर वे आत्मविश्वासी, दृढ़, स्वाभिमानी, विद्रोही भी हैं। ''प्रसाद जी का विश्वास था कि जहाँ नारी में कोमलता का भाव है, स्नेह एवं वात्सलय की स्वच्छ एवं पवित्र वारिधारा प्रवाहित होती रहती है, वहीं दूसरी ओर नारी वज्रादपि कठोर भी है। प्रतिशोध एवं प्रतिहिंसा के भाव जाग्रत होने पर वही नारी सब कुछ कर सकती है। प्रसाद जी की ये मान्यताएँ प्रायः उनके समस्त नाटकों में प्राप्त होती हैं।''[13]

जनमेजय का नागयज्ञ नाटक में भी प्रसाद ने स्त्री के स्वतंत्र निर्णय और पृथक अस्तित्व को मान्यता प्रदान की है। नाटक के प्रधान दो स्त्री पात्र सरमा एवं मनसा पतिव्रत धर्म की परंपरागत दृष्टि को नकारते हुए अपने स्वायत्त और स्वतंत्र व्यक्तित्व का परिचय देती हैं। सरमा अपनी इच्छा से विजातीय नाग पुरुष वासुकि से विवाह करती है, किंतु वासुकि द्वारा अपने पति के अधिकार प्रदर्शन करने पर अपना स्वतंत्र विचार प्रस्तुत करती है। वह किसी को भी अपनी स्वतंत्रता का हनन करने की इजाजत नहीं देती।[14] आपको और सब अधिकार है, पर मेरी सहज स्वतंत्रता का अपहरण करने का नहीं। ''भारतीय स्त्री की मर्यादा का पालन करते हुए भी वह अपने पति से अलग सोच रखती है। मनसा भी स्वेच्छा से जातीय हित को ध्यान में रखते हुए ऋषि से विवाह करती है और उद्देश्य पूरा होता न देख अलग हो जाती है। नाटक जातियों के संघर्ष में स्त्री स्वतंत्रता को भी चित्रित करता है। नारी सम्मान का प्रश्न किसी जाति अथवा राज्य सत्ता और उसकी व्यवस्था से नहीं जुड़ा हुआ, अपितु अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व के साथ वह सामाजिक व्यवस्था में समान न्याय पाने की अधिकारिणी है- ''वह स्त्री के सम्मान का प्रश्न था, नाग और आर्य जाति की समस्या नहीं। नाग-परिणय से तो मैं न्याय पाने की भी अधिकारिणी न थी। किंतु क्या ये विदित है कि कितने ऐसे शुद्ध आर्यों का भी अधिकारियों के द्वारा प्रतिदिन अपमान होता है।''[15]

निष्कर्ष :

वस्तुतः जयशंकर प्रसाद के नाटकों के स्त्री पात्र पुरुष के सहभागी हैं। कहीं-कहीं उनका चरित्र पुरुषों से

अधिक शक्तिशाली है। प्रसाद के स्त्री पात्र समाज के अनुचित धारणाओं को ललकारते हैं।''प्रसाद का लगभग पूरा साहित्य नारी की खोई हुई अस्मिता और गरिमा को पुनः प्रतिष्ठित करने का गंभीर प्रयत्न है।

उन्होंने स्त्री–पुरुष की समानता के लिए अपनी विशिष्ट मार्मिक शैली में स्त्री–आकांक्षा को पुरुष की इच्छा से बड़ा बनाकर इतिहास के अंतराल को पाट दिया है। देवसेना, मालविका, अलका, सरमा, कोमा, चंपा जैसी नारियाँ अबला नहीं हैं, वे कोमल हैं, भावमयी हैं, एकनिष्ठ प्रेमिकाएँ हैं, परंतु इतनी दृढ़ हैं कि देह के जिन कारणों से स्त्रियाँ मन से हारती रही हैं, उन्हें ये अपनी पराजय का माध्यम नहीं बनने देतीं। स्त्री–शोषण के कारणों को पहचानकर प्रसाद ने प्रेम को सेक्स से हटाकर नारी महत्व के भीतर स्थापित किया।''[16] कहा जा सकता है कि प्रसाद स्त्री पात्रों के चित्रण में अपने समय से कहीं आगे हैं। ❑

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. किशोर राज (सं) : स्त्री के लिए जगह, भूमिका से, वाणी प्रकाशन, 1994
2. प्रसाद जयशंकर : विशाख, भूमिका से, हिंदी साहित्य भंडार,1984
3. वर्मा अरुण, प्रसाद के नाटकों में नारी –अस्मिता की खोज, गगनांचल, अंक 4, जुलाई –अगस्त 2016 –अगस्त 2016, पृ. 8
4. प्रसाद जयशंकर : राज्यश्री, डायमंड पॉकेट बुक्स, 2020, पृ. 17
5. गौतम रमेश : हिंदी नाटक,मिथक और यथार्थ,अभिरुचि प्रकाशन,1997, पृ. 251 –252
6. प्रसाद जयशंकर : स्कंदगुप्त डायमंड पॉकेट बुक्स, 2020, पृ. 88
7. नगेन्द्र (सं):भारतीय नाट्य साहित्य, हिंदी साहित्य कुटीर, 2001, पृ. 303
8. प्रसाद जयशंकर : चंद्रगुप्त,भारती भंडार,1980, पृ. 54
9. प्रसाद जयशंकर : चंद्रगुप्त,भारती भंडार,1980, पृ. 47
10. प्रसाद जयशंकर : ध्रुस्वामिनी, के. एल. पचौरी प्रकाशन, पृ. 44
11. प्रसाद जयशंकर : ध्रुवस्वामिनी, के. एल. पचौरी प्रकाशन, पृ. 50
12. प्रसाद जयशंकर : ध्रुवस्वामिनी, के. एल. पचौरी प्रकाशन, पृ. 60
13. वाजपेयी पुष्पलता, प्रसाद के नाटकों के नारी पात्रों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन, हिंदी साहित्य भंडार, प्राक्कथन, पृ. 4
14. प्रसाद जयशंकर : जनमेजय का नागयज्ञ, साहित्य रत्नमाला, पृ. 86
15. प्रसाद जयशंकर : जनमेजय का नागयज्ञ, साहित्य रत्नमाला, पृ. 35
16. प्रसाद जयशंकर : प्रसाद : तब और अब, अनन्य प्रकाशन, पृ.142

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

आलेख

वांचो समुदाय की परंपराएँ और जमुना बीनी की कहानियाँ

धनंजय मल्लिक

शोधार्थी, हिंदी विभाग,
उत्तर बंग विश्वविद्यालय,
दार्जिलिंग, पश्चिम बंगाल
7908460397/9832521151
dhananjaymallick36@gmail.com

जमुना बीनी हिंदी साहित्य में कोई नया नाम नहीं है। युवा होने के बावजूद इनकी रचनाएँ चाहे वह कविताएँ हों या कहानियाँ काफी प्रौढ़ हैं। वे एक सजग और सचेत लेखिका हैं। वे मूल रूप से कविता और कहानी लिखती हैं। यहाँ हम उनकी कहानियों पर बात करेंगे, जो संख्या में भले ही कम हैं, मगर व्यापक क्षमता रखने में सक्षम हैं। उनकी कहानियों का निर्माण बहुत ही गहरे विचारों के आलोक में हुआ है। कहानियों को पढ़कर लगता है कि जमुना बीनी अपने विचारों में बहुत समृद्ध हैं। उनकी कविताएँ जितनी सहज और सरल प्रतीत होती हैं, उतनी ही गूढ़ अर्थों से निर्मित होती हैं उनकी कहानियाँ। कहानियों में उनकी परिपक्वता को देखकर लगता नहीं है कि वे एक युवा साहित्यकार हैं, और उनकी अब तक एक ही कहानी संग्रह प्रकाशित हुई है। जमुना बीनी का जन्म पूर्वोत्तर के बेहद ही खूबसूरत राज्य मेघालय में हुआ है। वर्तमान में वे राजीव गाँधी केंद्रीय विश्वविद्यालय, अरुणाचल प्रदेश हिंदी की सहायक प्राध्यापिका के रूप में कार्यरत हैं। इसका आशय यह है कि पूर्वोत्तर को लेकर उनकी जानकारी उसी तरह है, जिस तरह किसी को अपने घर से आँगन तक की जानकारी होती है। उन्होंने पूर्वोत्तर के पूरे समाज को करीब से देखा और उसे जिया है। जमुना बीनी कविताओं के माध्यम से पूर्वोत्तर के आदिवासी समाज को स्थापित करती हुई उन क्षेत्रों को बचाने की वकालत भी करती हैं, जिस पर शहरी सभ्यताओं की नजर है। परंतु इनकी कहानियों के विषय में मौलिक अंतर है। यहाँ वे न केवल जल, जंगल और जमीन की बातें करती हैं, बल्कि इसके मार्फत जीवन जीने वाले लोगों की परंपरा, संस्कृति, मिथक आदि को भी उजागर करती हैं। उनकी कहानियों में पूर्वोत्तर के पहाड़ों और जंगलों में रहने वाले लोगों का जिक्र है, जिसे शहरी लोग असभ्य और जंगली कहते हैं। पूर्वोत्तर के लोगों के साथ होने वाले गलत व्यवहार के विषय पर अपनी बात रखते हुए माता प्रसाद कहते हैं– ''बड़े दु:ख के साथ कहना पड़ता है कि भारत के अन्य भागों को यहाँ की स्थिति की जानकारी नहीं है, इसलिए वे कभी-कभी ये यहाँ के

निवासियों के साथ गलत कदम उठा लेते हैं।''[1] जमुना जी की कहानियों के अधिकतर पात्र या फिर स्थान पूर्ण रूप से शहरों से अनजान हैं। इनकी कहानियों में पूर्वोत्तर के जिस समाज, संस्कृति और परंपरा का जिक्र है, वह बाहरी पाठकों को मिथकीय लग सकता है। मगर असाधारण से दिखने वाले उनके समाज सत्यता की जमीन पर टिके हैं। 'अयाचित अतिथि और अन्य कहानियाँ' में संकलित उनकी कहानियों को पढ़कर लगता है कि उसकी जड़ों की एक शाखा 'वांचो' समुदाय की ओर फैली है। वांचो एक आदिवासी समुदाय है, जो कि पूर्वोत्तर की पहाड़ियों में आदिकाल से रहता आया है। कहानीकार उनकी जीवन शैली, उनकी परंपरा, उनकी संस्कृति आदि को लेकर जिन कहानियों का निर्माण करती हैं, वह बहुत ही रोचकता के साथ यथार्थ के दामन को थामकर मुकम्मल होती है।

परंपरा संस्कृति की देन है। कोई भी परंपरा वहाँ की संस्कृति को दर्शाती है। वांचो समुदाय की परंपरा आदिवासी परंपरा है, क्योंकि वांचो समुदाय एक आदिवासी समुदाय है। आदिवासी संस्कृति प्रकृति प्रधान होती है। डॉ. सावित्री कुमारी बड़ाईक के शब्दों में- ''मुख्यत: आदिवासी कला परम्परा विविध कला-रूपों का एक समुच्चय है, जिसमें सभी कला विधाओं के साथ-साथ प्रकृति की भी एक प्रमुख और सुनिश्चित भूमिका होती है।''[2] वांचो समुदाय जानता है कि प्रकृति से ही उनका जीवन जुड़ा है। हरिराम मीणा की मानें तो वे संस्कृति और प्रकृति के जुड़ाव को अनिवार्य मानते हैं और कहते हैं-''प्रकृति तत्वों से संस्कृति का जुड़ाव अनिवार्य होना चाहिए। प्रकृति से लगाव और मानव सृजित होने की स्थिति के कारण संस्कृति का स्थान प्रकृति एवं कृत्रिमता के मध्य कहीं होता है।''[3] चूँकि आदिवासी संस्कृति प्रकृति से जुड़ी हुई है, इसलिए उनकी परंपराएँ भी प्रकृति के इर्द-गिर्द ही घूमती नजर आती हैं। पूर्वोत्तर भारत न सिर्फ प्राकृतिक दृष्टिकोण से सुंदर

है, बल्कि सांस्कृतिक पक्षों से भी काफी समृद्ध है। इस विषय पर श्यामबाबू शर्मा कहते हैं– ''किसी भी अंचल की सामाजिक और सांस्कृतिक गतिविधियाँ उस अंचल के सामाजिक गठन पर आश्रित रहती हैं। पूर्वोत्तर भारत भौगोलिक–प्राकृतिक संपदाओं की दृष्टि से तो अनूठा है ही, सांस्कृतिक लिहाज से अपनी विलक्षणता को और पुख्ता करता है। यहाँ कुछ विलक्षणताएँ ऐसी हैं, जो देश की मुख्यधारा में शायद ही मिलें।''[4] यहाँ जिस विलक्षणता की बात श्यामबाबू कर रहे हैं, दरअसल यह विलक्षणता पूर्वोत्तर भारत की सांस्कृतिक विलक्षणता है, जो उनकी परंपरा में भी दिखती है। जमुना बीनी की कहानियों में भी यह विलक्षणता दिखती है। खासकर वांचो समुदाय की सांस्कृतिक विरासत इतनी उत्कृष्ट है कि जमुना बीनी ने उसे कहानियों में उतारा है।

जमुना बीनी की कहानियों की बात करें तो मूल रूप से अपनी कहानियों में जमुना बीनी वांचो समुदाय का रेखा चित्र खींचती हैं। जिस पूर्वोत्तर को लेकर मुख्यधारा के लोगों की अतरंगी–सी धारणाएँ हैं, उस पूर्वोत्तर के समाज को कहानीकार सबके समक्ष लाती हैं। अपनी कहानियों के माध्यम से जमुना बीनी वांचो समुदाय की परंपरा उन लोगों तक पहुँचाती हैं, जो लोग उन समुदायों को मनुष्य के श्रेणी तक में नहीं रखते। उनकी कहानियाँ ऐसे लोगों की आँखों पर से पर्दा हटाती हैं, जिस पर स्वयं को श्रेष्ठ स्थापित करने का आवरण चढ़ा है। वांचो पूर्वोत्तर भारत के अरुणाचल प्रदेश राज्य के लोंगडिंग जिले में पाटकाई पहाड़ियों में बसने वाला एक समुदाय है। वांचो पूर्वोत्तर के राज्यों का एक मुख्य समुदाय है। वांचो समाज चार वर्गों में विभक्त है, जिसका आधार विवाह है। चारों वर्गों की अपनी–अपनी कोटि है, जिसमें मुखिया या राजा का भी प्रावधान है। वीरेंद्र परमार की पुस्तक 'अरुणाचल के आदिवासी और उनका लोकसाहित्य' में इसका जिक्र है– ''वांचो समाज चार वर्गों में विभक्त है, जो वैवाहिक संबंधों पर आधारित है। समाज ने इन चारों वर्गों की कोटि निर्धारित कर दी है। ये चार वर्ग हैं – वांघम, वांग्शा, वांग्सु और वांगपन। वांघम सबसे श्रेष्ठ वर्ग है। इसमें चीफ और उनके परिवार को रखा गया है। इसे समाज में विशेषाधिकार प्राप्त है। सामान्य जन को वांगपन वर्ग में रखा गया है। वांग्शा और वांग्सु अंतर्वर्गीय वैवाहिक संबंधों का प्रतिफल है।''[5] इन सभी वर्गों का अपना–अपना इतिहास और भूगोल है। उनके इस इतिहास और भूगोल को जमुना बीनी अपनी कहानियों का विषय बनाती हैं। वांचो समुदाय की परंपराओं का जिक्र प्रायः उनकी हर कहानी में मिल जाता है। वांचो समुदाय का रहन–सहन, खान–पान, पहनावा, त्योहार, आदि को उनकी परंपरा के रूप में देखा जा सकता है। जमुना बीनी अपनी कहानियों के माध्यम से एक तरफ मौजूदा समय में वांचो समुदाय की महत्ता को दिखाने का कार्य करती हैं, तो दूसरी ओर उनकी परंपराओं की खामियाँ आदि को भी सबके सामने लाती हैं। इसके साथ ही यह बताना भी चाहती हैं कि वांचो समुदाय के कारण ही पूर्वोत्तर भारत और विशेषकर अरुणाचल की प्राकृतिक सुंदरता तथा सांस्कृतिक विरासत में अब तक ज्यादा फेरबदल नहीं हुआ है। इसी विषय पर श्यामबाबू शर्मा जी भी अपनी किताब 'पूर्वोत्तर की लोक–संस्कृति' में लिखते हैं– ''विशाल क्षेत्रफल और तमाम जनजातियों की आवास भूमि, पर्वतों, घाटियों से आच्छादित, भाषायी वैविध्य तथा नयनाभिराम वन्यप्राणियों व झरनों से अभिसिंचित भगवान दिवाकर की उद्‌गम स्थली अरुणाचल प्रदेश अपनी अनुपम सांस्कृतिक विरासत को सँजोए रखने में सक्षम रहा है।''[6]

वांचो समुदाय पर प्रकाश डालने वाली रचनाएँ हिंदी साहित्य में बहुत कम हैं। ऐसे में जमुना बीनी की कहानियाँ वांचो समुदाय को जानने और उन्हें स्थापित करने में सफल प्रतीत होती है। इनकी कहानियों में वांचो समुदाय के कई पक्ष उभरते हैं, जिसमें स्त्री एवं पुरुष का जीवन पक्ष, युद्ध से जुड़ी हुई कथाएँ, किसानों की स्थिति, प्रकृति का संरक्षण आदि प्रमुख हैं। इनके जीवन का प्रायः हर पहलू प्रकृति के साथ तालमेल बैठा कर चलता है। प्रकृति इनके जीवन का आधार है। इसलिए इनकी संस्कृति और परंपरा का आधार भी प्रकृति ही है। जमुना बीनी भी प्रकृति को ही आधार बनाकर इस समुदाय के जीवन के प्रसंगों को एक–एक करके अपनी कहानियों में पिरोती

हैं। पूर्वोत्तर की आदिवासी कहनियों में इस तरह की सभ्यता और संस्कृति का होना अनिवार्य है। इस विषय पर डॉ. ज्योति शर्मा अपने लेख में लिखती हैं– ''पूर्वोत्तर की आदिवासी कहानियाँ अपनी कर्मठ एवं खूबसूरत सभ्यता एवं संस्कृति का दिग्दर्शन कराती है।''[7] वांचो एक आदिम जनजाति है, इसलिए इनकी परंपराएँ भी बहुत ही प्राचीन और दूसरों की परंपराओं से भिन्न है। एक लंबी यात्रा तय करती हुई वांचो समुदाय की परंपराएँ आज भी अपनी जड़ों के साथ जुड़ी हैं, जिन्हें हम जमुना जी की कहानियों में देख सकते हैं।

वांचो समुदाय के समाज में अन्य समाजों की तुलना में स्त्रियों को बहुत स्वतंत्रता और अधिकार प्राप्त है। उनके समाज में दहेज के लिए बहुएँ नहीं जलाई जातीं, कन्या भ्रूण हत्याएँ नहीं होतीं, प्रेम को अस्वीकार करने पर 'एसिड अटैक' नहीं होता। इसके बावजूद यह सत्य है कि दुनिया की चाहे कोई भी परंपरा हो, स्त्रियाँ ही अधिक से अधिक उसकी भेंट चढ़ी हैं। जमुना बीनी इस सच्चाई को स्वीकारती हुई अपनी कहानियों में इसे उजागर करती हैं। वे दिखाती हैं कि आदिवासी वांचो समुदाय में भी स्त्रियों की स्थिति वही 'ढाक के तीन पात' की तरह है। अपनी कहानी 'नालाइ' में वे लिखती हैं–''ये रीति-रिवाज कब और किसकी निर्मितियाँ है! क्या ये पुरुषों की देन है! जाहिर है इसकी नियंता तो कोई स्त्री नहीं होगी, वर्ना हम औरतों पर ही क्यों सारे रिवाजों का प्रयोग होता! जैसे हम औरतें न होकर कोई प्रयोगशाला हों।''[8] जमुना बीनी रूढ़ परंपरा को भी दिखाती हैं। 'नालाइ' कहानी में ही उन्होंने इस तरह की रूढ़ परंपरा को दर्शाया है– ''पहले पेट में किसी और का बीज धारण करो फिर ससुराल को चलो । हाँ... पेट पर बीज किसी का और शादी किसी दूसरे से! आग लगे ऐसी दारुण प्रथा को!''[9] यहाँ वांचो समुदाय की परंपराएँ कहानीकार सबके सामने लाती हैं, जिसमें नालाइ को बिना शादी किए ही गर्भ धारण करना पड़ता है वह भी उस पुरुष से जिससे उसकी शादी नहीं होगी। यह परंपरा वांचो समुदाय में सदियों से चली आ रही है। और आज भी ऐसी परंपराओं का निर्वहन होता जा रहा है। इसके अलावे ऐसे कई नियम हैं, जो वांचो समुदाय में विशेष रूप से स्त्रियों के लिए हैं। 'फिफोट' कहानी में फिफोट (छुटकी) की माहवारी के शुरू होने पर गोदना का रिवाज है, जो स्त्रियों को ही गुदवाना पड़ता है। मायके से ससुराल तक। उक्त कहानी में फिफोट की माँ फिफोट से कहती हैं–''सुन अबकी बार इसलिए गुदवा रही हो क्योंकि तुम्हारी माहवारी शुरू हो गई। याद रखो, इधर मायके में दो दफा और उधर ससुराल में भी दो दफा गुदवाना पड़ेगा तुझे।''[10] अन्य आदिवासी कहानियों में भी स्त्रियों की स्थिति का वर्णन मिलता है। जमुना बीनी की कहानियों के आलावा रोज केरकेट्टा की कहानियों में भी स्त्रियों की अच्छाइयों एवं कमजोरियों का वर्णन मिलता है। इस बात की पुष्टि करती हुई डॉ. स्नेह लता नेगी कहती हैं–''रोज केरकेट्टा आदिवासी समाज में लिंग भेद की समस्या को भी चित्रित करती है। उसे बताने से घबराती नहीं है आदिवासी समाज की बहुत सी अच्छाइयों के साथ- साथ उसकी कमजोरियों पर भी रचनाकार की पैनी दृष्टि है।''[11]

वांचो समुदाय में स्त्री ही नहीं, बल्कि पुरुषों के लिए भी कई रीति-रिवाज हैं। जमुना बीनी उसका भी जिक्र कहीं-कहीं अपनी कहानियों में करती हैं। उनकी कहानियों के पुरुष पात्र अधिकतर वांचो समुदाय की परंपराओं को बचाते हुए दिखते हैं। 'अयाचित अथिति' नामक कहानी में यह दिखाया गया है कि जब कोई बाहरी लोग वांचो परंपरा का मजाक उड़ाते हैं, तो उनका गुस्सा सातवें आसमान पर होता है। यहाँ वांचो पुरुष बाहरी लोगों से अपनी संस्कृति, अपनी सभ्यता को बचाते हैं, जो आलोच्य कहानी में देखा जा सकता है- ''अपने नेता के शव की गरिमा न बचा सके तो धिक्कार है वांचो पुरुषार्थ को।''[12] जमुना जी कहानियों में पुरुष पात्रों के विस्थापन का भी वर्णन हुआ है। कहीं-कहीं कहानियों में पुरुष पात्र अपनी जड़ों से विस्थापित होते हैं। 'नालाइ' कहानी में हम इस विरोध के प्रसंग देख सकते हैं, ''देखो वह हमारे वांचो रवाइतों के बारे में कुछ नहीं जानता। बचपन से बाहर रहा है। बेहतर शिक्षा के लिए हमने उसे फादर डॉमिनिक के साथ शिलोंग पढ़ने भेजा।... बच्चे के अच्छे भविष्य के लिए हमें यह बलिदान देना सही लगा। इस बात का

इल्म न था कि इस तरह वह अपनी जड़ों से कट रहा था।''[13]

वांचो समुदाय में युद्ध का बहुत पुराना इतिहास रहा है। युद्ध उनके जीवन का अभिन्न हिस्सा है। युद्ध यानी कि अपनी अस्मिता को बचाए रखने के लिए होने वाले संघर्ष। जमुना बीनी ने ऐसे ही संघर्ष और पुराने युद्धों का जिक्र किया है, जो वांचो समुदाय में विद्यमान रहा है। अपनी कहानी 'अयाचित अथिति' में वांचो के युद्धों का जिक्र हुआ है। इसमें वांचो की अस्मिता को बचाने के लिए लड़े गए युद्धों की कहानी है। कहानी में वांचो की लड़ाई का वर्णन हुआ है- ''एक क्रूरतम लड़ाई वांचो अस्मिता की लड़ाई! एक ऐसी लड़ाई जिसने शक्तिशाली ब्रिटिश हकूमत की चूलें हिला दीं। असभ्य बनाम सभ्य की लड़ाई, मूलजन बरक्स घुसपैठ की लड़ाई, आदिम अनगढ़ शस्त्र और आधुनिक हथियार की लड़ाई। समस्त वांचो इतिहास में जातीय गौरव के लिए लड़ा गया अब तक सबसे बर्बर...वहशी युद्ध!''[14] युद्ध उनके लिए एक रिवाज है। इसी रिवाज से एक और रिवाज जुड़ा है, जो वांचो समुदाय में सदियों से विद्यमान है। वह है युद्ध में दुश्मन के सिर काट कर लाना। यह एक ऐसा रिवाज है, जो वांचो समुदाय के लोगों को आत्मिक सुख देता है। इस विषय पर केंद्रित कहानी 'नौमाई' में कहा गया है- ''एक वांचो शूरवीर जब शत्रु का सिर काटता है, उसे आत्मिक सुख मिलता है। उसकी दिलेरी और बहादुरी चेहरे, गले और सीने में गोदना की रेखाओं में परिणित होकर शरीर का अविभाज्य अंग बन जाता है।''[15] युद्ध में सिर काटने का एक रिवाज और उसके बाद अपने शरीर पर गोदना गुदवाना की दूसरी परंपरा दोनों साथ चलती है। यह साथ चलती हुई परंपरा अपने अंदर और कई परंपराओं को समा लेती हैं, वांचो समुदाय की सभी परंपराएँ आपस में जुड़ी हुई हैं। वांचो समुदाय का मानना है कि सिर काटने से फसल भी अच्छी होती है। 'नौमई' कहानी में इसका जिक्र भी हुआ है-''गांपा ने उन सबसे कहा...पास के पोखर से जल्द नहा-धोकर लौट आना, ताकि गोदना अनुष्ठान शुरू किया जा सके। गांपा बहुत खुश था! हो भी क्यों न, आखिर 'मोरुंग-पा' में सिरों की बढ़त का मतलब था खेती की पैदावार में अच्छी

जमुना बीनी की कहानियाँ एक ओर वांचो समुदाय की सांस्कृतिक विरासत और परंपराओं का प्रतिनिधित्व करती हैं तो दूसरी ओर समग्रता में पूरे अरुणाचल प्रदेश की सांस्कृतिक गाथा सुनाती हैं। इस प्रसंग को उन्हीं के शब्दों से पुख्ता किया जा सकता है- ''उम्मीद करती हूँ मेरी ये कहानियाँ हिंदी साहित्य में पूर्वोत्तर विशेषकर अरुणाचल समाज और संस्कृति का प्रतिनिधित्व करने में किंचित सफल होंगी।

बढ़ोतरी!''[16]

कृषि वांचो समुदाय की प्रमुख आजीविका है। वे कृषि कोई व्यापारिक दृष्टि से नहीं करते। उनके लिए कृषि जीवन जीने का साधन है। कृषि संबंधी अनेक परंपराएँ वांचो समुदाय के साथ युक्त हैं। कृषि से संबंधित त्योहार उनके समुदाय की परंपराओं की झलक दिखाती हैं। इस विषय पर विरेंद्र परमार कहते हैं, ''वांचो लोग विभिन्न प्रकार के कृषि संबंधी सामाजिक और धार्मिक उत्सव मनाते हैं। विभिन्न गाँवों में उत्सव के नामों और मनाने की रीति में भिन्नता है। 'ओजियेले' वांचो समुदाय का सबसे प्रमुख त्योहार है। धान की खेती करने के बाद प्रतिवर्ष मार्च-अप्रैल महीने में छह से बारह दिनों तक वांचो लोग उत्साह के साथ इस त्योहार का आयोजन करते हैं।''[17] जमुना बीनी की कहानियों में भी कृषि संबंधी यह रीति-रिवाज दिखता है। फसल काटने के बाद ही नहीं, बल्कि खेती करने से पूर्व भी वांचो समुदाय में कई नियम हैं। 'फिफोट' कहानी में इस नियम का जिक्र किया गया है- ''बर्मा जाने से पहले खेती के लिए

एक नयी जगह देख रखा था। उसी सिलसिले में 'डोंपा' से अनुष्ठान की सोच रहा था।''[18] नई जगह पर खेती करने से पूर्व वांचो समुदाय एक अनुष्ठान करते हैं, जिसमें 'डोंपा' को बुलाया जाता है। डोंपा एक तरह का पुरोहित होता है, जो वांचो समुदाय के सारे अनुष्ठानों को करवाता है।

मृत्यु से जुड़ी हुईं भी वांचो समुदाय की कई परंपराएँ हैं, जिसमें मूल रूप से अंतिम संस्कार से जुड़ा रीति-रिवाज है। यह रीति-रिवाज पीढ़ी-दर-पीढ़ी चला आ रहा है। वांचो समुदाय में शवों का अंतिम संस्कार करना, उसे संभाल कर रखना आदि कार्यों के लिए भी कई नियम हैं, जिसे हम जमुना जी की कहानियों में देख सकते हैं। 'अयाचित अथिति' कहानी में राजा की मृत्यु के बाद के रिवाजों को देखा जा सकता है- ''कुछ समय के बाद जब शव सड़ने लगेगा तब 'गांपा' का सिद्धहस्त हाथ सिर को धड़ से अलगाकर रंगीन लाल कपड़े में लपेट इसी गड्ढे में डाला जाएगा।''[19] वांचो लोग अपने सभी रीति-रिवाजों को महत्वपूर्ण मानते हैं। उनके लिए उनके रीति-रिवाज ही सब कुछ हैं, क्योंकि वे अपने रीति-रिवाज के कारण ही आज भी उन विषम परिस्थितियों में स्वयं को जीवित रख पाए हैं। इसलिए उन रिवाजों का हनन उन्हें बर्दाश्त नहीं है। आलोच्य कहानी में ही जब बाहरी लोग उनके नेता के शवों का अपमान करते हैं, तो उसे वे अपनी अस्मिता के साथ जोड़ते हुए क्रोधित हो जाते हैं और कहते हैं- ''दिन-दहाड़े हमारे रीति-रिवाजों का मजाक उड़ाने पर उतारू हो गये। हमारे दिवंगत नेता के शव का उपहास...यह अपराध है...अपराध है...अब हम चुप नहीं रहेंगे।''[20] 'मिसि-मुंह' कहानी में मृत्यु के बाद होने वाले अंतिम संस्कार से जुड़े रिवाजों का वर्णन है। इस कहानी में कुष्ठ रोग से पीड़ित व्यक्ति की मृत्यु के बाद उसके अंतिम संस्कार में वांचो समुदाय के अलग नियमों को देखा जा सकता है- ''कुष्ठ रोगियों के शव को इसी रीति से 'ब्रो' तक पहुँचाया जाने का रिवाज था। किशोरों ने मिलकर अपनी भुजा-बल का प्रदर्शन करते हुए, चंद घंटों में ही मिट्टी खोदकर 'ब्रो' तैयार किया। मोगे की भाभी और अन्य औरतों ने मोगे के कपड़े-लत्ते और खाने-पीने के बर्तन वगैरह को पोटली बनाकर बांध दीं। पोटली को 'ब्रो' में डाला जाना था, वर्ना मोगे की आत्मा अपने आप साजो-सामान को खोजती हुई वापस घर में लौटेगी।''[21] ब्रो का अर्थ कब्र है, जिसे खोदने तथा शव को कब्र में डालने का नियम यहाँ दिखाया गया है।

वास्तुकला से जुड़े हुए नियम भी वांचो समुदाय में विद्यमान हैं। वांचो एक आदिवासी समुदाय है, इसलिए उनके रहन-सहन, खान-पान आदि का तरीका उस समाज के अनुकूल ही है। उनके घर, शहर के घरों की तरह पक्के के नहीं होते, बल्कि वे प्रकृतिक चीजों से ही अपना घर तैयार करते हैं, जिसका एक विशेष नियम होता है। 'लाइफ टैक्स' कहानी में कहानीकार ने वांचो समुदाय के घरों की वास्तुकला पर ध्यान आकर्षित किया है- ''वांचो घर बाँस और तोको पत्ता से बने हुए थे, यहाँ तक कि चर्च भी। बाँस की दीवार और छत 'तोको पत्ता' की। सारे घर जमीन पर ही बनाये गए थे, जमीन के ऊपर नहीं! उधर पश्चिमी अरुणाचल में पारंपरिक घर आमतौर पर जमीन से कुछ फिट ऊपर बने मिलेंगे।''[22] उनके खान-पान के भी कई नियम हैं। हर चीज का अपना विशेष महत्व है। शराब पीने के लिए वे एक विशेष तरह के बर्तन का प्रयोग करते हैं, जो बाँस के ही बने होते हैं। 'नौमाइ' कहानी में इसका जिक्र मिलता है। जब सिर काटने वाले विजेता की जीत पर पूरा गाँव 'जु' (शराब) पीता है- ''विजेताओं के स्वागत में वे उमंग से भरे तराने गुनगुना रहे थे। औरतें बाँस के चोंगों में जु भर लाई थीं।''[23] रहन-सहन और खान-पान में उनके घर, उनके खाने-पीने का सामान आदि के अलावा उनके जीवन में प्रयोग होने वाली अन्य चीजें भी उन्हें परंपरा से ही प्राप्त हुई थीं। उसमें से एक प्रमुख वस्तु थी उनका हथियार। जंगल में निवास करने के कारण उनका हथियार रखना अनिवार्य था। उनके हथियार पारंपरिक होते थे, जिसमें मूल रूप से तीर-धनुष होता था। 'अयाचित अथिति' नामक कहानी में उनके हथियारों का जिक्र हुआ है- ''नये जमाने के अस्त्र-शस्त्र के प्रयोग से वांचो अनभिज्ञ जरूर था। किन्तु पारंपरिक तीर-धनुष और

'थांग' चलाने में वांचो का सानी कोई नहीं।''[24] 'थांग' एक प्रकार का धारदार हथियार होता है, जिसे वांचो समुदाय में विशेष रूप से प्रयोग किया जाता है। वांचो समुदाय के राजा की मृत्यु के बाद उनके अंतिम संस्कार में जो पारंपरिक साजो-सज्जा दिखता है, वह वांचो समुदाय की वास्तुकला पर प्रकाश डालता है। आलोच्य कहानी में राजा की मृत्यु के बाद एक लकड़ी के पुतले को राजा की तरह सजाकर उनके शव के पास रखा जाता है, ''जंगली सुअर के दाँतों से सजी जानी पहचानी राजा की टोपी, माला, थांग, और वस्त्र पहने सापा हू-ब-हू राजा जैसे दिख रहा था।''[25] इस पंक्ति से उनके राजा के पहनावे का तौर-तरीके का पता चलता है।

प्राकृतिक संसाधनों को बचाने के लिए वांचो समुदाय प्रतिबद्ध है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि इनके जीवन के इर्द-गिर्द इनकी परंपराएँ घूमती हैं। इनके जीवन से जुड़ा हर पक्ष इनके रीति-रिवाजों में पूरे होता है। प्राकृतिक संसाधनों को बचाने में भी इनकी परंपराएँ काम करती हैं। प्रकृति प्रत्येक आदिवासियों के लिए जीवन का आधार है। इस विषय पर डॉ. स्नेह लता नेगी कहती हैं- ''...आदिवासी जीवन तो उस प्रकृति जल-जंगल और जमीन के बिना अधूरा है। प्रकृति आदिवासियों के जीवन का मुख्य आधार है उससे उखड़कर वे जी नहीं पाते हैं।''[26] आदिवासी प्रकृति पर ही निर्भर हैं। इसलिए प्रकृति को बचाना इनका मौलिक अधिकार है। प्रकृति को बचाने के लिए कई नियम हैं, जिन्हें हम जमुना बीनी की कहानियों में देख सकते हैं। वांचो लोग अपने प्राकृतिक संपदा को अपने पुरखों से जोड़ते हुए उसे परंपरा मानते हैं। 'अयाचित अथिति' कहानी में यह देखा जा सकता है- ''वे लोग न सिर्फ हमारी प्राकृतिक संपदा को विनष्ट करना चाहते हैं, बल्कि हमारी सहज-सरल जीवनशैली की भी दूषित करने की मंशा रखते हैं। हमारी परंपरा पर फब्तियाँ कसने का क्या अर्थ लगाए...हमारे तौर-तरीकों का मखौल उड़ाकर क्या वे अपने तौर-तरीकें हम पर थोपने आये हैं? ये परंपराएँ कोई एक दिन में निर्मित नहीं हुईं। इनमें हमारी पुरखों की प्रज्ञा संचित है।''[27] खेती करने के बाद भूमि को उर्वर बनाने के लिए उसे कुछ सालों तक छोड़ने का रिवाज भी इस समुदाय में देखने को मिलता है। 'फिफोट' कहानी में कहानी की पात्र फिफोट को उसकी माँ इसी विषय में समझाती हुई कहती है, ''सुनो, एक स्थान पर सालों साल खेती नहीं कर सकते। क्योंकि इससे जमीन की उर्वरता का क्षरण होता है। मनुष्य से भी ज्यादा काम नहीं ले सकते, उससे आराम की आवश्यकता होती है। उसी प्रकार मिट्टी को भी विश्राम चाहिए। इसलिए उसे खाली छोड़ देना होता है।''[28]

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि जमुना बीनी की कहानियाँ एक ओर वांचो समुदाय की सांस्कृतिक विरासत और परंपराओं का प्रतिनिधित्व करती हैं तो दूसरी ओर समग्रता में पूरे अरुणाचल प्रदेश की सांस्कृतिक गाथा सुनाती हैं। इस प्रसंग को उन्हीं के शब्दों से पुख्ता किया जा सकता है- ''उम्मीद करती हूँ मेरी ये कहानियाँ हिंदी साहित्य में पूर्वोत्तर विशेषकर अरुणाचल समाज और संस्कृति का प्रतिनिधित्व करने में किंचित सफल होंगी।''[29] 'अयाचित अथिति और अन्य कहानियाँ' की भूमिका में अपनी बात कहती हुई जमुना जी का उक्त कथन यह बताता है कि वे अरुणाचल की संस्कृति एवं परंपरा को पाठकों के सामने लाने के लिए प्रयासरत हैं। इस प्रयास में बीनी जी न केवल पूर्वोत्तर की आदिवासियों की परंपराओं को सामने लाती हैं, बल्कि उनकी खामियों को भी उजागर करती हुई उसके बदलाव की आशा करती हैं। इसे उनके ही शब्दों में देखा जा सकता है- ''प्रत्येक समाज में जहाँ स्वस्थ परंपराएँ होती हैं, वहीं कुछ ऐसी परंपराएँ भी हैं, जिसकी सार्थकता, औचित्य और प्रासंगिकता पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता है। ऐसी कोई भी परंपरा चाहे कितनी भी पुरातन क्यों न हो, जो मानवीय गरिमा को ठेस पहुँचाये, वह निश्चित ही त्याज्य है।''[30] अत: यह कहा जा सकता है कि अपनी कहानियों में जमुना बीनी पूरे पूर्वोत्तर भारत की आदिवासी समुदायों की परंपराओं का जिक्र करती हुई वांचो समुदाय को भी उसमें जगह देती हैं। ❑

संदर्भ सूची :

1. सं. कुमार, सुनील, सिंह आलोक, पूर्वोत्तर भारत भाषा, साहित्य और संस्कृति, यश पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2019, पृष्ठ–11.
2. सं. डॉ. नेगी, स्नेह लता, आदिवासी समाज और साहित्य, अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2021, पृष्ठ–86.
3. सं. लुगुन, अनुज, समय से संवाद : 6, आदिवासी अस्मिता प्रभुत्व और प्रतिरोध, अनन्य प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2015, पृष्ठ– 17
4. शर्मा, श्यामबाबू, पूर्वोत्तर की लोक–संस्कृति, अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2019, पृष्ठ–115.
5. परमार, वीरेंद्र, अरुणाचल के आदिवासी और उनका लोकसाहित्य, राधा पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, पहला संस्करण : 2009, पृष्ठ–127.
6. शर्मा, श्यामबाबू, पूर्वोत्तर की लोक–संस्कृति, अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2019, पृष्ठ–115.
7. सं. डॉ. नेगी, स्नेह लता, आदिवासी समाज और साहित्य, अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2021, पृष्ठ–203.
8. बीनी, जमुना, अयाचित अथिति और अन्य कहानियाँ, समय साक्ष्य प्रकाशन, देहरादून, प्रथम संस्करण : 2021, पृष्ठ– 24.
9. वही, पृष्ठ–27.
10. वही, पृष्ठ–117.
11. सं. डॉ. नेगी, स्नेह लता, आदिवासी समाज और साहित्य, अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2021, पृष्ठ–103.
12. बीनी, जमुना, अयाचित अथिति और अन्य कहानियाँ, समय साक्ष्य प्रकाशन, देहरादून, प्रथम संस्करण : 2021, पृष्ठ–50.
13. वही, पृष्ठ–23.
14. वही, पृष्ठ–42.
15. वही, पृष्ठ–77.
16. वही, पृष्ठ–86.
17. परमार, वीरेंद्र, अरुणाचल के आदिवासी और उनका लोकसाहित्य, राधा पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, पहला संस्करण : 2009, पृष्ठ–127.
18. बीनी, जमुना, अयाचित अथिति और अन्य कहानियाँ, समय साक्ष्य प्रकाशन, देहरादून, प्रथम संस्करण : 2021, पृष्ठ– 120.
19. वही, पृष्ठ–40.
20. वही, पृष्ठ–50.
21. वही, पृष्ठ–166.
22. वही, पृष्ठ–178.
23. वही, पृष्ठ–86.
24. वही, पृष्ठ–55.
25. वही, पृष्ठ–40.
26. सं. डॉ. नेगी, स्नेह लता, आदिवासी समाज और साहित्य, अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2021, पृष्ठ–98.
27. बीनी, जमुना, अयाचित अथिति और अन्य कहानियाँ, समय साक्ष्य प्रकाशन, देहरादून, प्रथम संस्करण : 2021, पृष्ठ–53.
28. वही, पृष्ठ–123.
29. वही, पृष्ठ–भूमिका
30. वही, पृष्ठ–भूमिका

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

आलेख

मोहनदास की प्रथम लंदन यात्रा : चुनौतियाँ एवं समाधान

समीर देव

शोधार्थी, इतिहास विभाग
डॉ. भीमराव आंबेडकर विश्वविद्यालय,
आगरा, उत्तर प्रदेश
8171592401
devsameer709@gmail.com

सारांश :

मोहनदास के पूर्वज दीवान के पद पर पिछली तीन पीढ़ियों से सुशोभित थे। पिता करमचंद गांधी की मृत्यु के पश्चात दीवान पद प्राप्त करने के लिए मोहनदास के परिवारजनों ने मोहनदास को बैरिस्टर की पढ़ाई के लिए लंदन भेजने का विचार किया, लेकिन इस मार्ग में अनेक सामाजिक, आर्थिक, नैतिक चुनौतियाँ इस परिवार के समक्ष उत्पन्न हुईं, जिसमें जाति बहिष्करण, आर्थिक तंगी, परिवार से दूरी, नैतिक पतन की समस्या आदि ने मोहनदास की लंदन यात्रा में अवरोध उत्पन्न किया। लेकिन दृढ़ इच्छाशक्ति के चलते इन सभी अवरोधों को पार कर लिया गया। प्रस्तुत शोध पत्र में इन्हीं चुनौतियों एवं उनके समाधानों का प्रामाणिक रूप से वर्णन किया गया है।

बीज शब्द :

जाति, लंदन, समस्या, बैरिस्टरी, धन, अनुमति आदि।

मूल आलेख :

1884 ई. में निर्मित सामलदास कॉलेज भावनगर में मोहनदास ने जनवरी 1888 ई. में बी.ए. के 3 वर्षीय कोर्स की प्रथम कक्षा (पी.ई.) में प्रवेश लिया। इस समय यहाँ के प्राचार्य आर.ए. गुरिया थे। यहाँ के पाठ्यक्रम में अंग्रेजी, इतिहास, द्वितीय भाषा, बीज गणित, यूक्लिड, भौतिक विज्ञान थे। इन विषयों के कारण मोहनदास को काफी दिक्कतों का सामना करना पड़ा। इन्हें वहाँ की पढ़ाई कम समझ में आई, यद्यपि इन्होंने इसमें शिक्षकों का दोष नहीं माना।[1] यह वहाँ की गर्म जलवायु के कारण सिर दर्द और नकसीर चलने के कारण अध्ययन सही ढंग से ना कर सके।[2] यहीं पर अध्ययन के दौरान इनके इंग्लैंड जाने के विचार का जन्म हुआ। इनके अनुसार, 'जब मैं भावनगर कॉलेज में पढ़ रहा था, तब जयशंकर बुच से मेरी मामूली बातें हुई थीं। बातों के दौरान, उन्होंने मुझे सलाह दी थी कि तुम सोरठ के निवासी हो, इसलिए जूनागढ़ राज्य को लंदन जाने के लिए छात्रवृत्ति की अर्जी दो। उस दिन मैंने क्या जवाब दिया, यह अच्छी

तरह याद नहीं आता। ऐसा लगता है कि मैंने छात्रवृत्ति पाना असंभव समझा होगा, लेकिन उस समय से मेरे मन में इस अंचल की यात्रा करने का इरादा जम गया था। मैं इस ध्येय को पूर्ण करने के साधन खोजता रहा।'[3] इन्हें फरवरी–मार्च में होने वाली साप्ताहिक परीक्षाओं में विशेष सफलता नहीं मिली। इसके बाद इन्होंने 9 अप्रैल 1888 को छात्रवृत्ति की भी परीक्षा दी, लेकिन इसमें भी अनुत्तीर्ण हुए। प्रथम सत्र समाप्त होते ही छुट्टियों में यह 13 अप्रैल, 1888 को अपने घर राजकोट लौट आए और इंग्लैंड जाने की तैयारी के चलते यह पुन: इस कॉलेज में नहीं गए। यहाँ इनके प्रमुख सहपाठी प्राणशंकर भवानीशंकर जोशी तथा मणिलाल हरिलाल मेहता थे, जो बाद में क्रमश: गोंडल के मुख्यमंत्री तथा भावनगर के संयुक्त मुख्य न्यायाधीश बने।

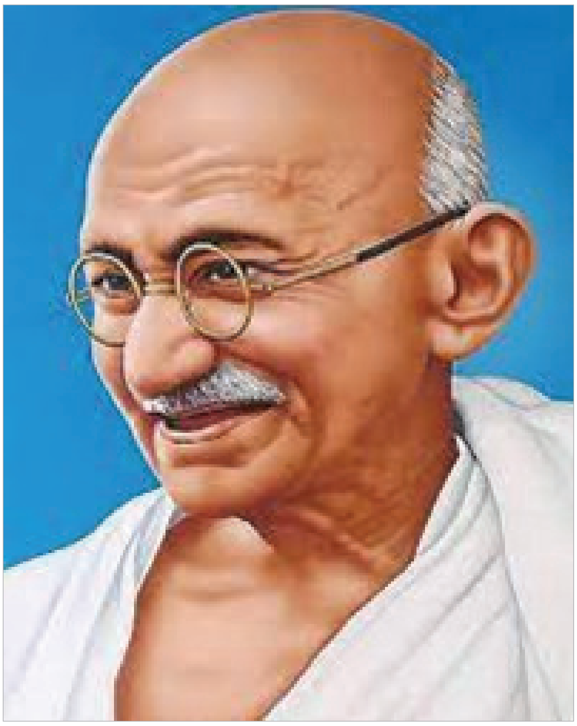

इन्हीं छुट्टियों में एक दिन इनके घर इनके परिवार के पुराने मित्र, सलाहकार व योग्य ब्राह्मण मावजी दुबे उर्फ जोशी जी आए।[4] उन्होंने मोहनदास की शिक्षा–दीक्षा पर जानकारी लेने के बाद लंदन से बैरिस्टरी की पढ़ाई कराने का सुझाव दिया। उन्होंने कहा कि इस तरह इसे बीए की डिग्री लेने में 4 या 5 वर्ष लग जाएँगे, जिससे अधिकतम इसे 60 रुपए की नौकरी ही मिलेगी, न कि दीवानी। मेरा पुत्र केवलराम कहता है कि बैरिस्टर बनना सरल है। 3 वर्षों में यह लौट आएगा और इस पढ़ाई का खर्च 4000 से 5000 रुपए से अधिक न होगा। मैं आपको इसी वर्ष मोहनदास को इंग्लैंड भेजने की सलाह दूँगा।[5] यह अपने साथ थोड़ी उड़द की दाल ले जाए। वहाँ अपने लिए खुद खाना बना लिया करेगा। इससे कोई धार्मिक आपत्ति ना होगी। यह बात किसी को बताओ मत। कोई छात्रवृत्ति पाने का प्रयत्न करो। जूनागढ़ और पोरबंदर दोनों राज्यों को अर्जी भेज दो। मेरे लड़के केवलराम से मिल लो और अगर तुम्हें आर्थिक सहायता पाने में सफलता न मिले और तुम्हारे पास रुपए भी न हों तो अपना सारा सामान बेच डालो, परंतु किसी भी तरह मोहनदास को लंदन तो भेज ही दो। मैं समझता हूँ कि तुम्हारे स्वर्गवासी पिता की प्रतिष्ठा बनाए रखने का एकमात्र उपाय यही है।[6] मोहनदास ने स्वयं को डॉक्टरी की पढ़ाई के लिए इंग्लैंड भेजने को कहा, लेकिन इस पर इनके बड़े भाई लक्ष्मीदास ने कहा कि वैष्णव होने के कारण पिताजी को शवों की चीर–फाड़ पसंद नहीं थी। वे तुम्हें वकील बनाना चाहते थे।[7] जोशी जी ने भी दीवान बनने के लिए मेडिकल डिग्री के स्थान पर वकील बनने पर जोर दिया। मोहनदास को यह विचार अच्छा लगा और अब वह अपने भविष्य को लेकर चिंतित रहते लगे।

वेजिटेरियन पत्रिका को दिए गए एक साक्षात्कार में मोहनदास ने बताया कि वे इंग्लैंड जाने के लिए महत्वाकांक्षा से प्रेरित थे। इनके अनुसार, 'मैंने सन 1887 में मुंबई विश्वविद्यालय से मैट्रिक की परीक्षा पास की। बाद में भावनगर कॉलेज में दाखिला हुआ। कारण यह था कि जब तक कोई बंबई विश्वविद्यालय से स्नातक नहीं हो जाता, उसे समाज में प्रतिष्ठा नहीं मिलती। यदि कोई उसके पहले ही नौकरी करना चाहे तो उसे तब तक

अच्छा वेतन और आदर मान की नौकरी नहीं मिलती, जब तक कोई बहुत प्रभावशाली व्यक्ति उसका पृष्ठपोषक न हो, परंतु मैंने देखा कि स्नातक बनने के लिए मुझे कम से कम 3 वर्ष खर्च करने पड़ेंगे। इसके अलावा मुझे हमेशा सिर दर्द और नाक से खून बहने की शिकायत रहा करती थी, जिसका कारण गरम आबोहवा मानी जाती थी और आखिर स्नातक बनकर भी तो मैं बहुत बड़ी आमदनी की आशा नहीं कर सकता था। मैं लगातार इन चिंताओं में डूबा रहने लगा। ऐसे ही अवसर पर मेरे पिता के एक पुराने मित्र मुझे मिले और उन्होंने मुझे इंग्लैंड आने और बैरिस्टरी पास करने की सलाह दी। मानो उन्होंने मेरे अंदर सुलग रही आग को धधका दिया। मैंने मन में सोचा अगर मैं इंग्लैंड चला जाऊँ तो न सिर्फ बैरिस्टर बन जाऊँगा, बल्कि दार्शनिकों और कवियों की भूमि, सभ्यता के साक्षात केंद्रस्थल इंग्लैंड को भी देख सकूँगा।'[8]

यद्यपि उनके भाई ने इस बात को गुप्त रखने का जो वचन दिया था, उसके बावजूद इसी दिन इनके भाई लक्ष्मीदास ने यह सारा मामला मोहनदास के चचेरे भाई खुशहाल भाई (छगनलाल व मगनलाल के पिता) को बताया। उन्होंने भी अनुमति दी यदि मोहनदास अपने धर्म का पालन कर सकें। उसी दिन यह बात मोहनदास के दूसरे चचेरे भाई मेघजी भाई को बताई गई। उन्होंने सहमत होकर 5000 रुपए देने का प्रस्ताव रखा, लेकिन मोहनदास की माताजी ने मना कर दिया। उन्होंने कहा कि जब समय आएगा, तब तुम्हें धन प्राप्ता नहीं होगा।[9] उनका ख्याल तो यह था कि जाने का अवसर कभी आएगा ही नहीं।[10] उसी दिन मोहनदास मावजी दुबे की सलाह पर उनके पुत्र केवलराम के घर गए, जो राजकोट में ही वकील था। उसके इंग्लैंड में कुछ जान पहचान के मित्र वकील भी थे। उसका कहना था कि तुम्हें वहाँ कम से कम 10,000 रुपए खर्च करने पड़ेंगे। अगर तुम्हारे मन में कोई धार्मिक आग्रह हो तो उनको तुम्हें छोड़ देना होगा। तुम्हें मांस खाना पड़ेगा। शराब पिये बिना भी काम न चलेगा। उसके बिना तुम वहाँ जी नहीं सकते। जितना ज्यादा खर्च करोगे, उतने ही ज्यादा होशियार बनोगे। यह बात बहुत महत्व की है। मैं तुमसे साफ-साफ कहता हूँ – बुरा न मानना, पर देखो, तुम अभी बहुत छोटे हो। लंदन में प्रलोभन बहुत हैं। तुम उनके फंदे में फँस जाओगे। यह बातें सुनकर मोहनदास को थोड़ी खिन्नता हुई, लेकिन वे अपने निर्णय पर अटल थे। इन्होंने अपनी बात कहते हुए गुलाम मोहम्मद मुंशी का उदाहरण दिया। फिर जब इन्होंने केवलराम से छात्रवृत्ति पाने में मदद करने का आग्रह किया तो उसका कहना था कि वह इसके अलावा सब कुछ बहुत खुशी से करेगा।[11] यहाँ पर मोहनदास ने अपने परिचय के दो काठियावाड़ी लड़कों प्राणजीवन मेहता तथा दलपतराम शुक्ल के बारे में बताया, जिन्हें विदेश में पढ़ाई के लिए मोरबी रियासत से छात्रवृत्ति प्राप्त हुई थी। अतः मोहनदास ने पोरबंदर व राजकोट राज्य से छात्रवृत्ति प्राप्त करने हेतु आवेदन करने का विचार बनाया, लेकिन केवलराम ने केवल पोरबंदर में ही इसके लिए आवेदन करने का सुझाव दिया।[12]

इन्होंने इंग्लैंड जाने के लिए आने वाली कठिनाइयों को एक दुख और दर्द की कहानी बताया। इनके अनुसार उन कठिनाइयों की तुलना तो बखूबी रावण (हिंदुओं के द्वितीय महान कथा ग्रंथ रामायण के राक्षस खलनायक जिसे रामायण के चरित्र नायक राम ने युद्ध करके हराया था) के सिरों से की जा सकती है, जो बहुत से थे और कटते ही फिर उगाते थे।[13] इंग्लैंड जाने के विचार के कारण इनके सामने चार प्रमुख समस्याएँ आईं। समुद्र पार शिक्षा के लिए धन की व्यवस्था, इनकी पत्नी के परिवार द्वारा उत्पन्न समस्या, इनकी माँ की अनिच्छा और जाति से बहिष्करण। इनसे बिछड़ने के ख्याल से इनकी माताजी बहुत चिंतित हुईं और उन्होंने इनके इंग्लैंड जाने के लिए चाचा जी की अनुमति की शर्त रख दी तो वही बड़े भाई धन एकत्रीकरण हेतु चिंतन-मनन करने लगे। उन्होंने मोहनदास को पोरबंदर राज्य के मिस्टर लेली से मिलने के लिए कहा कि वह इंग्लैंड जाने में इनकी कुछ मदद कर सकें। मोहनदास दो-तीन बार पोरबंदर जाने के लिए तैयार हुए, लेकिन इनके मार्ग में बाधाएँ आईं। जिस दिन यह झवेर चंद के साथ पोरबंदर जाने वाले थे, तब इनके मित्र शेख मेहताब से हुए झगड़े तथा इंग्लैंड जाने के अति उत्साह के कारण मेघजी के घर जाते समय

यह मार्ग में एक गाड़ी से टकरा गए। इन्हें काफी चोटें आईं। इसके बाद मेघजी के घर में एक पत्थर से फिर टकरा गए और बेहोश हो गए। इस घटना के बाद इनकी माताजी भी वहाँ आ गईं और उन्होंने दुख जताया।[14/15] यद्यपि आदतन मोहनदास डरपोक प्रवृत्ति के थे, लेकिन इंग्लैंड जाने के उत्साह से अकेले पोरबंदर भी जाने को तैयार हो गए। बैलगाड़ी से राजकोट से पोरबंदर की यात्रा 5 दिन की थी, लेकिन 4 दिन में ही पहुँचने के लिए इन्होंने धोराजी तक बैलगाड़ी तथा इसके बाद ऊँट की सवारी कर पोरबंदर पहुँचे। वहाँ पर उनके चचेरे भाई लाल भाई तथा इनके बड़े भाई कृष्णदास खादी ब्रिज पर इन्हें लेने पहुँच गए। इन्होंने अपने चाचा को इंग्लैंड जाने संबंधी विचार बताया और उन्होंने अनुमति दे दी। उन्होंने कहा कि यदि माताजी की सहमति है तो मेरी ओर से भी पूरी अनुमति है। इस अवसर पर इनके चाचा स्पष्ट रूप से कुछ भी कहने से बच रहे थे, क्योंकि उनको जाति से निकाले जाने का भय था। इसी कारण वह पोरबंदर के ब्रिटिश राजनीतिक एजेंट मिस्टर लेली से सिफारिश करने के लिए भी तैयार नहीं हुए। 3 दिन तक मोहनदास द्वारा लगातार समझाने और मनाने के बाद उन्होंने कहा कि मैं तो तीर्थ यात्रा के लिए जा रहा हूँ, तुम जो कुछ कह रहे हो, वह ठीक हो सकता है, परंतु मैं तुम्हारे अधार्मिक प्रस्ताव पर राजी खुशी से हाँ कैसे कह सकता हूँ? मैं तो सिर्फ इतना कह सकता हूँ कि अगर तुम्हारी माता को जाने पर कोई आपत्ति नहीं है तो मुझे दखल देने का कोई अधिकार नहीं है।[16/17] और उन्होंने सीधे ही मिस्टर लेली से मिलने को कहा, लेकिन दुर्भाग्य से वह पोरबंदर में नहीं थे। इस कारण चाचाजी ने इन्हें अगले रविवार तक प्रतीक्षा करने की सलाह दी और सोमवार को यह मिस्टर लेली से मिले, लेकिन उसने भारत में बी.ए. पास करने के बाद आने की कहकर इन्हें निराश कर दिया।[18/19] इसके बाद मोहनदास ने एक अन्य चचेरे भाई परमानंद भाई ने 5000 रुपए देने का वादा किया, लेकिन उनसे धन प्राप्त न हो सका। इसी दौरान राजकोट में इनके मित्र शेख मेहताब ने इनके नाम और हस्ताक्षर करके एक पत्र मेघजी भाई जी को लिखा, जिसमें 5000 रुपए देने का उल्लेख था, लेकिन उन्होंने अंत में इनकार कर दिया। इनके व्यवहार पर मोहनदास ने लिखा है कि उन्होंने सबके सामने गलत तरीके से मुझसे बात की।[20] इसके अतिरिक्त इन्होंने ठाकुर साहब तथा कर्नल सी.डब्ल्यू. वाटसन से आर्थिक मदद प्राप्त करने के लिए आवेदन किया, लेकिन वह असफल रहे।

इनकी माँ को इनके इंग्लैंड में खो जाने, मांस खाने, शराब पीने आदि के ख्याल आने के कारण दुविधा में थीं। उन्होंने पारिवारिक सलाहकार व जैन भिक्षु विचार जी स्वामी से सलाह लेने को कहा, जो मूलतः मोढ़ बनिया ही थे। विचार जी स्वामी ने इन्हें शराब, स्त्री व मांस को न छूने की प्रतिज्ञा कराई। अंततः इनकी माँ ने इन्हें इंग्लैंड जाने की अनुमति दे दी। मोहनदास का विवाह पोरबंदर के एक प्रसिद्ध व्यापारी सेठ गोकलदास माखनजी की पुत्री कस्तूरबा से हुआ था। इनकी पत्नी के परिवार ने भी गर्भवती पुत्री को छोड़कर विदेश जाने का विरोध किया, लेकिन अंततः इन्होंने उन्हें समझा-बुझा दिया।

राजकोट लौटने से पूर्व इन्होंने भावनगर जाकर अपना फर्नीचर बेच दिया तथा किराए का मकान खाली किया और यह राजकोट लौटकर अपने सबसे बड़े भाई लक्ष्मीदास से धन जुटाने के लिए निवेदन किया। अतः इनके जाने का खर्च भाई ने जुटा लिया। इनके इंग्लैंड जाने में अपने भाई के प्रयासों की मोहनदास ने एक साक्षात्कार में बड़ी सराहना की। इन्होंने कहा कि मेरे पिता जो थोड़ा सा धन बचा पाए थे, वह मेरे भाई के हाथों में था। उनकी अनुमति से ही निकल सकता था। इसके अलावा वह धन काफी नहीं था, इसलिए मैंने कहा कि सारी पूँजी मेरी शिक्षा में लगा दी जाए। मैं आपसे

पूछता हूँ कि क्या यहाँ कोई भाई ऐसा करेगा? भारत में भी ऐसे भाई बहुत कम हैं। उनसे कहा गया था कि पश्चिमी विचार ग्रहण करके मैं एक नालायक भाई साबित हो सकता हूँ और मुझसे रुपया तो तभी वापस मिल सकेगा, जब मैं भारत जीवित लौट सकूँ और इसमें बहुत संदेह व्यक्त किया जा रहा था, परंतु मेरे भाई ने यह सब चेतावनियाँ अनसुनी कर दीं। मेरे प्रस्ताव की स्वीकृति के लिए केवल एक शर्त रखी गई। वह शर्त यह थी कि मैं अपनी माता और चाचा की अनुमति प्राप्त कर लूँ। मेरे भाई जैसे भाई बहुत लोगों के हों।[21] इनकी माँ को इनके इंग्लैंड में खो जाने, मांस खाने, शराब पीने आदि के ख्याल आने के कारण दुविधा में थीं। उन्होंने पारिवारिक सलाहकार व जैन भिक्षु विचार जी स्वामी से सलाह लेने को कहा, जो मूलत: मोढ़ बनिया ही थे। विचार जी स्वामी ने इन्हें शराब, स्त्री व मांस को न छूने की प्रतिज्ञा कराई। अंतत: इनकी माँ ने इन्हें इंग्लैंड जाने की अनुमति दे दी।[22/23] मोहनदास का विवाह पोरबंदर के एक प्रसिद्ध व्यापारी सेठ गोकलदास माखनजी की पुत्री कस्तूरबा से हुआ था। इनकी पत्नी के परिवार ने भी गर्भवती पुत्री को छोड़कर विदेश जाने का विरोध किया, लेकिन अंतत: इन्होंने उन्हें समझा-बुझा दिया।

इंग्लैंड जाने के उपलक्ष में 4 जुलाई, 1888 को इन्होंने अपने स्कूल अल्फ्रेड हाईस्कूल, राजकोट में झिझकते हुए विदाई भाषण दिया, जिसमें इन्होंने कहा कि मैं आशा करता हूँ कि आप में से कुछ साथी मेरे कदमों पर चलेंगे और आप जब इंग्लैंड से वापस आएँगे तो भारत में बड़े सुधारों के लिए हृदय से कार्य कर सकेंगे।[24] इस विदाई समारोह में केवलराम, छगनलाल पटवारी, बृजलाल, हरिशंकर, अमलाख, मानिकचंद, खीमजी रामजी, दामोदर, मेघजी रामजी, कालिदास नरनजी, रणछोड़दास, मणिलाल, सम्मिलित हुए।[25] 10 अगस्त, 1888 को मोहनदास अपने सबसे बड़े भाई लक्ष्मीदास के साथ राजकोट से मुंबई की ओर रवाना हुए। जून-जुलाई माह में हिंद महासागर में तूफानों की अधिकता के कारण मित्रों की सलाह पर इनके भाई ने नवंबर में इंग्लैंड जाने की योजना बनाई और यह मोहनदास को अपने मित्र के पास छोड़कर राजकोट चले गए तथा मोहनदास का यात्रा-व्यय इनके साले को दे गए। इसी बीच मोहनदास के इंग्लैंड जाने के प्रश्न पर बंबई में मोढ़ बनिया समुदाय की एक सभा हुई। जाति के हर आदमी को सभा में बुलाया गया और जो ना आए, उसे 5 आने जुर्माने की धमकी दी गई। सभा में जाति के प्रतिनिधियों ने जिन्हें पटेल कहा जाता था, इन्हें खूब बुरी-भली सुनाई। मुख्य पटेल या सेठ ने इनसे कहा कि तुम्हारे पिता हमारे दोस्त थे, इसलिए हमें तुम पर दया आती है। तुम जानते हो कि जाति के मुखिया के नाते हमें कितनी शक्ति है। हम ठीक-ठीक जानते हैं कि इंग्लैंड में तुम्हें मांस खाना पड़ेगा और शराब पीनी पड़ेगी। इसके अलावा तुम्हें समुद्र पार जाना है। तुम्हें मालूम होना चाहिए कि यह सब हमारे जाति नियमों के खिलाफ है, इसलिए हम तुम्हें हुक्म देते हैं कि अपने फैसले पर फिर से सोच विचार कर लो नहीं तो तुम्हें भारी से भारी सजा दी जाएगी। इस पर मोहनदास ने कहा कि मैं अपना फैसला नहीं बदल सकता। मैंने इंग्लैंड के बारे में जो कुछ सुना है, आप जो कुछ कह रहे हैं, उससे बिल्कुल भिन्न है। जरूरी नहीं कि वहाँ मांस-मदिरा का सेवन करना ही पड़े और जहाँ तक समुद्र पार करने की बात है, अगर हमारे भाई बंधु अदन जा सकते हैं तो मैं इंग्लैंड क्यों नहीं जा सकता। मुझे पक्का यकीन हो गया है कि इन सब आपत्तियों के पीछे ईर्ष्या काम कर रही है।[26/27] मोहनदास के निकट रिश्तेदार खुशहाल भाई तथा छगनलाल पटवारी ने भी न जाने की सलाह दी, लेकिन मोहनदास अपने विचार पर दृढ़ रहे। अत: सेठ ने आदेश दिया कि यह लड़का आज से जाति से बहिष्कृत माना जाएगा। जो भी इसकी मदद करेगा या इसे जहाज तक छोड़ने जाएगा, उस पर एक रुपए 4 आने का जुर्माना लगेगा।[28] और यदि यह लड़का कभी लौट कर आ सके तो इसे बता दिया जाए कि यह फिर से कभी जाति में नहीं लिया जाएगा।[29] अपनी जाति के लोगों की धमकी के कारण इनके बड़े भाई का भी मन एक बार को डाँवाडोल हो गया था। उन्होंने सीधे तौर पर मोहनदास से तो कुछ नहीं कहा, लेकिन इनके कुछ मित्रों से कहा कि वे मोहनदास को या तो अपने निर्णय पर फिर से विचार करने या जाति का गुस्सा ठंडा पड़ने तक लंदन-यात्रा स्थगित कर देने के लिए समझाएं, लेकिन मोहनदास

अपने निर्णय पर अटल रहे।

इसी बीच 4 सितंबर, 1888 को जूनागढ़ के एक वकील त्रियंबकराय मजूमदार के बैरिस्टरी करने हेतु इंग्लैंड जाने की खबर इन्हें मिली। इन्होंने अपने भाई से जाने की अनुमति माँगी। उन्होंने अनुमति दे दी और यह इंग्लैंड जाने के लिए इनके भाई द्वारा अपने साले को दिया गया यात्रा व्यय जब यह माँगने पहुँचे तो उसने समुदाय के मुखिया के आदेश के भय से इन्हें वह धन नहीं दिया।[30/31] इस अनुभव को मोहनदास अपनी पुस्तक 'गाइड टू लंदन' में इस प्रकार लिखते हैं कि 'मैं अपने निजी अनुभव से जानता हूँ कि कुछ ऐसे लोग भी जिन्हें आप पूरी तरह भरोसे के योग्य मानते हैं, आर्थिक सहायता का वचन देकर अपनी बात से फिर जाते हैं और यह भी उस हालत में जब सहायता ऋण के रूप में माँगी गई हो, उपहार के रूप में नहीं।'[32] फिर व्यथित मन से मोहनदास ने अपने पारिवारिक मित्रों प्रमुख रूप से रणछोड़लाल पटवारी से धन उधार लेकर 4 सितंबर, 1888 को एस.एस. क्लाइड जहाज से मजूमदार के साथ बंबई बंदरगाह छोड़ दिया।[33/34] इस समय यह जगमोहनदास, दामोदरदास, बेचारदास, शामलाजी तथा रणछोड़लाल के विशेष आभारी रहे। इनके अतिरिक्त मानशंकर, नारायणदास पटवारी, द्वारकादास, पोपटलाल, काशीदास, रविशंकर, फिरोजशाह रतन सामलजी आदि स्ट्रीमर क्लाइड पर विदाई देने आए।[35] इसी समय इनके बचपन के मित्र मानशंकर ने इन्हें चाँदी की चेन दी। मोहनदास को आर्थिक मदद करने वाले रणछोड़लाल बाद में गोंडल राज्य के प्रधानमंत्री बने। मोहनदास उन्हें अपने पत्र व्यवहार में मुरब्बी (बड़ा भाई) रणछोड़दास भाई कहते थे।

उपसंहार :

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि बैरिस्टरी की पढ़ाई के लिए लंदन जाने हेतु मोहनदास के मार्ग में अनेक बाधाएँ आईं, लेकिन इन्होंने अपनी दृढ़ इच्छाशक्ति व अपने परिवार प्रमुख सबसे बड़े भाई लक्ष्मीदास के अनन्य सहयोग से इन बाधाओं पर विजय प्राप्त की तथा समाज में जाति बहिष्करण के विरुद्ध एक ऐसा प्रतिमान स्थापित किया, जिससे अध्ययन इत्यादि के लिए विदेश जाने वाले युवाओं जैसे जवाहरलाल नेहरू, विनायक दामोदर सावरकर आदि को नैतिक प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। ❑

संदर्भ सूची :

1. द स्टोरी ऑफ माय एक्सपेरिमेंट्स विद ट्रुथ, महात्मा गांधी (अंग्रेजी अनुवादक : महादेव देसाई), नवजीवन प्रेस, अहमदाबाद, 1927, पृष्ठ संख्या 90
2. एम.के. गाँधी : एटर्नी एट लॉ, चार्ल्स आर. डीसिल्वो, यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस, लंदन, 2013, पृष्ठ संख्या 2
3. द कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी, वॉल्यूम 1, पृष्ठ संख्या 2-3
4. प्यारेलाल, महात्मा गांधी : द अर्ली फेज, वॉल्यूम 1, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद ,1986, पृष्ठ संख्या 218
5. द स्टोरी ऑफ माय एक्सपेरिमेंट्स विद ट्रुथ, महात्मा गांधी (अंग्रेजी अनुवादक : महादेव देसाई), नवजीवन प्रेस, अहमदाबाद, 1927, पृष्ठ संख्या 91
6. द कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी, वॉल्यूम 1, पृष्ठ संख्या 3
7. द स्टोरी ऑफ माय एक्सपेरिमेंट्स विद ट्रुथ, महात्मा गांधी (अंग्रेजी अनुवादक : महादेव देसाई), नवजीवन प्रेस, अहमदाबाद, 1927, पृष्ठ संख्या 92
8. द कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी, वॉल्यूम 1, पृष्ठ संख्या 41-42
9. प्यारेलाल, महात्मा गांधी : द अर्ली फेज, वॉल्यूम 1 ,नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, 1986, पृष्ठ संख्या 213
10. द कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी, वॉल्यूम 1, पृष्ठ संख्या 3
11. वही, पृष्ठ संख्या 4
12. प्यारेलाल, महात्मा गांधी : द अर्ली फेज, वॉल्यूम 1, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद,1986, पृष्ठ संख्या 219-20
13. द कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी, वॉल्यूम 1, पृष्ठ संख्या 42
14. वही, पृष्ठ संख्या 4-5

15. प्यारेलाल, महात्मा गांधी : द अर्ली फेज, वॉल्यूम 1, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद,1986, पृष्ठ संख्या 220
16. द कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी, वॉल्यूम 1, पृष्ठ संख्या 43-44
17. प्यारेलाल, महात्मा गांधी : द अर्ली फेज, वॉल्यूम 1, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद,1986, पृष्ठ संख्या 221
18. द स्टोरी ऑफ माय एक्सपेरिमेंट्स विद ट्रुथ, महात्मा गांधी (अंग्रेजी अनुवादक : महादेव देसाई), नवजीवन प्रेस, अहमदाबाद, 1927, पृष्ठ संख्या 97
19. प्यारेलाल, महात्मा गांधी : द अर्ली फेज, वॉल्यूम 1, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद,1986, पृष्ठ संख्या 221
20. द कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी, वॉल्यूम 1, पृष्ठ संख्या 7
21. वही, पृष्ठ संख्या 43
22. द स्टोरी ऑफ माय एक्सपेरिमेंट्स विद ट्रुथ, महात्मा गाँधी (अंग्रेजी अनुवादक : महादेव देसाई), नवजीवन प्रेस, अहमदाबाद, 1927, पृष्ठ संख्या 97
23. प्यारेलाल, महात्मा गांधी : द अर्ली फेज, वॉल्यूम 1, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, 1986, पृष्ठ संख्या 222
24. द कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी, वॉल्यूम 1, पृष्ठ संख्या 1
25. वही, पृष्ठ संख्या 8
26. वही, पृष्ठ संख्या 45-46
27. प्यारेलाल, महात्मा गांधी : द अर्ली फेज, वॉल्यूम 1, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद,1986, पृष्ठ संख्या 223
28. द स्टोरी ऑफ माय एक्सपेरिमेंट्स विद ट्रुथ, महात्मा गांधी (अंग्रेजी अनुवादक : महादेव देसाई), नवजीवन प्रेस, अहमदाबाद, 1927, पृष्ठ संख्या 102
29. द कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी, वॉल्यूम 1, पृष्ठ संख्या 46
30. द स्टोरी ऑफ माय एक्सपेरिमेंट्स विद ट्रुथ, महात्मा गांधी (अंग्रेजी अनुवादक : महादेव देसाई), नवजीवन प्रेस, अहमदाबाद, 1927, पृष्ठ संख्या 103
31. महात्मा गांधी एज ए स्टूडेंट, संपादक जे.एम.उपाध्याय, निदेशक प्रकाशन विभाग, सूचना व प्रसारण मंत्रालय, दिल्ली, पृष्ठ संख्या 80
32. द कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी, वॉल्यूम 1, पृष्ठ संख्या 72
33. वही, पृष्ठ संख्या 8
34. द स्टोरी ऑफ माय एक्सपेरिमेंट्स विद ट्रुथ, महात्मा गांधी (अंग्रेजी अनुवादक : महादेव देसाई), नवजीवन प्रेस, अहमदाबाद, 1927, पृष्ठ संख्या 107
35. द कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी, वॉल्यूम 1, पृष्ठ संख्या 8-9

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

প্ৰবন্ধ

চাৰিত্ৰিক বিকাশত ভৰ্তৃহৰিৰ অৱদান

ড° নিলাক্ষী মিলি মেদক

সহকাৰী অধ্যাপিকা, সংস্কৃত বিভাগ
কটন বিশ্ববিদ্যালয়
গুৱাহাটী-৭৮১০০১ (অসম)
৭০৯৯৮-০৮৯০৯
nilakshimili1981@gmail.com

সংক্ষিপ্তসাৰ ঃ

মানুহৰ চাৰিত্ৰিক বিকাশৰ ক্ষেত্ৰত নীতিমূলক সাহিত্যই এক গুৰুত্বপূৰ্ণ ভূমিকা গ্ৰহণ কৰি আহিছে। ভাৰতীয় সাহিত্যৰ এক বুজন পৰিমাণৰ সাহিত্যই হৈছে নীতিমূলক সাহিত্য। বৈদিক কালৰ পৰা আৰম্ভ কৰি উপনিষদ, গীতা, ভৰ্তৃহৰি ৰচিত নীতিশতক, পঞ্চতন্ত্ৰ তথা হিতোপদেশ আদি গ্ৰন্থসমূহেও সৰ্বদা নীতিজ্ঞান প্ৰদানৰ দ্বাৰা মানৱ চৰিত্ৰ গঠনৰ প্ৰতি যত্নৱান হৈছে। চাৰিত্ৰিক বিকাশ অবিহনে আমাৰ জীৱন সফল আৰু সাৰ্থক হ'ব নোৱাৰে। ভৰ্তৃহৰিৰ নীতিশতক গ্ৰন্থখনেও মানুহৰ চাৰিত্ৰিক বিকাশৰ ক্ষেত্ৰত এক গুৰুত্বপূৰ্ণ ভূমিকা গ্ৰহণ কৰিছে। এই আলোচনা পত্ৰখনত ভৰ্তৃহৰিৰ নীতিশতকত চাৰিত্ৰিক বিকাশৰ বাবে কোনবোৰ দিশ তুলি ধৰিছে তাৰ বিশ্লেষণ কৰাৰ প্ৰয়াস কৰা হৈছে।

বীজ শব্দ ঃ

নীতিশতক, মুক্তককাব্য, সজ্জন, দুৰ্জন, চাৰিত্ৰিক বিকাশ।

প্ৰস্তাৱনা ঃ

ব্ৰহ্মাৰ সৃষ্টিত সৰ্বোচ্চ স্থান লাভ কৰিছে মনুষ্যই। মনুষ্য হৈছে চিন্তনশীল তথা বিবেকশীল। মনুষ্যই পূৰ্বে কৰা কাৰ্যৰ পৰিণাম পৰীক্ষণ কৰি আগলৈ কৰিবলগীয়া কাৰ্যৰ দশা আৰু দিশ ভালদৰে আলোচনা কৰি নিৰ্ধাৰণ কৰে। নিৰন্তৰ আগলৈ গমন কৰাই হৈছে মানৱৰ সহজাত স্বভাৱ। ইয়াৰ বাবে যি যি আৱশ্যক সেই সকলোবোৰেই সাধন কৰে মনুৰ সন্ততিসকলে।

মানুহৰ চাৰিত্ৰিক বিকাশত ব্যৱহাৰিক জ্ঞানৰ অত্যধিক গুৰুত্ব আছে। বিবিধ প্ৰসংগত মানুহৰ দ্বাৰা কৰা ব্যৱহাৰেই মানৱ বিকাশৰ পৰিচায়ক। এই ব্যৱহাৰিক জ্ঞান অত্যন্ত সৰল ৰীতিত কাব্যৰ দ্বাৰাই লাভ কৰা সম্ভৱ। সমন্বয়বাদী কাব্যশাস্ত্ৰী আচাৰ্য মম্মটেও কাব্য প্ৰয়োজন উপস্থাপন কৰিবলৈ যাওঁতে ব্যৱহাৰিক জ্ঞানৰ প্ৰতি আগ্ৰহ প্ৰদৰ্শন কৰিছে—

কাব্যং যশসেহৰ্থকৃতে ব্যৱহাৰবিদে শিৱেতৰক্ষতয়ে।
সদ্যঃ পৰনিৰ্বৃতয়ে কান্তাসম্মিততয়োপদেশযুজে।।

(কাব্যপ্ৰকাশ, পৰিচ্ছেদ-১, শ্লোক সংখ্যা-২)

কাব্য পৰম্পৰাত নীতিকাব্যই এক গুৰুত্বপূৰ্ণ স্থান অধিকাৰ কৰিছে। নীতিকাব্যৰ নাম উচ্চাৰণ কৰাৰ লগে লগে প্ৰথমতে ভৰ্তৃহৰিৰ নাম মনলৈ আহে। সংস্কৃত সাহিত্যত এক বিশিষ্ট স্থানৰ অধিকাৰী কবিৰ জীৱন চৰিত আৰু আৱিৰ্ভাৱ কাল কিংবদন্তীৰ অন্তৰালত নিমজ্জিত। বিদ্বানসকলৰ মতানুযায়ী ভৰ্তৃহৰি মালৱ দেশৰ ৰজা আছিল। তেওঁৰ পিতৃ ৰজা গন্ধৰ্বসেনৰ অনুজ ৰজা বিক্ৰমাদিত্য আছিল। তেওঁৰ পত্নীৰ নাম আছিল পিঙ্গলা। তেওঁ কালক্ৰমত বৈৰাগ্য লাভ কৰি ৰাজ্য শাসনৰ দায়িত্ব ভাতৃক সমৰ্পণ কৰি গোৰখনাথৰ শিষ্যত্ব লাভ কৰি যোগী হৈছিল। ভৰ্তৃহৰিয়ে নীতিশতক শৃংগাৰশতক আৰু বৈৰাগ্যশতক এই তিনিখন শতককাব্য ৰচনা কৰিছিল।

ভৰ্তৃহৰিৰ নীতিশতক হ'ল মুক্তককাব্য। মুক্তককাব্যত প্ৰত্যেক শ্লোকেই অৰ্থৰ ফালৰ পৰা স্বতন্ত্ৰ। অৰ্থবোধৰ বাবে পূৰ্বাপৰ প্ৰসঙ্গৰ অপেক্ষা নকৰে। কেশৱকৃত 'শব্দকল্পদ্ৰুমকোশ'ত মুক্তকৰ লক্ষণ নিম্নোক্ত ধৰণে দিয়া হৈছে—

বিনাকৃতং বিৰহিতং ব্যবচ্ছিন্নং বিশেষিতম্।
ভিন্নং স্যাদথ নিৰ্ব্যুহে মুক্তং যো বাতিশোভনঃ।।

অৰ্থাৎ অৰ্থবোধ আৰু ৰসাস্বাদত কোনো দ্বিতীয়ৰ অপেক্ষা নকৰাকৈ স্বয়ং সম্পূৰ্ণ সক্ষম সেয়ে হৈছে মুক্তক। নীতিশতকত এনেধৰণৰ এশতকৈও বেছি শ্লোক আছে। নীতিশতকত ভৰ্তৃহৰিয়ে স্বানুভৱসিদ্ধ বহু বিচাৰ শ্লোকৰূপে প্ৰস্তুত কৰিছে। তেওঁ শ্লোকৰ মাধ্যমত জীৱনোপযোগী নৈতিক শিক্ষা প্ৰদান কৰিছে। এই গ্ৰন্থৰ পদলালিত্য, অৰ্থগাম্ভীৰ্য আৰু দৃষ্টান্ত অত্যন্ত হৃদয়গ্ৰাহী। নীতিগ্ৰন্থ থকা সত্বেও ভৰ্তৃহৰিৰ দ্বাৰা ৰচিত অসংখ্য নৈতিক বিচাৰ বিস্ফোৰক সুভাষিত সমুচ্চয়াত্মক এই গ্ৰন্থই সংস্কৃত সাহিত্যত বিশিষ্ট স্থান অধিকাৰ কৰিছে।

নীতিশতকত উৎকৃষ্ট নৈতিক সিদ্ধান্তসমূহ প্ৰতিপাদিত হৈছে। এই সিদ্ধান্তসমূহ কোনো বিশিষ্ট জাতি-বৰ্গ-ক্ষেত্ৰ-ভাষা-সম্প্ৰদায় সম্বন্ধ নহয়। ইয়াৰ বিষয়সমূহ লোকব্যৱহাৰৰ কৌশলেৰে পৰিপূৰ্ণ। ইয়াৰ দ্বাৰা আমাৰ চাৰিত্ৰিক বিকাশ সম্ভৱ। নীতিশতকৰ বিষয়সমূহ সংসাৰৰ প্ৰগাঢ় মাৰ্মিক অনুভৱেৰে পৰিপূৰ্ণ। ব্যৱহাৰিক জগতত কি কি গুণৰ আৱশ্যক কেনেধৰণৰ জীৱনশৈলী অপেক্ষিত আদি সমীচীন ৰূপত ইয়াত নিৰূপিত কৰা হৈছে। নীতিশতক গ্ৰন্থতো ব্যক্তিৰ চাৰিত্ৰিক বিকাশৰ বাবে বিবেচিত বিষয়সমূহৰ দিঙ্মাত্ৰ নিৰূপণ কৰা হৈছে।

চীনা পৰিব্ৰাজক ইৎসিং (৬৯১-৬৯২ খ্ৰীষ্টাব্দ) তেওঁৰ ভ্ৰমণ বৃত্তান্তত এজন বৈয়াকৰণিক ভৰ্তৃহৰিৰ উল্লেখ কৰিছে, যি তেওঁৰ ভাৰত আগমনৰ চল্লিছ বছৰ পূৰ্বে প্ৰয়াত হৈছিল। এই ভৰ্তৃহৰিৰ বাক্যপদীয় গ্ৰন্থৰো উল্লেখ কৰে। বাক্যপদীয়ৰ ৰচয়িতা ভৰ্তৃহৰি আৰু নীতিশতকৰ ৰচয়িতা ভৰ্তৃহৰি একে নহয়।

ভৰ্তৃহৰিসম্বন্ধে বহুতো কিংবদন্তী শুনিবলৈ পোৱা যায়। তাৰে ভিতৰত দুটা কিংবদন্তীৰ কথা উল্লেখ কৰা হ'ল। কিংবদন্তী অনুসৰি এজন ব্ৰাহ্মণে ভৰ্তৃহৰিক এটি ফল উপহাৰ দি কয় যে ফলটি বহু উদ্দেশ্যবোধক। ফলটিৰ দ্বাৰা তেওঁৰ অশান্তি দূৰ হ'ব আৰু ৰাজ্যৰ সমৃদ্ধি বৃদ্ধি পাব। ৰজাই এই আশ্চৰ্যজনক ফলটি তেওঁৰ প্ৰিয়তমা পত্নী ৰাজমহিষীক উপহাৰ দিয়ে। ৰাজমহিষীয়ে আকৌ অন্য পুৰুষক প্ৰেম কৰে। সেয়েহে ৰাজমহিষীয়ে ফলটি নিজৰ প্ৰেমিকক দিয়ে। প্ৰেমিকে আকৌ অন্য এজনীক কামনা কৰে। সেয়েহে তেওঁ ফলটি প্ৰেমিকাক দিয়ে। প্ৰেমিকাই মনে মনে ভৰ্তৃহৰিক কামনা কৰে। সেয়েহে প্ৰেমিকাই মহামূল্যৱান ফলটি ভৰ্তৃহৰিৰ মংগল কামনা কৰি তেওঁক উপহাৰ দিয়ে। ৰজা ভৰ্তৃহৰিয়ে ফলটি পুনৰ তেওঁৰ কাষলৈ ঘূৰি অহাৰ কাৰণ অনুসন্ধান কৰি সমস্ত বৃত্তান্ত অৱগত হয় আৰু ৰাজমহিষীৰ বিশ্বাসঘাতকতাত অত্যন্ত মৰ্মাহত হ'ল। জীৱনৰ প্ৰতি ৰজাৰ মোহ লাহে লাহে কমি আহিল।

আন এক জনশ্ৰুতি অনুসৰি ৰজা ভৰ্তৃহৰিয়ে এবাৰ চিকাৰলৈ গৈ এটি দৃশ্য দেখা পায়। এজন চিকাৰীয়ে এটা হৰিণক হত্যা কৰে। হৰিণৰ শোকত সঙ্গিনী হৰিণীয়ে যথাস্থানত প্ৰাণত্যাগ কৰে। এফালে চিকাৰিজন নিজেও সৰ্পদংশনত নিহত হয়। আশ্চৰ্যজনকভাৱে চিকাৰীৰ পত্নীয়েও সেই ঠাইতেই প্ৰাণত্যাগ কৰে। ভৰ্তৃহৰিয়ে এই দৃশ্যৰ কথা তেওঁৰ পত্নী পিঙ্গলাক বৰ্ণনা কৰে। পিঙ্গলাই সকলো শুনি ৰজাক জনায় যে সতী স্ত্ৰী এইধৰণে পতিৰ শোকত প্ৰাণত্যাগ কৰে।

ৰজা ভৰ্তৃহৰিয়ে পিঙ্গলাৰ কথা শুনি এদিন চিকাৰলৈ গৈ তেওঁৰ সমস্ত বসন পশুৰ ৰক্তেৰে ৰঞ্জিত কৰি অনুচৰৰ হাত পিঙ্গলাৰ ওচৰলৈ পঠিয়াই দিয়ে আৰু জনায় যে বাঘৰ হাতত ৰজাৰ মৃত্যু হৈছে। এই কথা শুনাৰ লগে

লগে পিঙ্গলাই প্ৰাণত্যাগ কৰে। অনুচৰৰ মুখেৰে সমস্ত বৃত্তান্ত অৱগত হৈ নিজৰ কপটতাৰ গ্লানিত নিজেই দগ্ধ হৈ পৰে। সংসাৰ আৰু জীৱনৰ অসাৰতাৰ কথা উপলব্ধি কৰি গোৰখনাথ নামৰ এজন সহযোগীৰ ওচৰত তেওঁ সন্ন্যাস ধৰ্মত দীক্ষা গ্ৰহণ কৰে।

ভৰ্ত্তৃহৰি মুক্তক কাব্য পৰম্পৰাৰ অগ্ৰণী কবি আছিল। সৎ কবিৰ সকলো গুণ তেওঁৰ তিনিওখন শতক কাব্যত দেখিবলৈ পোৱা যায়। তেওঁৰ ভাষা সৰল, মধুৰ, সৰস, মনোৰম আৰু প্ৰৱাহময়। ভাবাভিব্যক্তি অত্যন্ত প্ৰভাৱোৎপাদক। ছন্দৰ বিবিধতাও তেওঁৰ গ্ৰন্থত দেখিবলৈ পোৱা যায়। ভৰ্ত্তৃহৰিৰ দ্বাৰা প্ৰযুক্ত সূক্তিসমূহ জনসমাজত প্ৰচলিত আৰু প্ৰথিত। সূক্তিসমূহত থকা উপদেশসমূহে আমাৰ জীৱনত মাৰ্গদৰ্শন কৰায়।

অধ্যয়নৰ পদ্ধতি ঃ

আলোচনা পত্ৰখন প্ৰস্তুত কৰিবৰ বাবে বৰ্ণনাত্মক পদ্ধতিৰ সহায় লোৱা হ'ব।

মূল বিষয়বস্তুৰ আলোচনা ঃ

নীতিশতকত বিষয়ৰ উপস্থাপনো অতি মনোবৈজ্ঞানিক ৰূপত কৰা হৈছে। আমি কি কৰা উচিত, কি কৰা অনুচিত, কি গ্ৰহণ কৰিব লাগে কি ত্যাগ কৰিব লাগে আদি বিবিধ প্ৰসংগৰ উপস্থাপনো তেওঁ সুন্দৰভাৱে কৰিছে। নীতিশতকত বৰ্ণিত বিষয়সমূহৰ বিভাগ এইদৰে কৰিব পৰা যায়—

(১) বিবেকৰ মূল্য (২) সজ্জন প্ৰশংসা (৩) দুৰ্জন নিন্দা (৪) মূৰ্খৰ উপহাস (৫) বিদ্যাৰ মাহাত্ম্য (৬) সদগুণ মহিমা (৭) কৰ্ম বিচাৰ।

বিবেকৰ মূল্য ঃ

এই বিশ্বত সকলো মানুহেই সুখ আৰু শান্তি ইচ্ছা কৰে। এইক্ষেত্ৰত বিবেকৰ ভূমিকা অতি গুৰুত্বপূৰ্ণ। মানুহৰ মাজত অহংকাৰ মোহাদি বহু দোষ সম্ভৱ। এনেধৰণৰ দোষৰ ফলত মানুহৰ বিবেক নষ্ট হয়। তেওঁলোকৰ মিত্ৰতাও তেনেধৰণৰ বিবেকহীন মানুহৰ লগত হয়। বিবেকহীনতাৰ ফলত তথা দুজনৰ লগত সংসৰ্গৰ ফলত মানৱীয় গুণসমূহ লোপ পায় তথা দানৱীয় গুণসমূহ উদ্ভাসিত হয়। শাস্ত্ৰান্বিত, শক্তিসম্পন্ন আৰু সৰ্বসমৰ্থ লোকেও বিবেকহীনতাৰ ফলত ধৰ্ম মাৰ্গৰ পৰা বিচলিত হৈ অধৰ্মৰ পথ অনুসৰণ কৰে। সংসাৰত ব্যক্তি যেতিয়া বিবেকভ্ৰষ্ট হয়, তেতিয়া তেনে ব্যক্তিৰ পতনৰ কোনো সীমা নাথাকে। উদাহৰণস্বৰূপে ৰাৱণ, কংস, জৰাসন্ধ, শিশুপাল, দুৰ্যোধন আদি বিবেকহীনতাৰ ফলত পতন হৈছিল। কবি ভৰ্ত্তৃহৰিয়ে গংগাৰ উদাহৰণ দি কৈছে যে গংগা প্ৰথমতে স্বৰ্গৰ নিচিনা শ্ৰেষ্ঠ তথা উচ্চ স্থানত বিৰাজমান আছিল, কিন্তু যেতিয়া পতন হ'বলৈ আৰম্ভ কৰিলে তেতিয়া গংগা স্বৰ্গৰ পৰা আহি প্ৰথমতে শিৱৰ মূৰত পৰিল, তাতো গংগা স্থিৰ হ'ব নোৱাৰিলে। শিৱৰ মূৰৰ পৰা আহি প্ৰথমতে ওখ পৰ্বতৰ শৃংগত পৰে, পৰ্বতৰ শিখৰৰ পৰা পৃথিৱীৰ ওপৰত পৰে, তাৰ পৰাও সৰ্বাধিক নিম্ন স্থান সমুদ্ৰত পৰে আৰু সমুদ্ৰত গংগাই অস্তিত্ব হেৰুৱাই পেলায়। ঠিক সেইদৰে যেতিয়া ব্যক্তি বিবেকহীন হয়, তেতিয়া সেই ব্যক্তিৰ অধিক পতন হয় আৰু শেষত গংগাৰ দৰে অস্তিত্বহীন হৈ পৰে।

শিৰঃ শাৰ্ব স্বৰ্গাৎ পশুপতি শিৰস্তঃ ক্ষিতিধৰম্
মহীধ্ৰাদুত্তুঙ্গাদবনিমবনেপি জলধিম্।।
অধোহধো গঙ্গেয়ং পদমুপগতা স্তোকমথবা
বিবেকভ্ৰষ্টানাং ভৱতি বিনিপাতঃ শতমুখঃ।।

(নীতিশতক-১০)

সজ্জন প্ৰশংসা ঃ

সজ্জন ব্যক্তিসকল পৰোপকাৰ ভাবত বদ্ধ পৰিপক্ক। আনক সহায় কৰিব পাৰিলে, তেওঁলোকে নিজৰ জীৱন ধন্য বুলি ভাবে। শত্ৰুতাৰ ফলত ক্লেশ উৎপন্ন হয়, সেইবাবে তেওঁলোকে শত্ৰুতাৰ পৰা আঁতৰত থাকে। কেতিয়াও তেওঁলোকে দ্বেষপূৰ্ণ ব্যৱহাৰ নকৰে। তেওঁলোকে আত্মপ্ৰশংসা ভাল নাপায়, কিন্তু আনৰ প্ৰশংসা কৰে। দৃষ্টি বিশালতা, মনৰ বিশালতা আৰু হৃদয়ৰ বিশালতা তেওঁলোকৰ স্বাভাৱিক গুণ। সৎ পুৰুষৰ চৰিত্ৰ নিজৰ ক্ষেত্ৰত বজ্ৰতকৈও কঠোৰ। আনৰ ক্ষেত্ৰত ফুলতকৈও কোমল।

ভৱভূতিয়ে তেওঁৰ উত্তৰ-ৰামচৰিতত কৈছে—

"বজ্ৰাদপি কঠোৰাণি মৃদুনি কুসুমাদপি।"

(উত্তৰ ৰামচৰিত, অংক-২, ৭)

সজ্জনসকলে নিজে কষ্ট সহ্য কৰিও আনৰ উপকাৰ কৰিবলৈ নেৰে। তেওঁলোকৰ আচৰণেই তেওঁলোকৰ

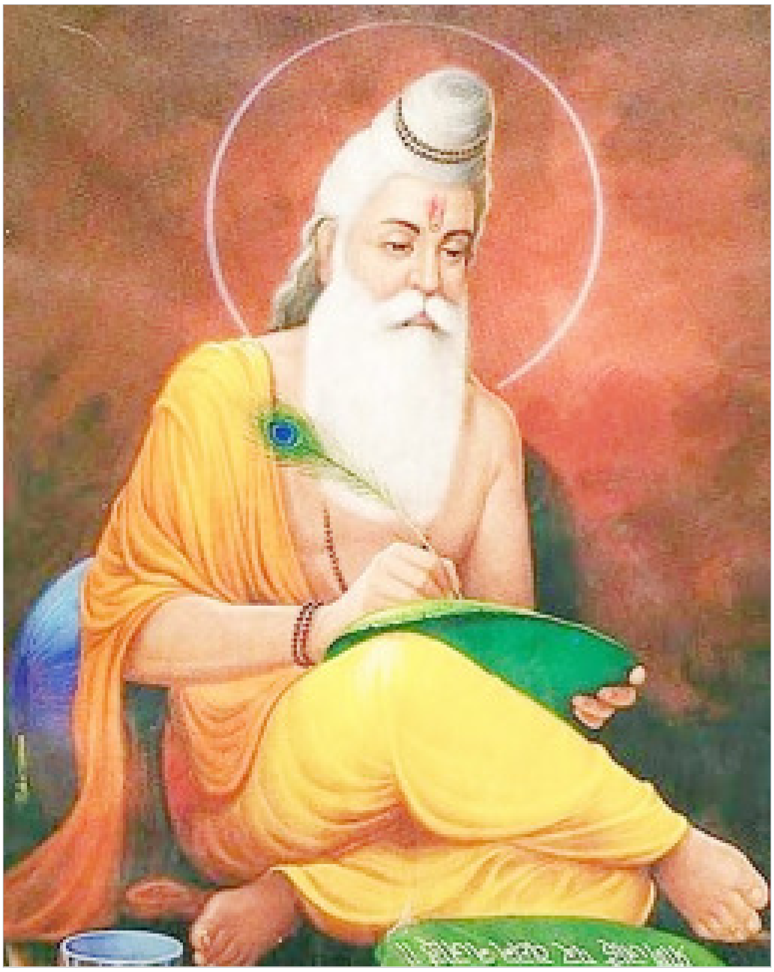

পৰিচায়ক। যাৰ অবিহনে চাৰিত্ৰিক বিকাশ সম্ভৱ নহয়। ভৰ্তৃহৰিয়ে কৈছে অসৎ মানুহৰ ওচৰত কোনো বাঞ্ছা কৰিব নালাগে, কম ধন থকা লোকৰ পৰা মিত্ৰ হ'লেও অৰ্থ বাঞ্ছা কৰিব নালাগে। নিজৰ আজীৱিকা ন্যায়মতে অৰ্জন কৰিব লাগে। সংকটত পৰিলেও নিন্দনীয় কৰ্মৰ পৰা বিৰত থাকিব লাগে, বিপদৰ সময়ত ধীৰ-স্থিৰ হৈ থাকিব লাগে আদি ক্ষুৰ ধাৰৰ দৰে তীক্ষ্ণতৰ নিয়ম কেতিয়াও ত্যাগ কৰা উচিত নহয়।

অসন্তো নাভাৰ্থ্যাঃ সুহৃদপি ন যাচ্যঃ কৃশধনঃ
প্ৰিয়া নায্যা বৃত্তিমলিনমসভঙ্গেহপ্যসুকৰম্।
বিপদ্যুচ্চৈঃ স্থেয়ং পদমনুবিধেয়ং চ মহতাং
সতাং কেনোদ্দিষ্টং বিষমমসিধাৰা ব্ৰতমিদম্।।

(নীতিশতক-২৮)

দুৰ্জন নিন্দা ঃ

সামাজিক প্ৰাণী হিচাপে মানুহে অকলৰে জীৱন যাপন কৰিব নোৱাৰে। সমাজত বিভিন্ন ধৰণৰ মানুহে বসবাস কৰে। ভৌগোলিক পৰিৱেশৰ ফলত কেৱল বিদেশতেই নহয়, ভাৰতবৰ্ষতো মানুহৰ স্বৰূপভেদ দেখিবলৈ পোৱা যায়। ব্যৱহাৰিক দিশৰ পৰা কিছুমান ব্যক্তি সজ্জন আৰু আন কিছুমান অন্যধৰণৰ। সজ্জন ব্যক্তিসকলে নিৰন্তৰ সমাজৰ অভ্যুদয় কামনা কৰে। যিসকলে উন্নতি কামনা কৰে তেওঁলোকৰ বাবে নিশ্চিতভাৱে সজ্জনৰ সংসৰ্গ প্ৰয়োজন। চাৰিত্ৰিক বিকাশত মহত্বপূৰ্ণ কথা হ'ল আমাৰ লগত থকা ব্যক্তিৰ বিষয়ে ভালদৰে জ্ঞাত হোৱা। এই সন্দৰ্ভত ভৰ্তৃহৰিৰ মাৰ্গদৰ্শন অত্যন্ত লাভদায়ক। তেওঁ উত্তম, মধ্যম আৰু অধম শ্ৰেণীৰ লোকসকলৰ স্বৰূপ নিৰূপণ কৰি চতুৰ্থ শ্ৰেণীৰ লোকসকলৰ বিষয়েও উল্লেখ কৰিছে। তেওঁৰ মতে প্ৰথম শ্ৰেণীৰ লোকসকল হ'ল সৎ পুৰুষসকল। তেওঁলোকে আনৰ হিত সাধন কৰিবলৈ নিজৰ সুখো আনন্দ মনেৰে ত্যাগ কৰে।

দ্বিতীয় শ্ৰেণীৰ ভিতৰত পৰে সাধাৰণ লোকসকল। তেওঁলোকে নিজৰ সুখ ত্যাগ নকৰাকৈ আনৰো হিত সাধন কৰে। তৃতীয় স্থানত হৈছে অধমসকল, যিয়ে আনৰ হিত নাশ কৰি নিজৰ স্বাৰ্থ সাধন কৰে। সেইবাবে তেওঁলোক সমাজত নৰৰাক্ষস নামে পৰিচিত। অন্তিম স্থানত সেইসকল ব্যক্তি আছে, যিয়ে অকাৰণত আনৰ হিত নাশ কৰে। এই প্ৰসংগত ভৰ্তৃহৰিয়ে কৈছে—

একে সৎপুৰুষাঃ পৰাৰ্থঘটকাঃ স্বাৰ্থং পৰিত্যজ্য যে
সামান্যাস্তু পৰাৰ্থমুদ্যমভৃতঃ স্বাৰ্থাহবিৰোধেন যে।
তেহমী মানুষৰাক্ষসাং পৰিহিতং স্বাৰ্থায় নিঘ্নন্তি যে

যে তু ঘ্নন্তি নিৰৰ্থকং পৰহিতং তে কেন জানিমহে।।
(নীতিশতক-৭৫)

গতিকে আমি অতি সাৱধানতাৰে মানুহৰ অভিব্যক্তি জানি লৈ ব্যৱহাৰ কৰা উচিত। ইয়াৰ দ্বাৰা বিবিধ সমস্যাৰ পৰা পৰিত্ৰাণ পাব পাৰি।

মূৰ্খৰ উপহাস ঃ

ভৰ্ত্তৃহৰিয়ে কেৱল সজ্জন তথা দুৰ্জন লোকৰেই নিৰূপণ কৰা নাই, মূৰ্খ লোকৰো আলোচনা অতি সূক্ষ্মাতিসূক্ষ্ম ৰূপত কৰিছে। সাধাৰণতে কিছুমান মানুহে নিৰক্ষৰ লোকৰ বাবে মূৰ্খ পদ ব্যৱহাৰ কৰে। সাক্ষৰ, বুদ্ধিমান তথা নিৰক্ষৰ মূৰ্খ এই ভাব সমীচীন নহয়। শাস্ত্ৰ অধ্যয়ন কৰাজনো মূৰ্খ হ'ব পাৰে। সাধাৰণতে চিন্তন ৰীতি আৰু ব্যৱহাৰৰ দ্বাৰা মানুহৰ মূৰ্খতাৰ আভাস পোৱা যায়। ভৰ্ত্তৃহৰিয়ে নীতিশতকৰ প্ৰাৰম্ভিক শ্লোকত এনেকুৱা মূৰ্খৰ লক্ষণসমূহ প্ৰকট কৰি ব্যংগাত্মক প্ৰহাৰ কৰিছে—

অজ্ঞঃ সুখমাৰাধ্যঃ সুখতৰমাৰাধ্যতে বিশেষজ্ঞঃ।
জ্ঞানলৱৰ্বিদগ্ধং ব্ৰহ্মাপি চ তং নৰং ন ৰঞ্জয়তি।।
(নীতিশতক-৩)

অৰ্থাৎ মূৰ্খ ব্যক্তিক অতি সহজে সন্তুষ্ট কৰিব পাৰি, বিশিষ্ট জ্ঞানীজনক তাতকৈয়ো বেছি সহজে সন্তুষ্ট কৰিব পাৰি, কিন্তু অলপ জ্ঞান লৈ নিজকে বিদগ্ধ পণ্ডিত বুলি ভবাজনক ব্ৰহ্মায়ো সন্তুষ্ট কৰিব নোৱাৰে। ইংৰাজীতো এষাৰ কথা আছে— 'Little knowldge is a dangerous thing.'

মূৰ্খ ব্যক্তিক সন্তুষ্ট কৰা কিমান কঠিন, এই কথা ক'বৰ বাবে কবিয়ে কৈছে— ভয়ংকৰ জলজন্তু ঘঁৰিয়ালৰ মুখগহ্বৰস্থিত দাঁত দুপাৰিৰ মাজৰ পৰা বলপূৰ্বকভাৱে মণি উদ্ধাৰ কৰিব পাৰি আন্দোলিত তৰঙ্গ ৰাশিৰ দ্বাৰা বিক্ষুব্ধ সমুদ্ৰকো সাঁতুৰি পাৰ হ'ব পাৰি, ক্ৰুদ্ধ সৰ্পকো ফুলৰ দৰে মস্তকত ধাৰণ কৰিব পাৰি, কিন্তু বিপৰীত চিন্তাসম্পন্ন মূৰ্খ ব্যক্তিৰ মনক কোনোপধ্যে প্ৰসন্ন কৰিব নোৱাৰি। ঠিক সেইদৰে অনবৰত যত্ন বা প্ৰচেষ্টাৰ ফলত মৰ্দন কৰি বালিৰ পৰাও তেল লাভ কৰিব পৰা যায়। অত্যধিক তৃষ্ণাপীড়িত ব্যক্তিয়ে মৰীচিকাৰ পৰাও জল পান কৰিব পাৰে। ভ্ৰমণ কৰি কৰি কেতিয়াবা শহাৰ শিং লাভ কৰি পাৰে, কিন্তু বিপৰীত ধাৰণাসম্পন্ন মূৰ্খ মানুহৰ চিত্তক কোনোপধ্যে সন্তুষ্ট কৰা সম্ভৱ নহয়। সকলো সমস্যাৰ সমাধান শাস্ত্ৰত উল্লেখ আছে, কিন্তু মূৰ্খতাৰ কোনো ঔষধ নাই। অসংখ্য শাস্ত্ৰ অধ্যয়ন কৰিলেও কোনেও মূৰ্খৰ সমাধান কৰিবলৈ সমৰ্থ নহয়। ভৰ্ত্তৃহৰিয়ে পুনৰ কৈছে যে জুইক পানীৰে শান্ত কৰিব পাৰি, সূৰ্যৰ তাপক (ৰ'দক) ছাতিৰে নিবাৰণ কৰিব পাৰি, মদমত্ত হাতীকো তীক্ষ্ণ অংকুশেৰে, ৰোগ-ব্যাধিক ঔষধেৰে, বিবিধ মন্ত্ৰৰে (সাপৰ) বিহকো নাশ কৰিব পাৰি— এইদৰে সকলোৰে শাস্ত্ৰবিহিত ঔষধ আছে, কিন্তু মূৰ্খতাৰ ঔষধ নাই।

শক্যো বাৰয়িতুং জলেন হুতভুচ্ছত্ৰেণ সূৰ্য্যাতপো,
নাগেন্দ্ৰো নিশিতাঙ্কুশেন সমদো দণ্ডেণ গোগৰ্দভৌ।
ব্যাধিভৈষজসংগ্ৰহৈশ্চ বিবিধৈৰ্মন্ত্ৰপ্ৰয়োগৈৰ্বিষম্
সৰ্বস্যৌষধমস্তি শাস্ত্ৰবিহিতং মূৰ্খস্য নাস্ত্যৌষধম্।।
(নীতিশতক-১১)

বিদ্যাৰ মাহাত্ম্য ঃ

মানৱ বিকাশত বিদ্যাৰ স্থান অতি গুৰুত্বপূৰ্ণ। উন্নত, শুদ্ধ আৰু সফল জীৱন লাভ কৰিবলৈ জ্ঞানৰ অত্যন্ত প্ৰয়োজন। জ্ঞান অবিহনে বিকাশৰ কল্পনা কৰিব নোৱাৰি। বিদ্যাৰ বাহিৰে জ্ঞানৰ অন্য কোনো মাৰ্গ নাই। মানুহৰ পৰম লক্ষ্য হৈছে বুদ্ধি আৰু বিবেকৰ বিকাশ কৰা। বুদ্ধি বিকাশৰ অভাৱত মনুষ্য অন্য পশুৰ দৰে নেজ আৰু শিং নথকা পশু। চিন্তন-শক্তিৰ বাবেহে মনুষ্য অন্য প্ৰাণীতকৈ শ্ৰেষ্ঠ। চিন্তন শক্তি, বুদ্ধি আৰু বিবেকৰ বিকাশ বিদ্যা অধ্যাৱসায়ৰ দ্বাৰাহে সম্ভৱ। উত্তমোত্তম গ্ৰন্থৰ অধ্যয়নৰ দ্বাৰাহে মনুষ্যই নিৰন্তৰ বাহ্যিক বিকাশ সাধন কৰিব পাৰে। সমাজত কিছুমান মানুহে নিজৰ সৌন্দৰ্যৰ প্ৰভাৱ বৰ্ধন কৰিবলৈ বহুবিধ অলংকাৰ ধাৰণ কৰে। ভৰ্ত্তৃহৰিৰ দৃষ্টিত সকলোবোৰ অলংকাৰ খন্তেকীয়া বাবে ব্যৰ্থ। বাহুৰ অলংকাৰ, চন্দ্ৰৰ দৰে উজ্জ্বল হাৰ, স্নান চন্দনৰ প্ৰলেপ, ফুলৰ মালা বা শুৱনি কেশ গুচ্ছয়ো মানুহক অলংকৃত নকৰে। লোকপ্ৰসিদ্ধ এই অলংকাৰসমূহ কালক্ৰমত বিনাশপ্ৰাপ্ত হয়। কিন্তু মানুহে আয়ত্ত কৰা সুপৰিষ্কৃত, সুসংস্কৃত বাণীহে প্ৰকৃত যুগমীয়া অলংকাৰ। এই বাণী বিদ্যাৰ দ্বাৰাই সম্ভৱ। সেইবাবে ভৰ্ত্তৃহৰিয়ে কৈছে যে বিদ্যা মানুহৰ প্ৰকৃত সৌন্দৰ্য, গুপ্ত ধন, ভোগ-ঐশ্বৰ্যৰ প্ৰদায়ক, গুৰুৰো পূজনীয়, বিদেশত বন্ধুতুল্য, সৰ্বোত্তম দেৱতা। ৰাজসভাত বিদ্যাৰ দ্বাৰাহে প্ৰতিষ্ঠা লাভ কৰা সম্ভৱ, ধনৰ দ্বাৰা লাভ কৰা সম্ভৱ নহয়।

বিদ্যা নাম নৰস্য ৰূপমধিকং প্ৰচ্ছন্নগুপ্তং ধনম্

বিদ্যা ভোগকৰী যশঃ সুখকৰী বিদ্যা গুৰূণাং গুৰুঃ।

বিদ্যা বন্ধুজনো বিদেশগমনে বিদ্যা পৰা দেৰতা

বিদ্যা ৰাজসু পূজ্যতে ন তু ধনং বিদ্যাবিহীনঃ পশু।।

(নীতিশতক-২০)

সদ্‌গুণ মহিমা ঃ

সমাজত সৎ লোকৰ ব্যৱহাৰ আদৰ্শদায়ক আৰু প্ৰশংসনীয়। তেওঁলোকৰ গুণসমূহ সকলোৱে অনুসৰণ কৰা উচিত। কোনো এজন লোকে তেওঁৰ মাজত থকা গুণ অনুসৰি আচৰণ কৰে। আচৰণৰ দ্বাৰাই তেওঁৰ চৰিত্ৰৰ বিষয়ে জনা যায়। সদ্‌গুণযুক্ত সজ্জন প্ৰতিষ্ঠা সৰ্বত্ৰ দেখিবলৈ পোৱা যায়। দুৰ্জন লোকৰ স্থান ক'তো দেখিবলৈ পোৱা নাযায়। প্ৰভূত্বকাৰণবশতঃ অথবা ধনবশতঃ কালবিশেষে অথবা স্থান বিশেষে ইচ্ছাকৃতভাৱে অথবা অনিচ্ছাকৃতভাৱে দুৰ্জনে সন্মান লাভ কৰিলেও কিন্তু অৱশেষত অপমানিত হয়। দুৰ্জনক কোনেও বিশ্বাস নকৰে। সুখ-শান্তি লাভৰ বাবে আমি সকলোৱে পৰমাত্মাৰ জ্ঞান লাভ কৰা ভক্তৰ সদ্‌গুণসমূহ আহৰণ কৰিব লাগে। ভৰ্ত্তৃহৰিৰ মতানুযায়ী জীৱ হত্যাৰ পৰা দূৰত থকা, আনৰ ধন হৰণৰ পৰা মনক সংযত কৰা, সত্যবাদিতা, যথা সময়ত যথাশক্তি দান কৰা, পৰস্ত্ৰীৰ চৰ্চা কৰাৰ সময়ত মৌনতা অৱলম্বন কৰা, লোভৰ প্ৰৱাহক প্ৰতিৰোধ কৰা সকলো প্ৰাণীৰ প্ৰতি দয়াভাব দেখুওৱা, এইবোৰেই শাস্ত্ৰৰ অনুপহত বিধান আৰু সৰ্বজন কল্যাণকৰ পথ অথবা মাৰ্গ প্ৰস্তুত কৰে—

প্ৰাণঘাতান্নিবৃত্তিঃ পৰধনহৰণে সংযমঃ সত্যবাক্যং

কালে শক্ত্যা প্ৰদানং যুবতিজনকথামূকভাৱঃ পৰেযাম্।

তৃষ্ণাস্ৰোতো বিভাঙ্গা গুৰুষু চ বিনয়ঃ সৰ্বভূতানুকম্পা

সামান্যঃ সৰ্বশাস্ত্ৰেস্বনুপহতবিধিঃ শ্ৰেয়সামেষ পন্থাঃ।।

(নীতিশতক-২৬)

কৰ্মবিচাৰ ঃ

ভাৰতীয় দৰ্শনত পুৰুষাৰ্থ চতুষ্টয়ৰ মূল আধাৰ হ'ল কৰ্ম। মানুহে কৰ্মৰ বলত সকলো প্ৰকাৰ সিদ্ধি লাভ কৰে। কৰ্ম নকৰাকৈ কোনো মানুহে অভীষ্ট ফল লাভ কৰিব নোৱাৰে। কৰ্মৰ ফলতেই সজ্জনসকল সদায় প্ৰশংসিত হয় আৰু দুৰ্জ্জনসকল নিন্দিত হয়। ব্যাসদেৱে কৈছে—

না ভুক্তং-ক্ষীয়তে কৰ্ম কল্পকোতিশতৈৰপি।

অৱশ্যমেব ভোক্তব্যং কৃতং কৰ্ম শুভাশুভম্।।

প্ৰকৃতাৰ্থত আমি নিজৰ কৰ্মক নিয়ন্ত্ৰিত কৰিব পাৰোঁ, কিন্তু ফল নিয়ন্ত্ৰিত কৰিব নোৱাৰোঁ। যিহেতু ফলত কাৰো অধিকাৰ নাথাকে। শ্ৰীমদ্ভাগৱদগীতাতো কোৱা হৈছে— “কৰ্মণ্যেবধিকাৰস্তে মা ফলেষু কদাচন।”

ভৰ্ত্তৃহৰিয়ে কৰ্মৰ মাহাত্ম্য বিস্তাৰিতভাৱে প্ৰকাশ কৰিছে। তেওঁৰ মতে বিধাতাও মানুহৰ কৰ্ম অনুসৰি ফল দান কৰে। বিধাতাই কৰ্ম নকৰাকৈ কাকো ফল নিদিয়ে। যিহেতু কৰ্ম বিধাতাৰ অপেক্ষা বলবান। কৰ্মৰ দ্বাৰাই সম্পূৰ্ণ জগত নিয়ন্ত্ৰিত হয়। কৰ্মৰ ফলতেই ব্ৰহ্মাণ্ড কুমাৰৰ দৰে সৃষ্টিকৰ্মত লাগিবলগীয়া হৈছিল, বিষ্ণুও দশাৱতাৰৰ শৃংখলাত জোট-পোট খাবলগীয়া হৈছিল, শংকৰে হাতত ভিক্ষাপাত্ৰ লৈ ঘূৰিবলগীয়া হৈছিল আৰু সূৰ্যও প্ৰতিদিনে অক্লান্ত ৰূপে ভ্ৰমণ কৰিবলগীয়া হৈছিল। হে সাধু! যি কৰ্মই দুষ্টক সাধু কৰে, মূৰ্খক বিদ্বান কৰে, বিদ্বেষীজনক হিতৈষী কৰে, আগত নেদেখাজনক দেখা কৰে, বিষক অমৃতত পৰিণত কৰে, বাঞ্ছিত ফল ভোগ কৰিবলৈ হ'লে ভগৱতীৰ সৎক্ৰিয়াক আৰধনা কৰা মানুহৰ বুদ্ধিও ক্ৰমানুসৰি হয়, সেয়েহে বুদ্ধিমান লোকক নিৰন্তৰ কৰ্মৰ ফল সম্পৰ্কে চিন্তা কৰি আৰু ভালদৰে বিচাৰ-বিবেচনা কৰি কৰ্ম কৰা উচিত। নহ'লে বৰ বেগেৰে আৰু অবিবেকেৰে কৰা কামৰ পৰিণামে আমৰণ আজীৱন হৃদয়ক দগ্ধ কৰিব পাৰে—

গুণবদগুণৱদ্বা কুৰ্বতা কাৰ্যমাদৌ

পৰিণতিৰবধাৰ্যা যত্নতঃ পণ্ডিতেন।

অতিৰভসকৃতানাং কৰ্মণামাৰিপত্তে

ভৱতি হৃদয়গ্ৰাহী শল্যতুল্যো বিপাকঃ।।

(নীতিশতক-৯৯)

উপসংহাৰ ঃ

চাৰিত্ৰিক বিকাশৰ মাৰ্গ দৰ্শনৰ প্ৰাচুৰ্য সংস্কৃত সাহিত্যত দেখিবলৈ পোৱা যায়। কাব্যত বিশেষকৈ তথা নাটকত সদাচাৰপূৰ্ণ অনেক তথ্য পোৱা যায়। কিন্তু ভৰ্ত্তৃহৰিৰ নীতিশতকত মনুস্মৃতি সদৃশ শিক্ষা, মহাভাৰত সদৃশ উপদেশ, পুৰাণ সদৃশ ৰসাস্বাদন, দৰ্শন সদৃশ তৰ্কশীলতা দেখিবলৈ পোৱা যায়। আনহাতে কালিদাসৰ উপমা, দণ্ডিৰ পদলালিত্য আৰু ভাৰবিৰ অৰ্থগাম্ভীৰ্যও

পোৱা যায়। মানৱৰ বাবে নীতিশতকখন হৈছে মধুৰ ঔষধ। বালক, বৃদ্ধ সকলোৱে বিনাকষ্টে তথা আনন্দৰে নীতিশতকৰ বাণীসমূহ পান কৰিব পাৰে। ভৰ্ত্তৃহৰিয়ে নীতিশতকৰ মাধ্যমত এক বিশিষ্ট জীৱন দৰ্শন প্ৰদান কৰিছে। নীতিশতকৰ পদ্যসমূহে প্ৰতিটো খোজতে আমাক প্ৰহৰী ৰূপত জাগৰিত কৰি যোগ্য পথলৈ আনি দিব্য আৰু ভব্য জীৱন যাপন কৰিবলৈ প্ৰেৰিত কৰে। এই গ্ৰন্থখন কেৱল সংস্কৃতজ্ঞসকলৰ বাবেই নহয়, সকলোৰে বাবেই হৈছে প্ৰিয়তম কণ্ঠাভৰণ। নীতিশতকখনে ছাত্ৰসকলক, ব্ৰহ্মচাৰীসকলক, সন্ন্যাসীসকলক, গৃহস্থসকলক, জৈন-বৌদ্ধ আদি তথা আন লোককো সমৰূপত মাৰ্গ দৰ্শন কৰাই তেওঁলোকক উন্নতিৰ উচ্চ শিখৰলৈ লৈ যায়। ইয়াৰ দ্বাৰা মানুহে নিজৰ দায়িত্ব জানি লৈ কৰ্তব্যপৰায়ণ হয়। তাৰ ফলত চাৰিত্ৰিক বিকাশৰ লগতে সমাজৰ, দেশৰ, ৰাষ্ট্ৰৰ আৰু বিশ্বৰ বিকাশ সাধন কৰিব পাৰে। ❑

সহায়ক গ্ৰন্থ ঃ

১. জানা সুনীল কুমাৰ ঃ কাব্যপ্ৰকাশ, সংস্কৃত বুক ডিপো, ২৮/১ বিধান সৰণী, কলকাতা-৬ জানুৱাৰী-২০২১

২. বেপাৰী ড° বিপুল চন্দ্ৰ ঃ নীতিশতক, Concept Publishing Company Pvt. Ltd., New Delhi-110059, 2020.

৩. শৰ্মা ড° থানেশ্বৰ ঃ ভৰ্ত্তৃহৰিৰ নীতিশতক, অসম প্ৰকাশন পৰিষদ, গুৱাহাটী-২১, ২০২০

৪. শাস্ত্ৰী ডা° ৰাকেশ ঃ নীতিশতক, পৰিমল পাব্লিকেশন, দিল্লী-১১০০০৭, ২০২২

৫. শৰ্মা ডা° গোপাল ঃ নীতিশতকম্, হংসা প্ৰকাশন, জয়পুৰ, ২০০২

৬. আনন্দস্বৰূপ ঃ উত্তৰামচৰিতম্ ঃ মোতীলাল বনাৰসী দাস, দিল্লী, ২০০২

৭. মিশ্ৰ প° শ্ৰীবিজয়শঙ্কৰ ঃ নীতিশতকম্, চৌখম্বা সংস্কৃত সীৰিজ আফিস, বাৰানসী, ২০১৯

৮. প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ, শ্লোক সংখ্যা-১০, পৃষ্ঠা সংখ্যা-৮

৯. প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ, শ্লোক সংখ্যা-২৮, পৃষ্ঠা সংখ্যা-২৩

১০. প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ, শ্লোক সংখ্যা-৭৫, পৃষ্ঠা সংখ্যা-৬০

১১. প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ, শ্লোক সংখ্যা-৩, পৃষ্ঠা সংখ্যা-৩

১২. প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ, শ্লোক সংখ্যা-১১, পৃষ্ঠা সংখ্যা-৯

১৩. প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ, শ্লোক সংখ্যা-২০, পৃষ্ঠা সংখ্যা-১৬

১৪. প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ, শ্লোক সংখ্যা-২৬, পৃষ্ঠা সংখ্যা-২২

১৫. প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ, শ্লোক সংখ্যা-৯৯, পৃষ্ঠা সংখ্যা-৮১

প্ৰসংগ সূত্ৰ ঃ

বিশ্বেশ্বৰ আচাৰ্য, কাব্যপ্ৰকাশ, জ্ঞানমণ্ডল লিমিটেড, বাৰানসী ১৯৬০

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

প্ৰবন্ধ

পদ্মৰাম শালৈৰ 'শালৈ জাতিৰ ঐতিহ্য বিচাৰ'ৰ এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন

ভনিতা বৈশ্য

গৱেষক ছাত্ৰী
আধুনিক ভাৰতীয় ভাষা আৰু সাহিত্য
অধ্যয়ন বিভাগ
গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয়, অসম
৯৮৫৪৯৮৭৬৭৩
bhanitabaishya193@gmail.com

ড° জ্যোৎস্না ৰাউত

অধ্যাপক
আধুনিক ভাৰতীয় ভাষা আৰু সাহিত্য
অধ্যয়ন বিভাগ
গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয়, অসম
ম'বাইল ঃ ৯৭০৬৮৮০০৮৮

সংক্ষিপ্তসাৰ ঃ

অসমৰ সাহিত্যিকসকলৰ ভিতৰত পদ্মৰাম শালৈ এগৰাকী উল্লেখযোগ্য সাহিত্যিক। তেওঁ শিক্ষকতাৰ সমান্তৰালভাৱে সাহিত্যচৰ্চা, সাংবাদিকতা, সমাজ সেৱাৰ জৰিয়তে অসমীয়া সমাজ জীৱনলৈ গুৰুত্বপূৰ্ণ বৰঙণি আগবঢ়াই গৈছে। প্ৰাঞ্জল ভাষাত ৰচিত তেওঁৰ ৰচনাৰ আলোচনা সততে দেখিবলৈ পোৱা নাযায় যদিও সেইসমূহৰ এক বিশেষ মূল্য আছে। তেওঁ ভক্তিধৰ্মমূলক, প্ৰাচ্য-পাশ্চাত্যমূলক, দেশপ্ৰেমমূলক, অনুবাদমূলক, আত্মজীৱন চৰিত, জাতীয় ঐতিহ্য বিচাৰমূলক ইত্যাদি বিভিন্ন বিষয়ক গ্ৰন্থ লেখি অসমীয়া সাহিত্যৰ ভঁৰাল সমৃদ্ধ কৰি গৈছে। জাতীয় চেতনাৰে উদ্বুদ্ধ শালৈয়ে নিজৰ স্বকীয় অস্তিত্ব ৰক্ষাৰ স্বাৰ্থতে জাতীয় ঐতিহ্য বিচাৰমূলক গ্ৰন্থ ৰচনা কৰি গৈছে। সেই শ্ৰেণীৰ প্ৰকাশিত গ্ৰন্থ দুখন হ'ল 'শালৈ জাতিৰ ঐতিহ্য বিচাৰ' আৰু 'শালৈ সন্মিলনৰ সভাপতিৰ অভিভাষণ'। আমাৰ এই আলোচনা-পত্ৰত 'শালৈ জাতিৰ ঐতিহ্য বিচাৰ' গ্ৰন্থখনৰ জৰিয়তে শালৈ জাতিৰ আঁতিগুৰি, বৰ্তমান অসমীয়া সমাজত তেওঁলোকৰ স্থিতি সম্পৰ্কে বিচাৰ কৰাৰ প্ৰয়াস কৰা হৈছে।

বীজ শব্দ ঃ

শালৈ জাতি, ঐতিহ্য, সংস্কৃতি, অসমীয়া জাতি, মিষ্টান্ন, চাৰি বৰ্ণ, হিন্দু, ইণ্ডো-আৰ্য, শূদ্ৰ।

০.০ অৱতৰণিকা ঃ

অসমৰ ভাষা-সাহিত্য-সংস্কৃতিৰ অন্যতম পুৰোধা ব্যক্তি হ'ল পদ্মৰাম শালৈ। হিন্দী, ইংৰাজী, অসমীয়া, সংস্কৃত, বাংলা ভাষাত থকা দখল তথা নিজৰ আশাশুধীয়া প্ৰচেষ্টাৰে তেওঁ অসমীয়া সাহিত্যৰ পৰিপুষ্টি সাধন কৰি গৈছে। সাহিত্যিক হিচাপে তেওঁৰ প্ৰকাশিত প্ৰথমখন গ্ৰন্থ হ'ল 'শ্বহীদ বীৰ মুকুন্দ কাকতি'। পৰৱৰ্তী সময়ত প্ৰকাশ হোৱা ৰচনাসমূহ হ'ল—প্ৰাচ্য-পাশ্চাত্যৰ সাহিত্যত এভুমুকি, অসমৰ শোষণকাৰী কোন?, শালৈ জাতিৰ ঐতিহ্য বিচাৰ, ইংৰাজী ৰোমান্টিক কাব্য-সাহিত্যৰ জিলিঙনি, বিয়াল্লিছৰ তিনিগৰাকী শ্বহীদ, ভক্তি ধৰ্ম আৰু ভক্তি কাব্যত এভুমুকি, ৰমন্যাসিক কবি

ৰঘুনাথ চৌধাৰী, চাকনৈয়াত হাবু-ডুবু, ট্ৰজান যুদ্ধ ইত্যাদি। ১৯৩০ চনৰ ৩ ছেপ্তেম্বৰত ৰঙিয়াৰ চনমাগুৰি গাঁৱত জন্ম গ্ৰহণ কৰা পদ্মৰাম শালৈৰ পিতৃ-মাতৃ আছিল দেবীৰাম শালৈ আৰু ৰাধিকা শালৈ। তেওঁ পেছা হিচাপে শিক্ষক বৃত্তিটো বাছি লৈছিল যদিও মৃত্যু পৰ্যন্ত সাহিত্যচৰ্চা অব্যাহত ৰাখিছিল। আমাৰ গৱেষণা-পত্ৰত পদ্মৰাম শালৈৰ অন্যতম গৱেষণাধৰ্মী গ্ৰন্থ 'শালৈ জাতিৰ ঐতিহ্য বিচাৰ'ৰ পুংখানুপুংখভাৱে আলোচনা আগবঢ়োৱা হ'ব।

০.০১ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য ঃ

বহুমুখী প্ৰতিভাৰ গৰাকী পদ্মৰাম শালৈৰ এখন উল্লেখযোগ্য গৱেষণাধৰ্মী গ্ৰন্থ হৈছে শালৈ জাতিৰ ঐতিহ্য। লেখকে বিভিন্ন উৎসৰ আলম লৈ নিজৰ জাতি সম্পৰ্কে বিভিন্ন কথা গ্ৰন্থখনত সাৱলীল তথা মনোগ্ৰাহীকৈ ব্যাখ্যা কৰিছে। গতিকে এই গ্ৰন্থ সম্পৰ্কীয় আলোচনাটিৰ জৰিয়তে শালৈ জাতিৰ লগত জড়িত অনেক নজনা কথাৰ সন্ধেদ দিয়াটোৱেই ইয়াৰ উদ্দেশ্য।

০.০২ অধ্যয়নৰ পদ্ধতি ঃ

বিষয়টো অধ্যয়ন কৰোঁতে বৰ্ণনামূলক (Descriptive Method) তথা বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতিৰ (Analytical Method) সহায় লোৱা হৈছে। প্ৰাথমিক তথ্য সংগ্ৰহৰ বাবে উপেন্দ্ৰজিৎ শৰ্মাৰ দ্বাৰা সম্পাদিত পদ্মৰাম শালৈৰ ৰচনাৱলীৰ সহায় লোৱা হৈছে। লগতে বিষয়ৰ লগত সংগতি থকা বিভিন্ন গ্ৰন্থৰ আলমত গৌণ তথ্য সংগ্ৰহ কৰা হৈছে।

১.০০ মূল বিষয়বস্তু ঃ

শালৈ জাতি অসমৰ অন্যান্য পিছপৰা সম্প্ৰদায়ৰ অন্তৰ্গত এটা জাতি। থলুৱা অসমীয়া শালৈসকল কেতিয়া কেনেকৈ অসমত থিতাপি লৈছে তাৰ বিশদ বিৱৰণ ইয়াত উল্লেখ আছে। লেখকে গ্ৰন্থখনৰ পাতনিত উল্লেখ কৰিছে যে এসময়ত মেকুৰী নামৰ এটা জাতি আছিল। কিন্তু সেই জাতিৰ লোকসকলে নিজেই নিজৰ পৰিচয় দিবলৈ সংকোচ কৰাৰ ফলতে হয়তো কোনো উচ্চ জাতিৰ লগত চামিল হ'ল বুলি তেওঁ কৈছে। ঠিক তেনেদৰে শালৈ জাতিৰ জনসংখ্যা ১৮৮১ চনৰ লোকপিয়ল অনুসৰি ১২,০৯৩ জন আছিল যদিও সময় বাগৰাৰ লগে লগে এই সংখ্যা হ্ৰাস পাই ১৮৯১ চনত ৯,৩৫৬ জন হৈছিলগৈ।[১] ইয়াৰ কাৰণ হিচাপে ১৮৯১ চনৰ লোকপিয়লৰ প্ৰতিবেদনত এনেদৰে উল্লেখ আছে—I am unable to explain this Variation and can only suggest that some of the salais of 1881 have since succeeded in obtaining recognition as members of higher castes.[২]

সেয়েহে শালৈ জাতিৰ লোকসকলৰ পৰিচয়ৰ ক্ষেত্ৰত দেখা দিয়া এনে অসুবিধাৰ কথা অনুভৱ কৰি সদৌ অসম শালৈ সন্মিলনীয়ে শালৈ জাতিৰ ঐতিহ্যমূলক গ্ৰন্থ এখন ৰচনা কৰাৰ উদ্যোগ হাতত লৈছিল। শালৈ সন্মিলনীৰ বিশেষ অধিৱেৰ্তন উপলক্ষে পদ্মৰাম শালৈক এই গ্ৰন্থ লেখাৰ দায়িত্ব অৰ্পণ কৰা হৈছিল।

গ্ৰন্থখনত উল্লেখ থকা শালৈ জাতি সম্পৰ্কে আলোচনা কৰাৰ আগতে ভাৰতীয় আৰ্যসকলৰ বিষয়ে কিছু কথা উল্লেখ কৰা হ'ল।

বৈদিক সাহিত্যৰ জৰিয়তে ভাৰতীয় আৰ্যসকলৰ বিষয়ে বিভিন্ন কথা গম পোৱা যায়। ঋকবেদৰ শ্লোক অনুসৰি সৃষ্টিকৰ্তাৰ মুখৰপৰা ব্ৰাহ্মণৰ, বাহুৰপৰা ক্ষত্ৰিয়ৰ, উৰুৰপৰা বৈশ্যৰ আৰু ভৰিৰপৰা শূদ্ৰৰ জন্ম হয়। ইয়াৰ সৃষ্টিকৰ্তাৰ মুখ, বাহু, উৰু আৰু ভৰি গুণ বা বৃত্তি বিষয়ক ৰূপকহে। ব্ৰাহ্মণসকলে মুখৰ শক্তিৰে যাগ-যজ্ঞ, পূজা-পাতল আদি কৰিব সকলোৰে মঙ্গলৰ কাৰণে, ক্ষত্ৰিয়ই বাহুৰ বলেৰে ৰাজ্য শাসন আৰু বাহিৰা শত্ৰুৰ পৰা প্ৰজাসকলক ৰক্ষা কৰিব, উৰুৰ শক্তিৰে বৈশ্যসকলে বেহা-বেপাৰ কৰি ৰাজ্যৰ আৰ্থিক সাধিব আৰু ভৰিৰ শক্তিৰে শূদ্ৰসকলে খেতি-বাতি কৰি উৎপাদন বঢ়াব।[৩] এনেধৰণে ভাৰতীয় আৰ্য লোকসকলৰ মাজত চাৰিবৰ্ণৰ সৃষ্টি হৈছিল। সমগ্ৰ উত্তৰ ভাৰতত আৰ্যলোকসকল সিঁচৰতি হৈ পৰাৰ পাছত বিভিন্ন কাম-কাজ নিয়াৰিকৈ পালন কৰাৰ উদ্দেশে মানুহৰ গুণ আৰু কৰ্মশক্তি অনুসৰি বৰ্ণবোৰ উদ্ভৱ হোৱা বুলি ঋকবেদৰ জৰিয়তে জানিব পৰা যায়। ব্ৰাহ্মণ, ক্ষত্ৰিয় আৰু বৈশ্য ভাৰতীয় আৰ্যগোষ্ঠীৰ বংশধৰ বুলি আমি পূৰ্বতে উল্লেখ কৰি আহিছোঁ। এই ভাৰতীয় আৰ্য লোকসকল সমগ্ৰ ভাৰতত সিঁচৰতি হোৱাৰ পিছত যিসকল থলুৱা লোকে তেওঁলোকৰ শৰণাগত হৈ পৰিছিল, সেইসকলক শূদ্ৰ বুলি জনা যায়। সময়ক্ৰমে ব্ৰাহ্মণৰ বাদে ক্ষত্ৰিয়, বৈশ্য, শূদ্ৰৰ মাজত বৃত্তি অনুযায়ী ভিন ভিন জাতিৰ উৎপত্তি হৈছিল।

শালৈয়ে আলোচ্য গ্ৰন্থখনৰ আৰম্ভণিতে চৌত্ৰিশটা জাতিৰ সুসমন্বয়ৰে অসমীয়া সমাজ সংস্কৃতি গঢ়ি উঠা বুলি মহেশ্বৰ নেওগে কোৱা কথাষাৰ উনুকিয়াইছে। লগতে শালৈ জাতিটোও এই চৌত্ৰিশটা জাতিৰ ভিতৰৰ অন্যতম বুলি জানিব পৰা যায়।[৪] বিভিন্ন উৎসৰ জৰিয়তে অতীজৰে পৰা

অসমত নানা জাতি--জনজাতি বাস কৰি অহাৰ বিষয়ে গম পোৱা যায়। অসমীয়া সাহিত্যৰ দুগৰাকী পুৰোধা ব্যক্তি শংকৰদেৱ আৰু মাধৱদেৱৰ গ্ৰন্থাৱলী তথা চৰিত পুথিসমূহতো বিভিন্ন জাতিৰ কথা উল্লেখ আছে। শালৈয়ে শংকৰদেৱৰ ভাগৱত পুৰাণৰ দ্বিতীয় স্কন্দৰ দ্বিতীয় অধ্যায়ৰ শ্লোকটো উল্লেখ কৰি সেই সম্পৰ্কে জানিবলৈ মহেশ্বৰ নেওগৰ 'পুৰণি অসমীয়া সমাজ আৰু সংস্কৃতি'ৰ সহায় লৈছে। শ্লোকটিৰ মূলতঃ উল্লেখ থকা 'হূণ', 'অন্ধ্ৰ', 'পুলিন্দ', 'পুক্কস', 'আভীৰ', 'খশ' আদি জাতিৰ নামৰ পৰিৱৰ্তে কিৰাত, কছাৰী, খাছী, গাৰো, মিৰি, গোৱাল, চণ্ডাল (চঁড়াল), ৰজক (ধোবা)- অসমীয়া জাতিৰ নাম শংকৰদেৱে ব্যৱহাৰ কৰিছে। কিন্তু তাত উল্লিখিত 'কঙ্ক' আৰু 'মুলুক' শব্দ দুটিৰ সম্পৰ্কে মহেশ্বৰ নেওগে কোৱাৰ দৰে শালৈয়েও একো ক'ব নোৱাৰিলে। আন এটি শব্দ 'যৱন'ৰ অৰ্থ স্পষ্টকৈ বুজা টান বুলি নেওগে কৈ 'যোগিনী তন্ত্ৰ'ত যৱন নামে এজাতি লোকৰ উল্লেখ আছে বুলি তেওঁ মন্তব্য কৰিছে।[৫] যৱন শব্দটিৰ অৰ্থ হেমকোষ অভিধানত এনেদৰে আছে—ভাৰতৰ বাহিৰৰ লোক। যৱন শব্দই গ্ৰীকসকলক বুজাইছিল।[৬] তাৰ উপৰি 'অসম'ৰ দ্বাৰা আহোমক, 'তুৰক'ৰ দ্বাৰা মুছলমানক 'কুৱাচ'ৰ দ্বাৰা কোচক, 'ম্লেছ'ৰ দ্বাৰা মেচ জাতিক বুজোৱা হৈছে বুলি নেওগে উল্লেখ কৰিছে। নেওগে মন্তব্য কৰা চৌত্ৰিশটা জাতিৰ ভিতৰত উল্লিখিত এই জাতিকেইটাৰো পুৰণি অসমীয়া সংস্কৃতি গঢ়ি তোলাত অৱদান থকা বুলি শালৈয়ে মত ব্যক্ত কৰিছে।

শালৈয়ে 'দৰং ৰাজবংশাৱলী'ৰ তথ্য দাঙি ধৰি কৈছে যে কালাপাহাৰে কামাখ্যা মন্দিৰ ধ্বংস কৰাৰ পিছত কোচৰজা নৰনাৰায়ণে কামাখ্যা মন্দিৰ পুনৰ নিৰ্মাণ কৰি উলিয়ায়। ৰজা নৰনাৰায়ণে ভায়েক চিলাৰায়ৰ সৈতে মন্দিৰত পূজা-অৰ্চনা কৰাই ম'হ, ছাগলী, হাঁহ, পাৰ, কাছ, হৰিণ আদিৰ একলাখ বলি আৰু তিনিলাখ হোম দিয়াৰ লগতে মন্দিৰৰ কাম-কাজ সুচাৰুৰূপে পালন কৰিবলৈ সাত কুড়ি পাইক পৰিয়াল আনিছিল। শালৈসকল এই পৰিয়ালৰ অন্তৰ্গত আছিল। শালৈৰ বাহিৰে তাত উল্লিখিত ব্ৰাহ্মণ, তাঁতী, মালী, কমাৰ, সোণাৰী আদি অন্যান্য জাতিবোৰ বৃত্তিগত বুলি জানিব পৰা যায়। যিহেতু জাতি নৃ-গোষ্ঠীগত, বৃত্তিগত, ভাষাগত, দায়িত্বমূলক ইত্যাদি বিভিন্ন বিষয়ক হ'ব পাৰে। কিন্তু বংশাৱলীখনত লেখকে শালৈসকলৰ বৃত্তি সম্পৰ্কে উল্লেখ নথকা বুলি কৈছে। আনহাতে ইতিহাসবিদ কনকলাল বৰুৱাই 'দৰং ৰাজবংশাৱলী'ত উল্লিখিত জাতিকেইটা Early History of Kamrupaত এনেদৰে উল্লেখ কৰিছে —

"the king offered three lakhs of hom and one lakh sacrifices and dedicated to the temple the families of 140 paiks, for service in the temple, by means of a copper-plate grant....the king gave as she baits or paiks families of Brahmans Ganaks, Nats, Bhats, Tanties, Malis, Kamars, Kahars, Barhoi (Carpenters), washermen, Oil Pressers, Sweet-meat makers, gold-smiths, potters, leather-workers, Fishermen and Scavangers. Evidently these constituted the 140 families of paiks." ৭

তেখেতৰ আন এখন গ্ৰন্থ 'Studies in The Early History of Assam' ত এনেদৰে দিয়া আছে—

"The subsequent stanzas mention that these *paiks* included men of the following castes or professional groups, *viz.*, Brahman, Daivajna, Nat (dancer), Bhat (singer), Tantis (weaver), Mali (garland-maker), Kamar (blacksmith), Kahar (bell-metal worker), Barhai (carpenter), Dhoba (washerman), Salai (sweet-meat-maker). Teli (oil-presser), Sonari (gold-smith), Kumar (potter, who uses the wheel), Hira (potter, who does not use the wheel), Kaivarta (fisherman), Chamar (one who skins a dead animal), Muchiyar (leather-worker) and Hadi (scavenger)".[৮]

গ্ৰন্থখনত প্ৰত্যেকটো জাতিৰ নাম উল্লেখ কৰি বন্ধনীৰ ভিতৰত দিয়া অৰ্থৰ জৰিয়তে জাতিটোৰ বৃত্তি সম্পৰ্কে জানিব পৰা যায়। গ্ৰন্থখনত 'Salai' শব্দটি উল্লেখ কৰি (Sweet-meat-maker) বুলি অৰ্থ দিয়া আছে। ইয়াৰ অসমীয়া অৰ্থ হৈছে 'মিষ্টান্ন তৈয়াৰ কৰোঁতা'। শালৈয়ে এই গ্ৰন্থখনত উল্লেখ কৰা জাতিকেইটা 'দৰং ৰাজবংশালী'ত উল্লেখ কৰা জাতিকেইটাৰ সৈতে মিলাই চালে একে হয় বুলি কৈছে। সেয়ে তেওঁ শালৈ জাতিৰ লোকসকলে ভোগ ৰান্ধিছিল অথবা তেওঁলোকে তৈয়াৰ কৰা মিষ্টান্ন দেৱীৰ প্ৰসাদ হিচাপে ব্যৱহাৰ হৈছিল বুলি মন্তব্য কৰিছে। উল্লিখিত সাতকুড়ি পৰিয়ালকেইটা ৰজা নৰনাৰায়ণে ক'ৰ পৰা আৰু কেনেদৰে সংগ্ৰহ কৰি আনিছিল সেই বিষয়ে প্ৰশ্ন তুলি লেখকে নিজেই সমাধান কৰাৰ চেষ্টা কৰিছে। বিভিন্ন পণ্ডিতে ভাৰতত ইণ্ডো আৰ্যৰ প্ৰৱেশকাল প্ৰায় খৃঃ ১২০০ বুলি

অনুমান কৰে।[৯] সেয়ে লেখকে ইতিহাসৰ গাত ভেজা দি অসমত ব্ৰাহ্মণ মানুহ আগৰপৰাই থকাৰ কথা কৈছে লগতে অসমত থকাৰ ক্ষেত্ৰত অন্য জাতিকেইটাৰ ইতিহাস স্পষ্ট নহয় বুলি উল্লেখ কৰিছে।

শালৈ জাতিৰ লোকসকল প্ৰথম অৱস্থাত অবিভক্ত কামৰূপ আৰু মঙ্গলদৈ অঞ্চলতহে বাস কৰিছিল আৰু এই দুই অঞ্চলৰ পৰাই বৰ্তমান অসমৰ ভিন ভিন ঠাইত সিচঁৰতি হৈ পৰিছে বুলি কৈছে। এনেদৰে মহাৰাজ নৰনাৰায়ণে পশ্চিমৰ পৰা ভিন ভিন বৃত্তিৰ পৰিয়ালৰ উপৰি শালৈ উপাধিৰ পৰিয়ালকেইটা কামাখ্যা মন্দিৰৰ আশে-পাশে বহুৱাইছিল বুলি লেখকে অনুমান কৰিছে। প্ৰসংগক্ৰমে বিহাৰৰ সাও জাতিটোৰ পূৰ্বপুৰুষ ‘শালৈ’ আছিল বুলি কৈ নৰনৰায়ণে সালৈ কেইঘৰমান অসমলৈ আনিছিল বুলি অভিমত প্ৰকাশ কৰিছে। এওঁলোক অৰ্থাৎ সাও লোকসকলৰ (বহুতে সাহু বুলিও লিখে) প্ৰধান ব্যৱসায় মিঠাই প্ৰস্তুত কৰাটো আজিকোপতি চলি থকা বুলি শালৈয়ে উল্লেখ কৰিছে। এওঁলোকৰ পূৰ্বপুৰুষসকল ৰাজঘৰীয়া মিঠাই যোগানধাৰী আছিল বুলি জনা যায়। গতিকে বিভিন্ন কাৰণত যেনেদৰে ম্লেছ>মেছলৈ পৰিৱৰ্তিত হ’ল, তেনেদৰে সালৈ > সাও > সাহু হ’ব পাৰে বুলি লেখকে আনুমানিক ৰূপ প্ৰকাশ কৰিছে।

ভাৰতৰ বহুতো ঠাই ভ্ৰমণ কৰি সমল গোটোৱা যাদৱ চন্দ্ৰ দাস নামৰ ব্যক্তিগৰাকীৰ তথ্যৰ আলমত লেখকে উল্লেখ কৰিছে যে বিহাৰত বাস কৰা হালুৱৈসকলে আগৰে পৰা ৰজা তথা সম্ভ্ৰান্ত ঘৰৰ লোকৰ বাবে প্ৰস্তুত কৰা মিঠাই যোগান ধৰি জীৱিকা নিৰ্বাহ কৰিছিল আৰু এতিয়াও সেই পৰম্পৰাৰ ৰক্ষা কৰি আহিছে। অসমৰ বৰপেটা, অভয়াপুৰীত থকা শালৈ জাতিৰ প্ৰায়ভাগ মানুহেই মিঠাই ব্যৱসায়ৰ লগত জড়িত বুলি জনা যায়। এইবোৰ সমলৰ ওপৰত ভিত্তি কৰি লেখকে হালুৱৈৰ উচ্চাৰণ বিভ্ৰাট ঘটি সালৈ>হালৈ>হালুৱৈ হ’ব পাৰে বুলি আনুমানিক ৰূপ প্ৰকাশ কৰিছে। মুঠতে এনেবোৰ তথ্যৰ আধাৰতে নৰনাৰায়ণে বিহাৰৰ ফালৰ পৰাই সালৈ লোকসকলক আনি পুৰণি কামৰূপত বহুৱাইছিল বুলি লেখক নিশ্চিত হৈছিল। ‘সালৈ’/‘শালৈ’ এই শব্দ দুটিৰ শুদ্ধাশুদ্ধ বিচাৰ কৰি কৈছে যে ‘শৰ্মা’ উপাধি লিখোঁতে যেনেদৰে ‘Sarma ’, ‘Sharma’ লিখে, ‘বশিষ্ঠ’ আৰু ‘বসিষ্ঠ’ শব্দ দুয়োটি একে অৰ্থসূচক তেনেদৰে ‘সালৈ’/‘শালৈ’ দুয়োটাই শুদ্ধ। এই শালৈ জাতিৰ সম্পৰ্কে জানিবলৈ চন্দ্ৰকান্ত অভিধানত চকু ফুৰাই লেখকে ‘সালৈ, হালৈ বি. অসমীয়া হিন্দুৰ এটা জাতি’’[১০] বুলি জানিব পাৰিছিল। সেইদৰে ‘হেমকোষ’ অভিধানত ‘শালৈ— বি. অসমীয়া হিন্দুসকলৰ পৰিচয়জ্ঞাপক এটা উপাধি’ [১১] বুলি উল্লেখ আছে। তাতে ‘হালৈ১ বি. সন্দেশ আদি মিঠা বস্তু কৰা মানুহ আৰু হালৈ২ বি. অসমীয়া হিন্দু ফৈদৰ উপাধি’[১২] বুলি উল্লেখ আছে। ‘সামগ্ৰিক অসমীয়া শব্দকোষ’ অভিধানত ‘শালৈ বি. এটা অসমীয়া জাতি’’[১৩] আৰু ‘হালৈ বি. অসমৰ এটা হিন্দু সম্প্ৰদায়’’[১৪] বুলি উল্লেখ আছে। আনহাতে বিশিষ্ট লেখক উপেন ৰাভা হাকাচামৰ ‘অসমীয়া আৰু অসমৰ খিলঞ্জীয়া উপাধি’ শীৰ্ষক গ্ৰন্থত ‘শালৈঃ বৰ্ণ হিন্দু (বৃত্তি) কমাৰ, কঁহাৰ আদি বৃত্তিৰ লগত জড়িত’’[১৫] আৰু ‘হালৈঃ হালোৱা কেওট(বৃত্তি)<হাল+উৰৈ/হালৈ (মিঠাই প্ৰস্তুতকৰ্তা)’’[১৬] বুলি উল্লেখ আছে।

‘পুৰণি অসমীয়া সমাজ আৰু সংস্কৃতি’ শীৰ্ষক গ্ৰন্থত মহেশ্বৰ নেওগে প্ৰসংগ অনুসৰি ‘শালৈ’ শব্দটি স্পষ্টকৈ ব্যৱহাৰ কৰিছে। গতিকে ‘শালৈ’ বা ‘সালৈ’ আৰু ‘হালৈ’ একে জাতি নহয় বুলি লেখক নিশ্চিত হৈছে। সেয়ে শালৈসকল বংশোদ্ভৱ জাতি বুলি লেখকে যুক্তি প্ৰদৰ্শন কৰিছে।

অগ্ৰজ ব্যক্তিসকলে শালৈ জাতিৰ বংশধৰ সম্পৰ্কে কোৱা কথাৰ ভিত্তিতেই লেখকে নিজৰ যুক্তি দাঙি ধৰিছে। গিৰিন্দ্ৰ নাথ ঠাকুৰীয়া নামৰ ব্যক্তিগৰাকীয়ে আৱাহন আলোচনীত ‘অসমত শালৈ জাতি আৰু শাল জাতি’ নামৰ প্ৰৱন্ধটিত শালৈ সম্প্ৰদায়ৰ উৎপত্তি সম্পৰ্কে এনেদৰে লিখিছে যে—

খ্ৰীষ্টিয় ৫ম শতিকাত প্ৰাগজ্যোতিষপুৰতেই শালস্তম্ভই ‘শালস্তম্ভ’ বংশ প্ৰতিষ্ঠা কৰিছিল। শালস্তম্ভ নৰক ৰাজপুত্ৰ ভগদত্তৰ বংশধৰ আছিল বুলি জনা যায়। পশ্চিম ভাৰতৰ পৰা নৰকে কিছু আৰ্য লোক আনি প্ৰাগজ্যোতিষপুৰত বহুৱাইছিল। ৰজা শালস্তম্ভ আৰ্যসম্ভুত আৰু পৰৱৰ্তী পৰ্যায়ত তেওঁৰ বংশধৰসকলেই শালৈ সম্প্ৰদায় হিচাপে পৰিচয় লাভ কৰিছিল। [১৭]

শালস্তম্ভ নামটোৰ অৰ্থ হৈছে ‘শাল কাঠৰ স্তম্ভ’। [১৮] শালৈয়ে এই শালস্তম্ভ বংশৰ আঁতিগুৰি বিচাৰ কৰিবলৈ ৰত্নপালৰ বৰগাওঁৰ লিপিৰ সহায় লৈছিল। এই লিপি মতে “নৰক বংশানুক্ৰমে কেবাজনো ৰজাই সমগ্ৰ দেশ শাসন কৰাৰ পিছত, ভাগ্যৰ বিপৰ্যয়ত এজন মুখ্য ম্লেছ নায়কে

ৰাজ্য অধিকাৰ কৰি লয়। এইজনেই আছিল শালস্তম্ভ। শালস্তম্ভই খ্ৰীঃ ৬৫৫ৰ পৰা ৬৭৫ খ্ৰীষ্টাব্দলৈ আৰু তেওঁৰ বংশধৰসকলে ৯৮৫ খ্ৰীষ্টাব্দলৈ প্ৰাচীন কামৰূপত ৰাজত্ব কৰিছিল।"[১৯] গতিকে গিৰিন্দ্ৰ নাথ ঠাকুৰীয়াই ৫ম শতিকাৰ ৰজা বুলি কোৱা শালস্তম্ভক লেখকে ৭ম শতিকাৰ বুলি প্ৰমাণ সহকাৰে ব্যাখ্যা কৰিছিল। সেইদৰে ঠাকুৰীয়াই শালস্তম্ভক আৰ্যসম্ভুত বুলি কোৱা যুক্তিক খণ্ডন কৰি গেইটৰ মন্তব্য তুলি দিছে—

"With a reference to Narak "of the Asur race" who conquered Kamrupa and took up his abode in pragjyotisha, "the best of towns." He was followed by his son Bhagdatta, and the latter by others of his line for several generations. Then, "by an adverse turn of fate." the Kingdom was taken possession of by Sala Stambha,a great chief of the Mlechchhas."[২০]

পৰৱৰ্তী সময়ত ম্লেচ পৰিয়ালৰ শালস্তম্ভৰ উত্তৰাধিকাৰীসকলে অহিন্দু মঙ্গোলীয়ৰ পৰা হিন্দু ধৰ্মলৈ ধৰ্মান্তৰিত হৈছিল বুলি শালৈয়ে উল্লেখ কৰিছে। তথাপি এই ম্লেচ্ছসকলৰ শৰীৰত 'মংগোলীয়' প্ৰজাতীয় লক্ষণবোৰ বিদ্যমান বুলি কৈছে। নৃতত্ত্ববিদসকলে মঙ্গোলীয়ৰ আৱয়বিক বৈশিষ্ট্যৰ বৰ্ণনা এনে ধৰণে দিছে—"চৰ্মবৰ্ণ পীত বা পীত পিংগল, কেশ ক'লা, ঋজু আৰু অমসৃণ। দাড়ি-গোফ আৰু গাৰ নোম তাকৰ। মুখমণ্ডল বহল আৰু চেপেটা। কপালোস্থি বৰ স্পষ্ট। নেত্ৰ বক্ৰ, নেত্ৰ কোণ ঠেক। অন্তঃনেত্ৰচ্ছেদ বা সম্পূৰ্ণ মংগোলীয় নেত্ৰচ্ছেদ মংগোলীয়ৰ বিশেষ লক্ষণ।"[২১] গতিকে এনেধৰণৰ মঙ্গোলীয় লোকৰ শাৰীৰিক বৈশিষ্ট্য শালৈ লোকসকলৰ মাজত বিচাৰিলে পোৱা নাযায় বাবে শালৈসকল 'শালস্তম্ভ' বংশধৰ নহয় বুলি লেখকে মতামত ব্যক্ত কৰিছে।

নৰকে আৰ্য আনি তেওঁৰ ৰাজ্যত বহুৱাৰ কথা ইতিহাস সম্বন্ধীয় গ্ৰন্থত উল্লেখ আছে। সেয়ে শালৈ জাতিৰ সমল সংগ্ৰহকাৰী যাদৱ চন্দ্ৰ দাসে নৰকৰ দিনতে অহা আৰ্যসকলৰ লগতে শালৈসকলো আহি অসমত বসবাস কৰিবলৈ লয় বুলি প্ৰতিপন্ন কৰিবলৈ বিচাৰিছিল। কিন্তু শালৈয়ে এই ক্ষেত্ৰত বিখ্যাত চীনা পৰিব্ৰাজক হিউৱেন চাঙৰ কামৰূপ সম্পৰ্কীয় টোকাৰ প্ৰসংগ দাঙি ধৰে। টোকাত এনেদৰে উল্লেখ আছে—"বৰ্তমানৰ ৰজা কুমাৰ ভাস্কৰ বৰ্মা পুৰণি নাৰায়ণদেৱৰ বংশ। জাতিত তেওঁ ব্ৰাহ্মণ। .....ৰজাজনক ব্ৰাহ্মণ বুলি কোৱা হৈছে যদিও তেওঁ হিন্দু আছিল, বৌদ্ধ নহয়। বৰ্মন (বৰ্ম, ৰণুৱাই পিন্ধা লোৰ কৱচ) হ'ল ক্ষত্ৰিয়ৰ সাধাৰণ উপাধি আৰু সেয়ে আৰ্য আৰু অনাৰ্যমূলৰ সকলো ৰজায়েই এই উপাধি ধাৰণ কৰিছিল।"[২২] টোকাত ব্যক্ত কৰা ব্ৰাহ্মণ, ক্ষত্ৰিয়সকল বৈদিক সাহিত্যত উল্লিখিত চাৰিটা বৰ্ণ বা জাতিৰ অন্যতম বুলি শালৈয়ে কৈছে। তাত ব্ৰাহ্মণ, ক্ষত্ৰিয়, বৈশ্য, শূদ্ৰ—এই চাৰি জাতিৰ বাহিৰে আন কোনো জাতিৰ উল্লেখ নাই। গতিকে বৃত্তিগত জাতিৰ ভাগবোৰ বহু পিছতহে সৃষ্টি হৈছিল বুলি কৈ শালৈ জাতিৰ লোকসকল নৰকৰ দিনতে অসমলৈ অহাটো বিশ্বাসযোগ্য নহয় বুলি তেওঁ মন্তব্য কৰিছে। পিছত লেখকে ভাৰতীয়ৰ মাজত থকা প্ৰজাতীয় উপাদান সম্পৰ্কে আলোচনা কৰি শালৈ জাতিৰ বংশধৰৰ সন্তেদ কৰিছে। ভাৰতীয়ৰ প্ৰজাতীয় উপাদানৰ ক্ষেত্ৰত ড° বিৰজাশংকৰ গুহ, ড° শংশাকশেখৰ সৰকাৰ আদি বিভিন্ন নৃতাত্বিকবিদৰ মাজত বিভিন্ন মত থকা দেখা যায়। নৃতাত্বিকবিদসকলে পৃথিৱীৰ সকলো মানুহকে একগোট কৰি 'হ'মছেপিয়েন্স' নামৰ মানৱ জীৱগোষ্ঠী বুলি কৈছে। এই মানৱ গোষ্ঠীটোৱে ককেছীয়, মংগোলীয়, নিগ্ৰো, অষ্ট্ৰেলীয়—এই চাৰিটা মুখ্য প্ৰজাতিত বিভক্ত, লগতে 'আৰ্যগোষ্ঠী' এটাৰো সুকীয়া অস্তিত্ব আছে বুলি শালৈয়ে উল্লেখ কৰিছে। ইণ্ডো আৰ্যৰ আগমনত ভাৰতবৰ্ষৰ এটা নতুন যুগৰ সূচনা হয়, সাংস্কৃতিক আৰু প্ৰজাতীয় ইতিহাসৰ বিশেষ পৰিৱৰ্তন হয়। ইণ্ডো-আৰ্যসকল সাধাৰণতে আৰ্য নামেৰেই পৰিচিত। তেওঁলোকে স্বকীয় উন্নত সংস্কৃতিৰে পৰিপূৰ্ণ হৈ উত্তৰ-পশ্চিম কোণেৰে ভাৰতবৰ্ষত প্ৰৱেশ কৰে।[২৩] পিছলৈ এওঁলোক সিন্ধু উপত্যকা, গঙ্গা-যমুনা উপত্যকা, বিহাৰ, বঙ্গ, অসম আৰু তাৰ দাঁতি কাষৰীয়া অঞ্চললৈ সিচঁৰতি হৈ পৰে বুলি জনা যায়। ইণ্ডো আৰ্যসকলে ভাৰতলৈ অহাৰ আগতেই কৃষিকৰ্ম জানিছিল। ধাতুবিদ্যাত পাৰদৰ্শী আছিল আৰু অন্যান্য বিদ্যাও তেওঁলোকৰ আয়ত্তাধীন আছিল। এইদৰে স্বকীয় সাংস্কৃতিক বৈশিষ্ট্য আৰু আবয়বিক লক্ষণেৰে ইণ্ডো আৰ্য ভাৰতবৰ্ষৰ এটা স্বতন্ত্ৰ প্ৰজাতি গোট। তেওঁলোক আগৰ অষ্ট্ৰেলীয় আৰু ভূমধ্যাসাগৰীয়ৰ পৰা পৃথক। ইণ্ডো-আৰ্যসকল ওখ। তেওঁলোকৰ চৰ্ম-বৰ্ণ আৰু নেত্ৰবৰ্ণ পাতল। কেশোও অষ্ট্ৰেলীয় কেশৰ নিচিনা ইমান ক'লা নহয়। ইণ্ডো-আৰ্যও দীৰ্ঘমস্তকী। কিন্তু তেওঁলোকৰ মস্তক দীৰ্ঘতৰ। আয়তনো বৃহৎ। কৰোটিধাৰণ ক্ষমতাও বেছি। দৈহিক গঠন অধিক দৃঢ় আৰু সৰল। .... পশ্চিম বিহাৰলৈ দীৰ্ঘমস্তকী ইণ্ডো-

আৰ্যৰ অখণ্ডিত বিস্তাৰ দেখি অহা হৈছে। পূব বিহাৰ, বংগ, অসম আৰু তাৰ দাঁতি কাষৰীয়া অঞ্চলত দীৰ্ঘমস্তকৰ স্থান ল'লে মধ্যমস্তকে। এই অঞ্চলৰ মানুহ মধ্যমীয়া উচ্চতাৰ। মধ্যকাম, মধ্যমস্তক, ইৰানো-চীথীয়ৰ অৱদান বুলি সৰকাৰে ক'ব খোজে।[২৪] এনেবোৰ তথ্যৰ ভিত্তিতেই শালৈয়ে আৰ্যৰ লগত শালৈসকলৰ শাৰীৰিক গঠন, সমাজ-ব্যৱস্থা, ৰীতি-নীতি, কৃষ্টি-সংস্কৃতি আদিৰ সামঞ্জস্যতা থকা বুলি কৈছে। সেয়ে শালৈ জাতিৰ লোকসকল আৰ্যগোষ্ঠীৰহে বংশধৰ হ'ব পাৰে বুলি মন্তব্য কৰিছে।

এইখিনিতে উল্লেখ কৰিব লাগে যে শালৈ জাতিৰ উন্নতিৰ হকে ১৯২০ চনত জন্ম হোৱা অসম শালৈ সন্মিলনী নামৰ অনুষ্ঠানটি 'অসম আৰ্য শালৈ সন্মিলন' আৰু 'অসম শালৈ ক্ষত্ৰিয় সন্মিলনী' নামেৰে দুটা ভাগত বিভক্ত আছিল। পৰৱৰ্তী সময়ত বিভাজনসূচক শব্দ দুটাৰ সলনি অনুষ্ঠানটি 'অসম শালৈ সন্মিলনী' নামেৰে পৰিচিত লাভ কৰিলে। এই শালৈ জাতিৰ লোকসকলে নিজকে আৰ্য বুলি মানি লৈছে যদিও 'ক্ষত্ৰিয় সম্ভূত' হয় নে নহয় বিচাৰ কৰিবলৈ লেখকে ভাৰতীয় আৰ্যসকলৰ জাতি গঠনৰ প্ৰক্ৰিয়াটো আলোচনা কৰিছে। এনে বৰ্ণনাৰ পিছত লেখকে আমাৰ আলোচ্য জাতি শালৈসকল আৰ্যগোষ্ঠীৰ 'শল্য বা শালবৰ' বংশধৰ হ'ব পাৰে বুলি যুক্তি আগবঢ়াইছে। মহাভাৰত প্ৰসিদ্ধ 'শল্য' বা 'শালৱ' দুয়োগৰাকী ক্ষত্ৰিয় ৰজা আছিল। মদ্ৰ দেশৰ ৰজা শল্য পাণ্ডুৰ দ্বিতীয়া পত্নী মাদ্ৰীৰ ককায়েক আছিল। সেইসূত্ৰে ৰজা শল্য পাণ্ডৱসকলৰ মোমায়েক হয়। কিন্তু মহাভৰতৰ শৈল পৰ্বত বৰ্ণিত অনুসৰি এওঁ পাণ্ডৱসকলৰ মোমায়েক হ'লেও কুৰুক্ষেত্ৰ যুদ্ধত কৌৰৱ পক্ষৰ হকে যুঁজি যুধিষ্ঠিৰৰ হাতত স্বৰ্গগামী হয়। লেখকে মহাভাৰতৰ দিনৰ মদ্ৰ ৰাজ্যৰ বৰ্তমান অৱস্থিতি পঞ্জাৱ, হাৰিয়ানা হ'ব পাৰে বুলি কৈছিল। সেয়ে পূৱলৈ প্ৰব্ৰজন ঘটা আৰ্যসকলৰ মাজৰ কিছু সংখ্যক শল্য বংশধৰ উল্লিখিত অঞ্চলৰ পৰা বিহাৰলৈ আহিছিল বুলি তেওঁ ক'ব বিচাৰে।

আনহাতে মহাভাৰতত বৰ্ণিত শালৱ ৰজা সৌৱল দেশৰ ৰজা আছিল। তেওঁ সখী শিশুপালৰ দৰে কৃষ্ণ বিদ্বেষী আছিল আৰু তেওঁ কৃষ্ণৰ হাততেই মৃত্যুবৰণ কৰিছিল। লেখকে সৌৱল দেশৰ অৱস্থিতি সম্পৰ্কে জানিবলৈ মহাভাৰতত উল্লিখিত ৰজা জৰাসন্ধৰ প্ৰসঙ্গ আনিছিল। মগধৰ ৰজা জৰাসন্ধৰ বন্ধু আছিল শিশুপাল-শালবৰ। বনপৰ্বত উল্লেখ থকা অনুসৰি ৰজা শালবৰৰ আমন্ত্ৰণ পাই জৰাসন্ধ তেওঁৰ ৰাজ্যলৈ ৰাওনা হৈছিল। তেওঁ পাণ্ডৱসকলে বনবাসী হিচাপে জীৱন কটোৱা কাম্যক বন অতিক্ৰম কৰিহে শালৱ ৰাজ্যত উপস্থিত হৈছিল। 'Ancient Geography of India' গ্ৰন্থৰ লেখক আনন্দৰাম বৰুৱাই উল্লেখ কৰিছিল যে—"কাম্যক বন নহন (Nahan) আৰু অম্বলাৰ মাজত সৰস্বতী নদীৰ পাৰত সৌৱল সৰস্বতী আৰু যমুনা নদীৰ মাজৰ উপত্যকা অঞ্চলৰ উত্তৰ ভাগ।"[২৫] সেয়ে ভাৰতীয় আৰ্যসকল পূৱফাললৈ আহোঁতে উল্লিখিত অঞ্চলৰ পৰা শালৱৰ বংশধৰসকল আহি বিহাৰত প্ৰৱেশ কৰাৰ সম্ভাৱনীয়তাক লেখকে নসাৎ কৰিব পৰা নাই। তেওঁ ৰচনাটিৰ পৰৱৰ্তী পৰ্যায়ত শল্য বা শালবৰ বংশধৰসকলে 'শালৈ' উপাধি ব্যৱহাৰ কৰাৰ আঁৰৰ কাহিনী বৰ্ণনা কৰিছে। মানুহে জীয়াই থকাৰ উদ্দেশে সংগ্ৰাম কৰাৰ কাহিনী নকৈ ক'বলগীয়া নাই। গতিকে জীয়াই থকাৰ নিমিত্তে ৰাজবংশধৰ হ'লেও বিভিন্ন পৰিস্থিতিত সাধাৰণ মানুহৰ দৰে জীৱন অতিবাহিত কৰাৰ উদাহৰণ ইতিহাসত উল্লেখ আছে। শল্য বা শালবৰ বংশধৰসকলেও বিহাৰত প্ৰৱেশ কৰাৰ পাছতেই অন্য কাম নকৰি মিঠাই বনোৱা বৃত্তিটোক গ্ৰহণ কৰি বংশ অনুসৰি 'শালৈ' উপাধি ব্যৱহাৰ কৰিছিল। সেয়ে লেখকে কৈছে যে মহাৰাজ নৰনাৰায়ণেও বিহাৰৰ পৰা শালৈসকলৰ কেইটামান পৰিয়াল আনি কামাখ্যা মন্দিৰত মিষ্টান্ন তৈয়াৰ কৰা পাইক হিচাপে বহুৱাই দিলে। সময় বাগৰাৰ লগে লগে এওঁলোকে মিষ্টান্ন তৈয়াৰ কৰা বৃত্তিটোৰ জৰিয়তে চলিবলৈ অসুবিধা হোৱা বাবে খেতি-বাতি কৰি জীৱন ধাৰণৰ মান উন্নত কৰিবলৈ চেষ্টা কৰিছিল।

উল্লিখিত বৰ্ণনাৰ পিছত লেখকে শল্য বা শালবৰ বংশধৰৰ কোনবোৰ চাৰিত্ৰিক বৈশিষ্ট্য কিছু পৰিমাণে হ'লেও শালৈসকলৰ মাজত দেখিবলৈ পোৱা যায় সেয়া জানিবলৈ বিচাৰিছে। কিয়নো মনস্তত্ববিদৰ মতে পূৰ্বপুৰুষৰ চাৰিত্ৰিক বৈশিষ্ট্য পৰৱৰ্তী বংশধৰৰ মাজত অলপ হ'লেও দেখিবলৈ পোৱা যায়। সেয়ে লেখকে ইয়াৰ জৰিয়তে শালৈসকল কোনটো বংশৰ হ'ব পাৰে সেয়া নিশ্চিত হ'বলৈ বিচাৰিছে। আগতে উল্লেখ কৰা হৈছে যে পাণ্ডৱসকলৰ মোমায়েক হোৱা সত্বেও বন্ধু অনুগত হোৱা বাবে শল্যই কুৰুক্ষেত্ৰ যুদ্ধত দুৰ্যোধনৰ পক্ষ লৈছিল। শল্যই এনে কৰাৰ কাৰণ হিচাপে মহাভাৰতৰ শান্তি পৰ্বত ভীষ্মই বৰ্ণনা কৰা কথাৰ অৱতাৰণা কৰিছে। মহাজ্ঞানী ভীষ্ম কৌৰৱ তথা পাণ্ডৱ উভয় পক্ষৰে পিতামহ গুৰু আছিল। ভীষ্মৰ পাণ্ডৱৰ প্ৰতি

আন্তৰিকতা অধিক থকাৰ পিছতো কৌৰৱৰ হকে যুদ্ধ কৰিছিল। শৰশয্যাত পৰি থকা ভীষ্মই পাণ্ডৱ সহিতে দ্ৰৌপদীয়ে দেখা কৰিবলৈ যাওঁতে তেওঁ দুৰ্যোধনৰ পাপান্ন খাই জীৱন ধাৰণ কৰাৰ বাবে দ্ৰৌপদীৰ পক্ষে হোৱা অন্যায়ত, পাশা খেলত হাৰি পাণ্ডৱক বনবাস দিয়া অন্যায়ৰ বিৰুদ্ধে আৰু কুৰুক্ষেত্ৰ যুদ্ধৰ সময়তো দুৰ্যোধনৰ বিৰুদ্ধে থিয় দিয়াৰ সাহস কৰা নাছিল। সেয়ে ভীষ্মই স্বীকাৰ কৰিছিল যে মহাশক্তিমান হ'লেও অন্যায়ৰ হকে যুঁজিলে ন্যায় আৰু ধৰ্মৰ হকে যুঁজোতাসকলৰ হাতত প্ৰাণ হেৰুৱাবলগীয়া হয়। কিন্তু ভীষ্ম, শল্য কৃষ্ণ বিদ্বেষী নাছিল। পাণ্ডৱৰ বিপক্ষে যুঁজ দিলেও তেওঁলোকে মনে-প্ৰাণে পাণ্ডৱৰ জয় হোৱাটো বাঞ্ছা কৰিছিল। আনহাতে অসমত বাস কৰা শান্তিপ্ৰিয় শালৈসকল শংকৰদেৱ-মাধৱদেৱ, দামোদৰদেৱ-হৰিদেৱে দেখুৱাই যোৱা সত্ৰীয়া সংস্কৃতিৰ সৈতে জড়িত বুলি লেখকে কৈছে। লগতে ধৰ্ম বিদ্বেষী লোক শালৈ সমাজত নাই বুলি তেওঁ মন্তব্য কৰিছে। অসমৰ বিখ্যাত মহাপুৰুষীয়া বৰপেটা সত্ৰত ফলিত লিখা সেৱক তালিকাত প্ৰথম সোতৰজনেই শালৈ জাতিৰ লোক আছিল বুলি শুনা যায়।২৬ গতিকে শালৈ জাতিৰ ভিতৰত কৃষ্ণবিদ্বেষী লোক নাই বাবে এওঁলোক শল্য বংশধৰ হয় বুলিহে লেখক নিশ্চিত হৈছে।

ইয়াৰ উপৰি শল্য ৰজা ক্ষত্ৰিয় হোৱা বাবে ক্ষত্ৰিয়ৰ মাজত থকা দুটি বিশেষ গুণ-স্বাৱলম্বিতা আৰু দেশপ্ৰেম শালৈসকলৰ মাজতো দেখা যায় বুলি কৈছে। এওঁলোকৰ মাজৰ বহুতো দুখীয়া পৰিয়ালে ঠগ-প্ৰৱঞ্চনা, চুৰি-ডকাইতি বেয়া কামৰ পৰা আঁতৰত থাকি যথাসাধ্য পৰিশ্ৰম কৰি আনৰ ওচৰত হাত নপতাকৈ জীৱন কটোৱাৰ কথা উল্লেখ কৰিছে। লগতে এওঁলোকৰ অন্তৰত দেশপ্ৰেম ভাৱনা থকাৰ বাবে দৰঙৰ পথৰুঘাটৰ ৰণ, ৰঙিয়াৰ কৃষক বিদ্ৰোহ, অসহযোগ আন্দোলন, ভাৰত ত্যাগ আন্দোলন, সমাজ-সেৱা আদিৰ ক্ষেত্ৰত আগভাগ লৈছিল। ৪২ৰ ভাৰত ত্যাগ আন্দোলনৰ শ্বহীদ মুকুন্দ কাকতি, বিদেশী বহিষ্কাৰ আন্দোলনৰ শ্বহীদ সুনন্দ শালৈয়ে আমাক দেশপ্ৰেমৰ নিদৰ্শন দেখুৱাই থৈ গৈছে। লেখকে শালৈ জাতিৰ কিছুমান লোকৰ বাহিৰে বেছিভাগ লোকেই শালৈ উপাধিৰ সলনি অন্য উপাধি লিখাৰ ফলত শালৈ লোকসকলক চিনাক্ত কৰাত অসুবিধা হৈছে বুলি ৰচনাটিৰ শেষত আক্ষেপ কৰিছে। সেয়ে অসমীয়া ভাষা-সাহিত্য, কলা-সংস্কৃতি, শিক্ষা, ৰাজনীতি, স্বাধীনতা আন্দোলনত তেওঁলোকৰ অৱদান সম্পৰ্কে সঠিকভাৱে উল্লেখ কৰিব নোৱাৰিলে যদিও তেওঁ নিজৰ অভিজ্ঞতাৰে উল্লিখিত আটাইকেইটা দিশতে শালৈ জাতিৰ অৱদান এৰাই চলিব নোৱাৰা বিধৰ বুলি কৈছে।

২.০০ উপসংহাৰ ঃ

শালৈ জাতিৰ ঐতিহ্য জনাৰ ক্ষেত্ৰত এই গ্ৰন্থখনৰ এক বিশেষ ভূমিকা আছে। শালৈ জাতিৰ গৌৰৱময় ইতিহাসৰ জৰিয়তে লেখকে অন্য উপাধি গ্ৰহণ কৰা শালৈ লোকসকলৰ মাজত সচেতনতা বৃদ্ধি কৰি নিজৰ পৰিচয় সগৌৰৱে প্ৰদান কৰিবলৈ উৎসাহ প্ৰদান কৰিছিল। নিজৰ জাতি তথা জনমভূমিৰ প্ৰতি দায়িত্বশীল কৰি গঢ়ি তোলাৰ প্ৰচেষ্টাৰ লগতে তেওঁলোকৰ মাজত একতাৰ এনাজৰীডাল কটকটীয়া কৰিবলৈও লেখকে উঠি-পৰি লাগিছিল। সেয়ে শালৈ লোকসকলক অসমৰ অন্যান্য পিছপৰা সম্প্ৰদায় হিচাপে পিছ পৰি নাথাকি ভাষা-সাহিত্য, শিক্ষা, ৰাজনীতি, সংস্কৃতি আদি সকলো দিশতে আত্মবিশ্বাসেৰে নিজৰ মৰ্যাদা প্ৰতিষ্ঠা কৰিবলৈ গ্ৰন্থখনৰ যোগেদি অনুপ্ৰেৰিত কৰিছে বুলি ক'ব পাৰি। ❑

প্ৰসঙ্গ টোকা ঃ

১. শৰ্মা, উপেন্দ্ৰজিৎ (সম্পা.) ঃ পদ্মৰাম শালৈ ৰচনাৱলী (প্ৰথম খণ্ড), পৃ. ৬৬২
২. সদ্যোক্ত, পৃ. ৬৬২
৩. সদ্যোক্ত, পৃ. ৬৭০
৪. সদ্যোক্ত, পৃ. ৬৬৫
৫. নেওগ, মহেশ্বৰ ঃ মহেশ্বৰ নেওগৰ ৰচনাৱলী (প্ৰথম খণ্ড), পৃ. ১৮৭
৬. বৰুৱা, দেৱানন্দ (সম্পা) ঃ নতুন সংস্কৰণহেমকোষ, পৃ. ১১২৮
৭. বৰুৱা, কনকলাল ঃ আৰ্লি হিষ্টৰী অফ কামৰূপা, পৃ. ২৯৯
৮. নেওগ, মহেশ্বৰ ঃ ষ্টাডিজ ইন দ্যা আৰ্লি হিষ্টৰী অফ আসাম, পৃ.১৬৮
৯. শৰ্মা, গিৰিধৰ ঃ অসমীয়া জাতিৰ ইতিবৃত্ত, পৃ. ২১
১০. গোস্বামী, মালিনী (সম্পা.) ঃ চন্দ্ৰকান্ত অভিধান, পৃ. ৮৩১

১১. বৰুৱা, দেৱানন্দ (সম্পা.) ঃ নতুন সংস্কৰণহেমকোষ, পৃ. ১২২০
১২. সদ্যোক্ত, পৃ. ১৩৭৪
১৩. পাঠক, ৰমেশ ঃ সামগ্ৰিক অসমীয়া শব্দকোষ, পৃ. ১২৯২
১৪. সদ্যোক্ত, পৃ. ১৪৬১
১৫. হাকাচাম, উপেন ৰাভা ঃ অসমীয়া আৰু অসমৰ খিলঞ্জীয়া উপাধি, পৃ.২১৯
১৬. সদ্যোক্ত, পৃ. ২২৭
১৭. শৰ্মা, উপেন্দ্ৰজিৎ (সম্পা.) ঃ পদ্মৰাম শালৈ ৰচনাৱলী (প্ৰথম খণ্ড), পৃ. ৬৬৭-৬৬৮
১৮. শৰ্মা, শচীন ঃ পুৰণি কামৰূপৰ চমু ইতিহাস, পৃ.৬৮
১৯. শৰ্মা, উপেন্দ্ৰজিৎ (সম্পা.)ঃ পদ্মৰাম শালৈ ৰচনাৱলী (প্ৰথম খণ্ড), পৃ. ৬৬৮
২০. গেইট, এডৱাৰ্ড ঃ এ হিষ্টৰী অফ আসাম, পৃ. ২৯
২১. শৰ্মা, গিৰিধৰ ঃ অসমীয়া জাতিৰ ইতিবৃত্ত, পৃ. ১৪
২২. শৰ্মা, শচীন ঃ পুৰণি কামৰূপৰ চমু ইতিহাস, পৃ.৬১-৬২
২৩. শৰ্মা, গিৰিধৰ ঃ অসমীয়া জাতিৰ ইতিবৃত্ত, পৃ. ২১
২৪. সদ্যোক্ত, পৃ. ২১-২২
২৫. শৰ্মা, উপেন্দ্ৰজিৎ (সম্পা.) ঃ পদ্মৰাম শালৈ ৰচনাৱলী (প্ৰথম খণ্ড), পৃ. ৬৭১
২৬. সদ্যোক্ত, পৃ. ৬৭২

গ্ৰন্থপঞ্জী

অসমীয়া

মুখ্য সমল ঃ

শৰ্মা, উপেন্দ্ৰজিৎ (সম্পা.)। পদ্মৰাম শালৈ ৰচনাৱলী (প্ৰথম খণ্ড)। প্ৰথম প্ৰকাশ, ছেপ্তেম্বৰ, ২০১৮, অসম সাহিত্য সভা, যোৰহাট-১, মুদ্ৰিত।

সহায়ক গ্ৰন্থ ঃ

গোস্বামী, মালিনী (সম্পা.)। চন্দ্ৰকান্ত অভিধান। চতুৰ্থ সংস্কৰণ, ২০১২, গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয় প্ৰকাশন, গুৱাহাটী-১৪, মুদ্ৰিত।
নেওগ, মহেশ্বৰ। মহেশ্বৰ নেওগৰ ৰচনাৱলী (প্ৰথম খণ্ড)। প্ৰথম সংস্কৰণ, ১৯৮৬, বাণী মন্দিৰ, ডিব্ৰুগড়-০১, মুদ্ৰিত।
পাঠক, ৰমেশ।সামগ্ৰিক অসমীয়া শব্দকোষ । দ্বিতীয় পৰিৱৰ্ধিত সংস্কৰণ, ২০২০, অশোক বুক ষ্টল, গুৱাহাটী, পাণবজাৰ, মুদ্ৰিত।
বৰুৱা, দেৱানন্দ (সম্পা.)। নতুন সংস্কৰণ হেমকোষ । পঞ্চদশ সংস্কৰণ, ২০১৩, গুৱাহাটী, চান্দমাৰী-৩, মুদ্ৰিত।
শইকীয়া, নগেন। অসমীয়া মানুহৰ ইতিহাস। দ্বিতীয় সংস্কৰণ, ২০১৬, কথা প্ৰকাশন, গুৱাহাটী-১, মুদ্ৰিত।
শৰ্মা, নবীন চন্দ্ৰ। দৰং ৰাজবংশাৱলী। প্ৰথম প্ৰকাশ, নৱেম্বৰ, ১৯৭৩, গুৱাহাটী, পাণবজাৰ-১, মুদ্ৰিত।
শৰ্মা, গিৰিধৰ। অসমীয়া জাতিৰ ইতিবৃত্ত । চতুৰ্থ প্ৰকাশ, জুলাই, ২০১১, বনলতা, গুৱাহাটী-১, মুদ্ৰিত।
শৰ্মা, শচীন। পুৰণি কামৰূপৰ চমু ইতিহাস । প্ৰথম প্ৰকাশ, ছেপ্তেম্বৰ, ২০২১, অসম প্ৰকাশন পৰিষদ, গুৱাহাটী-২১, মুদ্ৰিত।
হাকাচাম, উপেন ৰাভা। অসমীয়া আৰু অসমৰ খিলঞ্জীয়া উপাধি । প্ৰথম সংস্কৰণ, নৱেম্বৰ, ২০১৩, ৰেখা প্ৰকাশন, গুৱাহাটী-১, মুদ্ৰিত।

ইংৰাজী ঃ

Barua, Bahadur, Rai, K.L., Early History of Kamrupa, 1933, Published by the Author, Shillong.
Gait, Sir Edward. A History of Assam, Second Edition,1926, Thacker, Spink & Co., Calcutta and Simla.
Neog, Maheswar (ed.). Studies in the Early History of Assam, Second Edition, 2009, Chandra Parakash, Guwahati.

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

প্ৰবন্ধ

প্ৰাক্-স্বাধীনতা কালৰ অসম সাহিত্য সভাৰ সভাপতিসকলৰ অভিভাষণত বিশ্বসাহিত্যৰ প্ৰসঙ্গ ঃ এটি অধ্যয়ন

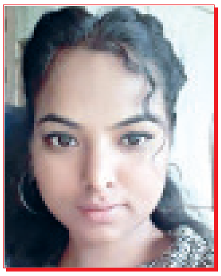

জুমি বৰ্মন

গৱেষক ছাত্ৰী, অসমীয়া বিভাগ
গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয়
৮০৯৯২৮৭৭২৪
barmanjumi76@gmail.com

ড° বিপুল মালাকাৰ

সহযোগী অধ্যাপক, অসমীয়া বিভাগ
নগাঁও ছোৱালী কলেজ, নগাঁও
৯৩৬৫০৬২৫৭৮

সংক্ষিপ্তসাৰ ঃ

সাম্প্ৰতিক সময়ৰ এটা বহুল আৰু জনসমাদৃত বিষয় হ'ল বিশ্বসাহিত্য। ইংৰাজী 'world Literature' শব্দৰ প্ৰতিশব্দ হিচাপে অসমীয়াত বিশ্বসাহিত্য পদটো ব্যৱহাৰ কৰা হয়। বিশ্বসাহিত্যৰ পৰিসৰ যথেষ্ট বিস্তৃত। বিশ্বৰ বিভিন্ন দেশৰ জাতীয় সাহিত্যক বিশ্বসাহিত্যই সামৰি লয়। পৃথিৱীৰ প্ৰায় প্ৰতিখন ৰাষ্ট্ৰৰে কেতবোৰ উচ্চ শ্ৰেণীৰ কালজয়ী আৰু মহত্বপূৰ্ণ গ্ৰন্থ আছে। যিবোৰে সমগ্ৰ বিশ্বৰ জনতাৰ হৃদয় স্পৰ্শ কৰিব পাৰে। এনে সাহিত্যসমূহ সেই ৰাষ্ট্ৰৰে কেৱল নহয়, বৰঞ্চ সমগ্ৰ বিশ্ববাসীৰ অমূল্য সম্পদ হৈ পৰে। এনে কালজয়ী, মহৎ আৰু মানৱতাক উচ্চ শিখৰত অধিষ্ঠিত কৰা সাহিত্যক বিশ্বসাহিত্য বুলি অভিহিত কৰিব পাৰি। দৰাচলতে ভিন্ন ৰাষ্ট্ৰ, বিভিন্ন আচাৰ-নীতি, ভিন্ন সাংস্কৃতিক পৰম্পৰাৰ মানুহৰ অন্তৰালতো এক মানৱীয় আবেগ-অনুভূতিয়ে ক্ৰিয়া কৰি থাকে। ফলস্বৰূপে সাহিত্যয়ো অন্য ৰাষ্ট্ৰলৈকে আপোনত্বৰ ভাৱ জাগ্ৰত কৰিব পাৰে। অসম সাহিত্য সভাৰ সভাপতিসকলৰ অভিভাষণত জাতীয় জীৱনৰ বিভিন্ন দিশ, অভাৱ-অনাটন, উন্নয়ণৰ বাবে কৰণীয়-অকৰণীয়, ভাষিক,সামাজিক, ৰাজনৈতিক, অৰ্থনৈতিক, সাংস্কৃতিক আদি বিভিন্ন দিশ প্ৰতিভাত হৈ উঠিছে। তাৰ মাজতে বিশ্বসাহিত্যও ভূমুকি মাৰিছে। এনেবোৰ দিশৰ আলোচনাই জাতীয় জীৱনৰ ভেঁটি নিৰ্মাণত সহায়কাৰীৰ ভূমিকা পালন কৰে। আমাৰ আলোচনাত স্বাধীনতাৰ পূৰ্বৱৰ্তী কালৰ সভাপতিসকলৰ অভিভাষণত প্ৰতিফলিত বিশ্বসাহিত্য সম্পৰ্কে আলোচনা কৰাৰ প্ৰয়াস কৰা হ'ব।

বীজশব্দ ঃ

বিশ্বসাহিত্য, অসম সাহিত্য সভা, অভিভাষণ, উৰ্দু সাহিত্য, বঙ্গ সাহিত্য, ইউৰোপীয় সাহিত্য

১.০০ বিষয়বস্তু ঃ

উনবিংশ শতিকাত জাৰ্মান কবি গ্যেটে পোনতে বিশ্বসাহিত্যৰ ধাৰণা উপস্থাপন কৰিছিল। গ্যেটে "ৱেল্ট লিটাৰেটুৰ" অভিধাটো ব্যৱহাৰ কৰিছিল। গ্যেটেৰ বিশ্বসাহিত্য সম্পৰ্কীয় ধাৰণা কেৱল ক্লাছিকেল বা ধ্ৰুপদী সাহিত্যতে

সীমাবদ্ধ নহয় জনপ্ৰিয় সাহিত্যকো সামৰি লৈছিল। বিংশ শতিকাত ৰবীন্দ্ৰনাথ ঠাকুৰে ভাৰতবৰ্ষত পোনতে বিশ্বসাহিত্য পদটো ব্যৱহাৰ কৰে। সম্প্ৰতি বিশ্বসাহিত্য পদটো অধিক ব্যাপক অৰ্থত ব্যৱহাৰ হ'বলৈ লৈছে। বৰ্তমান বিশ্বসাহিত্য শব্দই বিশ্বত সুদূৰপ্ৰসাৰী প্ৰভাৱ পেলাবলৈ সক্ষম হৈছে। বিশ্বসাহিত্য জগতব্যাপী সম্প্ৰসাৰিত। জগতৰ মানুহৰ মাজত এই সাহিত্যই আন্তৰিক যোগাযোগ স্থাপন কৰে। বিশ্বসাহিত্যই ৰাষ্ট্ৰীয় সাহিত্যৰ পৰিসম্পাপ্তি সূচিত নকৰে, বৰং ই ৰাষ্ট্ৰীয় সীমাৰ ভিতৰত সাহিত্য সীমাবদ্ধ কৰাৰ অৰ্থহীনতাৰ কথা উল্লেখ কৰে। অসম সাহিত্য সভা অসমীয়া জাতিৰ প্ৰাণৰ অনুষ্ঠান । ১৯১৭ চনতে জন্ম লাভ কৰা অসম সাহিত্য সভাই জাতীয় জীৱনৰ সৰ্বতোপ্ৰকাৰে মঙ্গল সাধনৰ নিমিত্তে কাম কৰি আহি সম্প্ৰতি বিশাল বটবৃক্ষত পৰিণত হৈছে। সাহিত্য সভাই অনুষ্ঠিত কৰা অধিৱেশনসমূহত সভাপতিসকলে প্ৰদান কৰা সুললিত আৰু তত্ত্বগধুৰ অভিভাষণসমূহ অসমীয়া ভাষা-সাহিত্যৰ অতি মূল্যৱান সম্পদ। স্বাধীনতাৰ পূৰ্বৰ সময়ছোৱাত অসম সাহিত্য সভাৰ আসন শুৱনি কৰা সভাপতিসকল হ'ল — পদ্মনাথ গোহাঞিবৰুৱা, চন্দ্ৰধৰ বৰুৱা, কালিৰাম মেধি, হেমচন্দ্ৰ গোস্বামী, অমৃতভূষণ অধিকাৰী, কনকলাল বৰুৱা, লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱা, ৰজনীকান্ত বৰদলৈ, বেণুধৰ ৰাজখোৱা, তৰুণৰাম ফুকন, কমলাকান্ত ভট্টাচাৰ্য, মফিজুদ্দিন আহমদ হাজৰিকা, নগেন্দ্ৰনাৰায়ণ চৌধুৰী, জ্ঞানদাভিৰাম বৰুৱা, আনন্দচন্দ্ৰ আগৰৱালা, ৰঘুনাথ চৌধাৰী, কৃষ্ণকান্ত সন্দিকৈ, ময়িদুল ইছলাম বৰা, আৰু নীলমণি ফুকন । আমাৰ অভিভাষণত প্ৰাক্-স্বাধীনতা কালৰ অভিভাষণখিনি সামৰি লোৱা হৈছে।

১.০১ পৰিসৰ ঃ

অসম সাহিত্য সভাৰ সভাপতিসকলৰ অভিভাষণত জাতি, ভাষা, সাহিত্য, সংস্কৃতি, ৰাজনীতি, অৰ্থনীতি, সমাজনীতি আদি বিভিন্ন দিশৰ পৰা আলোচনা কৰাৰ যথেষ্ট থল আছে। আমাৰ অধ্যয়নত কেৱল অভিভাষণসমূহত বিশ্বসাহিত্যৰ ৰেঙণি কেনেদৰে প্ৰতিভাত হৈ উঠিছে তাৰ ওপৰতহে আলোকপাত কৰাৰ প্ৰয়াস কৰা হ'ব।

১.০২ উৎস আৰু পদ্ধতি ঃ

অধ্যয়নৰ মুখ্য উৎস হিচাপে অসম সাহিত্য সভাৰ সভাপতিসকলৰ অভিভাষণৰ লিখিত পাঠসমূহ লোৱা হৈছে। গৌণ উৎস হিচাপে অধ্যয়নৰ লগত সম্পৰ্কিত বিভিন্ন গ্ৰন্থ, আলোচনী আদি লোৱা হৈছে। গৱেষণাপত্ৰখন প্ৰস্তুতকৰণৰ বাবে বৰ্ণণাত্মক আৰু বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতি অৱলম্বন কৰা হৈছে।

১.০৩ লক্ষ্য আৰু উদ্দেশ্য ঃ

বিশ্বৰ বিভিন্ন প্ৰান্তৰ সাহিত্যৰ প্ৰসঙ্গ উত্থাপনেৰে অসমীয়া সাহিত্য উচ্চ শ্ৰেণীৰ সাহিত্যলৈ উন্নীত কৰাৰ প্ৰয়োজনীয়তা অভিভাষণসমূহত কেনদৰে প্ৰতিভাত হৈ উঠিছে সেই সম্পৰ্কে আলোচনা কৰা অধ্যয়নৰ মূল লক্ষ্য। অসমীয়া সাহিত্যৰ বিকাশত অভিভাষণসমূহে কেনেধৰণে অৰিহণা যোগাইছে তাৰ ওপৰত দৃষ্টিপাত কৰা অধ্যয়নৰ মূল উদ্দেশ্য।

২.০০ মূল আলোচনা ঃ

বিশ্বসাহিত্যৰ অন্তৰ্গত সাহিত্য সৃষ্টিৰ অন্তৰালতো একোটা মহৎ উদ্দেশ্য নিহিত হৈ থাকে। বিশেষকৈ সৰ্ব মানৱৰ কল্যাণ জড়িত হৈ থাকে। এনে মহৎ উদ্দেশ্যৰ সাহিত্যৰ বিশ্ব সাহিত্যলৈ উত্তৰণ ঘটে। অসম সাহিত্য সভাৰ সৃষ্টি হৈছিল অসম তথা অসমীয়াৰ সৰ্বদিশৰ উন্নতিৰ অৰ্থে। গতিকে অসম সাহিত্য সভাৰ সভাপতিসকলৰ অভিভাষণসমূহত বিশ্বসাহিত্যৰ প্ৰসঙ্গ উত্থাপিত হোৱা পৰিলক্ষিত হয়।

২.০১ অভিভাষণত বিশ্বসাহিত্যৰ ধাৰণা ঃ

মফিজুদ্দিন আহমদ হাজৰিকাই বিশ্বসাহিত্য সম্পৰ্কে মতামত দাঙি ধৰিছে । তেওঁ কয় যে প্ৰত্যেক দেশৰে ভাৱ, ভাষা, আচাৰ-ৰীতি, আদৰ্শ বেলেগ। সেয়ে দেশভেদে ৰচিত সাহিত্যও বেলেগ বেলেগ হয়। কিন্তু দেশ, কাল, পাত্ৰভেদে ৰচিত সাহিত্যৰ বাহ্যিক ৰূপত ভিন্ন হলেও এইসমূহৰ অন্তৰালত এটা উমৈহতীয়া ভাবে ক্ৰিয়া কৰি থাকে। এনে উমৈহতীয়া ভাৱৰ নিহিত সাহিত্যক বিশ্বসাহিত্যৰ শাৰীত পেলাব পাৰি। বিশ্বসাহিত্যই বিশ্ব ভাতৃত্ববোধ জাগ্ৰত কৰি বিশ্বপ্ৰেমৰ সন্ধান দিয়ে।

নগেন্দ্ৰনাৰায়ণ চৌধুৰীয়ে বিশ্বসাহিত্য সৃষ্টিৰ বাবে সাহিত্যিকসকলৰ বিশেষভাৱে প্ৰতিভাশালী হোৱা দৰকাৰ বুলি কৈছে। তেওঁলোক বিশ্বৰ একো একোজন বিশেষ লোক। তেওঁলোকৰ ৰচনাই বিশ্বৰ মানুহৰ হৃদয় আলোড়িত কৰে। কোনো বিশেষ জাতি, গোষ্ঠী, সম্প্ৰদায়, দেশেই কেৱল সেই ৰচনাৰ দ্বাৰা প্ৰভাৱান্বিত নহয়, বৰং সেই ৰচনাই

ভূমিৰ মাজেদি ভূমাক স্পৰ্শ কৰে। অৰ্থাৎ লেখক যিখন দেশৰ বা যিখন সমাজৰ বাসিন্দা সেই দেশ বা সমাজৰ ৰীতি-নীতি, চাৰিত্ৰিক বৈশিষ্ট্যৰ মাজেদিয়েই জগতৰ মানুহৰ অন্তৰত হেন্দোলনি তোলে। বিশ্বসাহিত্যৰ মাজত যি অমৃত ৰসৰ উৎপত্তি হয় সিয়ে সমগ্ৰ বিশ্বৰ মানৱক অমৰ কৰিব পাৰে আৰু সেই অমৃতৰস পান কৰি মানুহে চিৰকাললৈ অনিৰ্বচনীয় আনন্দ লাভ কৰে ।

ৰঘুনাথ চৌধাৰীয়ে বিশ্বসাহিত্যৰ সংজ্ঞা দিছে এনেদৰে----- "দৈনন্দিন জীৱনৰ পাৰিপাৰ্শ্বিক ঘটনাৰ আলম লৈ সাহিত্য ৰচিত নহয় ।যি মানৱ জীৱনৰ বিচিত্ৰ অভিব্যক্তি, মানুহৰ মৰ্ম্ম-বাণী, সমাজৰ সকলো সমস্যা ফুটাই তুলিবলৈ চেষ্টা কৰে সেয়ে বাস্তৱ সাহিত্য, ---সেয়ে বিশ্বসাহিত্য।"[১]

২.০২ ইউৰোপীয় সাহিত্য ঃ

সাহিত্যৰ লক্ষণ বৰ্ণনা কৰোঁতে লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাই ইউৰোপীয় সাহিত্যৰ কথা ব্যক্ত কৰিছে। অসমীয়া শিক্ষিতলোকসকল যে ইউৰোপীয় সাহিত্য অধ্যয়নৰ প্ৰতি বিশেষ আগ্ৰহী সেই কথা তেওঁ ব্যক্ত কৰিছে। ইংৰাজ কবি চচাৰ, টেনিচন, ব্ৰাউনিং আদি কবিৰ কবিতা অধ্যয়নেৰে পৰিপুষ্ট বহু শিক্ষিত যুৱক অসমত আছে। অথচ ভাৰতীয় কাব্য অধ্যয়নৰ প্ৰতি অনাগ্ৰহী। কালিদাস, ভৱভূতি আদি বিখ্যাত ভাৰতীয় কবিৰ কাব্য অধ্যয়ন আঙুলিমূৰত লেখিবপৰা বিধৰ। অৰ্থাৎ অসমীয়া শিক্ষিত যুৱকৰ ইউৰোপীয় সাহিত্যৰ প্ৰতি আগ্ৰহে ইউৰোপীয় সাহিত্যৰ সুদূৰপ্ৰসাৰী প্ৰভাৱৰ কথাই বুজায়।

ভাৰতীয় কাব্যৰ তিনিটা সোঁতাৰ কথা বৰ্ণনা কৰিবলৈ যাওঁতে তেওঁ ইউৰোপীয় কাব্যধাৰাৰ পৰিস্ফুৰণ ঘটাইছে। ইউৰোপৰ কাব্য-প্ৰতিভা গ্ৰীচ,ৰোম আৰু কেলটিক্ এই তিনিটা সোঁতাৰ পৰা আহৰণ কৰা। ভাবৰ নিপুণতা ধীৰ, স্থিৰ, শান্ত বিচাৰ-বিবেকতা গ্ৰীচৰ দান। শক্তি, সংযম, মনুষ্যত্ব আৰু মহত্ব ৰোমৰ দান। কেলটিক্ দান হৈছে -ইন্দ্ৰিয়াতীত, মুক্ত ,অসীম, শান্ত শিৰম ,ৰহস্যময়তা। এই তিনিওটা সোঁতে ভাৰতীয় কাব্যধাৰাক কেনে গভীৰভাৱে সংপৃক্ত কৰি ৰাখিছে তাৰ বৰ্ণনা তেওঁ দাঙি ধৰিছে।

লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাই মন্তব্য প্ৰকাশ কৰে যে ইউৰোপীয় সাহিত্যসমূহৰ ভিতৰত ফ্ৰেন্স সাহিত্যত গ্ৰীক প্ৰতিভাৰ কিছু আভাস পোৱা যায়। লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাই ফ্ৰেন্স সাহিত্যৰ সৰলতা, দুৰ্বলতা দুয়োটা দিশৰ ওপৰতে আলোকপাত কৰিছে। ফ্ৰেন্স ভাষাৰ অটলস্পৰ্শিতা আৰু ঐন্দ্ৰজালিকতা তেওঁ নাই বুলি কৈছে। সেইদৰে ফ্ৰেন্স সাহিত্যৰ সুকীয়া বিশেষত্ব, নিগুঢ় ৰস, ৰহস্যময়তাৰ অভাৱৰ কথাও তেওঁ ব্যক্ত কৰিছে। ভিক্টৰ হুগো, আৰু অন্যান্য সাহিত্যসেৱীসকলে এই অভাৱ দূৰ কৰাৰ বাবে কৰা প্ৰচেষ্টা বক্তব্যৰ মাজেৰে তুলি ধৰিছে। লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাই ফ্ৰান্সৰ সাহিত্যৰ স্পষ্টতা, বক্তব্যৰ গভীৰতা স্বচ্ছতা আৰু প্ৰাঞ্জলতাৰ বাবেই গদ্য সাহিত্যক জগতত উচ্চ স্থান প্ৰদান কৰিছে বুলি উল্লেখ কৰিছে।

লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাই সাহিত্যই জাতীয় জীৱনৰ চিত্ৰ প্ৰতিবিম্বিত কৰা প্ৰসঙ্গত ৰোমাণ্টিক যুগৰ সাহিত্যৰো কিছু আভাস দিছে। ৰোমাণ্টিক যুগৰ কবিসকলৰ সাহিত্যই সেই যুগৰ চিত্ৰ কেনেদৰে প্ৰতিভাত কৰিছিল তাৰ আলোচনা প্ৰসঙ্গত তেওঁ শ্যেলী, ৱৰ্ডছৱৰ্থ আদি কবিৰ কবিতাৰ কথা উল্লেখ কৰিছে। তদুপৰি তেওঁ ইংৰাজী সাহিত্যৰ শ্বেক্সপীয়েৰ, ৱৰ্ডছৱৰ্থ, শ্যেলি, কীটচ্ আদিৰ ৰচনাত একোটা সুকীয়া বৈশিষ্ট্য, বিষয়বস্তু, প্ৰকাশ কৌশল, প্ৰহেলিকাময় ভাব, ভঙ্গী, ৰসৰ সমাহাৰেৰে সৌন্দৰ্যময় বুলি উল্লেখ কৰিছে।

মহাকবি গটেয়ে জাৰ্মান কবিসকলক অভিজ্ঞতাৰ গাম্ভীৰ্যৰ প্ৰয়োজনীয়তা সম্পৰ্কে যি প্ৰবন্ধ প্ৰকাশ কৰিছিল সেই কথা কৃষ্ণকান্ত সন্দিকৈয়ে তেওঁৰ অভিভাষণত তুলি

ধৰিছে। আধুনিক ইউৰোপীয় সাহিত্যৰ আলোচনা প্ৰসঙ্গত জাৰ্মান মনীষী ডিলঠায়ে এই জীৱন-অভিজ্ঞতাৰ প্ৰভাৱৰ কথা উল্লেখ কৰা কথাও ব্যক্ত কৰে। সাহিত্যত অভিজ্ঞতাৰ প্ৰয়োজনীয়তাৰ প্ৰসঙ্গত কৃষ্ণকান্ত সন্দিকৈয়ে কাৰ্লাইলৰ উক্তিৰ কথাও অভিভাষণত ফুটাই তুলিছে। কাৰ্লাইলৰ মতে সাহিত্য চিন্তাশীল ব্যক্তিৰ চিন্তাৰ সুপ্ৰকাশ। সাহিত্য সৃষ্টিৰ বাবে লেখকৰ যি গভীৰ চিন্তাৰ উন্মেষ হয় সেই চিন্তাৰ মূলতেও অভিজ্ঞতা। কাৰ্লাইলৰ উদাহৰণেৰে তেওঁ এই কথা দৃঢ়ভাৱে প্ৰতিপন্ন কৰাৰ চেষ্টা কৰিছিল। সমাজ অভিজ্ঞতাৰ প্ৰতিফলন ঘটা ৰুছ সাহিত্যৰ বিষয়েও কৃষ্ণকান্ত সন্দিকৈয়ে আলোচনা কৰিছে। ৰুছ উপন্যাসৰ মূলবস্তু সমাজ সঞ্চালন। ফৰাছী উপন্যাসত সামাজিক দিশৰ চিত্ৰ প্ৰতিফলনৰ আলোচনাত তেওঁ বালজাক আৰু এমিলজলাৰ উপন্যাসৰ ওপৰতো দৃষ্টি নিক্ষেপ কৰিছে। আধুনিক ইংৰাজী সাহিত্যত গেলছৱৰ্থিয়ে বনুৱা সমস্যাক প্ৰাধ্যান্য দি নাটক ৰচনা কৰা কথা অভিভাষণত পৰিস্ফুট হৈছে। ইবছেন, বাৰ্নাড শ্ব আদিৰ ৰচনাত সামাজিক সমস্যাৰ পৰীক্ষামূলক অনুসন্ধানৰ কথা কৃষ্ণকান্ত সন্দিকৈয়ে তেওঁৰ অভিভাষণত দাঙি ধৰিছে। জাতীয় অভিজ্ঞতা বা জাতীয় আন্দোলনৰ লগত সাহিত্যৰ সম্বন্ধ বুজাবৰ বাবে তেওঁ জাৰ্মান পদ্য আৰু গদ্যত নেপোলিয়নৰ বিৰুদ্ধে জাতীয় আত্মবোধৰ যি প্ৰচণ্ড ঢৌ উঠিছিল সেই কথাৰ বিৰৰণ দিছে।

২.০৩ বঙ্গীয় সাহিত্য ঃ

লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাই বৰ্তমান বঙ্গ সাহিত্যৰ পুষ্টি সাধনত তিনিটা নতুন সোঁতৰ আমদানিৰ কথা ব্যক্ত কৰিছে। এই নব্য সোঁত বোৱাই অনা ব্যক্তি কেইগৰাকীৰ ভিতৰত ৰামমোহন ৰায় প্ৰথম মাইকেল মধুসূদন দত্ত আৰু বঙ্কিম চাতুৰ্জী দ্বিতীয় আৰু তৃতীয় ৰবীন্দ্ৰনাথ ঠাকুৰ বুলি অভিহিত কৰিছে। এই চাৰি সাহিত্যিকে বিভিন্ন সাহিত্যৰ পৰা নতুন গঢ় আনি নিজ সাহিত্য নতুন ৰূপত সজাই তোলে। নব্য চিন্তা, নব্য আদৰ্শ আৰু গঢ়েৰে এওঁলোকে বঙ্গ সাহিত্যক জগত সভালৈ উলিয়াই আনে। বঙ্গীয় সাহিত্যিকসকলৰ সাহিত্য চৰ্চাৰ জুমুঠি যিদৰে বঙ্গ সাহিত্যতে সীমাবদ্ধ নাছিল সেইদৰে তেওঁলোকৰ দ্বাৰা ৰচিত সাহিত্যও জগতৰ ভিন ভিন জাতি ভাষালৈ সম্প্ৰসাৰিত। যাৰ ফলত বঙ্গ সাহিত্য অন্যান্য শক্তিশালী সাহিত্যৰ লগত বা জগত সভাত জিলিকি থাকিব পৰাকৈ তেজস্বী আৰু সৌন্দৰ্যশালী হৈ পৰিল।

লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাই বঙ্গদেশৰ কাব্য সাহিত্য সম্পৰ্কেও কিছু আলোচনা আগবঢ়াইছে। বঙ্গকাব্যৰ ওপৰত দৃষ্টিপাত কৰি তেওঁ কয় যে ৰবীন্দ্ৰনাথ ঠাকুৰৰ কবিতাখিনি অন্যান্য বঙ্গ কবিতাতকৈ কিছু পৃথক। ৰবীন্দ্ৰনাথ ঠাকুৰৰ কবিতাত সুক্ষ্ম ভাব, ৰসৰ মাধুৰ্য আৰু সৌন্দৰ্যবোধ পৰিলক্ষিত হয়। ভাব গভীৰতা, গীতিধৰ্মিতা, চিত্ৰৰূপময়তা, আধ্যাত্মচেতনা, ঐতিহ্যচেতনা, প্ৰকৃতিপ্ৰীতি, স্বদেশপ্ৰীতি, মানৱপ্ৰীতি, সৌন্দৰ্যচেতনা, বিশ্বপ্ৰেম, ভাষা, আঙ্গিক আদিৰে মনোৰম। বাকীবোৰ কবিতাত তুৰীয় বিৰাট আবেগ আৰু ভাবৰ ইন্দ্ৰজাল নাই। ইয়াৰ বিপৰীতে প্ৰাঞ্জলতা, নিৰ্মলতা আৰু কোমলতা বঙ্গ সাহিত্যৰ অলঙ্কাৰ বুলি অভিহিত কৰিছে। লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাই ৰবীন্দ্ৰনাথ ঠাকুৰৰ কাব্যৰ উৎকৃষ্টতা দেখুৱাবলৈ তেওঁৰ কাব্যৰ একাংশ অভিভাষণত তুলি দিছে---- "আমি চঞ্চল হে সুদূৰেৰ পিয়াসী। দিন চলে যায়, আমি অন্যমনে, তাঁৰি পথ চেয়ে থাকি বাতায়নে। ওগো সুদূৰ! বিপুল সুদূৰ! তুমি যে বাজাও বিপুল বাঁশৰী; কক্ষ আমাৰ, ৰুদ্ধ দুৱাৰ, সে কথা যে যাই পাসৰি।"[২]

লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাই বঙ্গৰ অন্য এজন কবি মাইকেল মধুসূদন দত্তৰ কবিতাত ৰোমীয় প্ৰভাৱ পৰিলক্ষিত কৰিছে।

২.০৪ উৰ্দু সাহিত্য ঃ

কবিতাৰ ভাব যে বিশ্বভাৱ আৰু বিশ্বমানৱৰ অন্তৰ বিগলিত কৰে সেই কথা লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাৰ অভিভাষণত স্পষ্ট। উক্ত প্ৰসঙ্গতে তেওঁ উৰ্দু কবিতা কেইবাটাও অভিভাষণত তুলি দিছে। একোটা বিশেষ বস্তু বা বিষয়ক আধাৰ হিচাপে লৈও বিশ্বমানৱৰ অন্তৰত যে মৃদু আঘাত কৰিব পাৰে সেইকথা দৃঢ়ভাৱে প্ৰতিপন্ন কৰিছে। পাৰস্য দেশৰ কবি চাদিয়ে তেওঁৰ কবিতাত ছাজাহান বাদশ্যাহৰ জীয়ৰীৰ ৰূপৰ সৌন্দৰ্য বৰ্ণনা কৰি ৰচনা কৰাৰ কথা উল্লেখ কৰিছে। কবিতাৰ বৰ্ণনা অনুসৰি ছাজাহানৰ কন্যাই বোৰ্খা পিন্ধি গোলাপৰ বাগিচাত সোমোৱাত উৰ্দু কবিয়ে কয় যে জাহানাৰৰ মুখখন ইমান কোমল যে ওৰনিৰে মুখখন ঢাকি নিদিয়া হ'লে গোলাপৰ সুবাসো সহ্য কৰিব নোৱাৰে। কবিতাটোৰ জৰিয়তে গাভৰুৰ ৰূপৰ কমনীয়তা, মসৃনতা, আৰু সৌন্দৰ্যময়তাৰ সুন্দৰ প্ৰকাশ ঘটিছে। গোলাপৰ কোমলতা, স্নিগ্ধতা, আৰু সৌন্দৰ্যময়তাই

সকলোকে বিমোহিত কৰে। কমনীয়তা গুণৰ বাবে কাঁইটে আৱৰি ৰাখে যাতে পাহিবোৰ সুৰক্ষিত থাকে। পাৰস্য কবি চাদিৰ কবিতাৰ মাজত জাহানাৰৰ গোলাপতকৈয়ো কোমলতা, স্নিগ্ধতা আৰু নির্মলতাৰ প্রকাশ ঘটিছে। আলসুৰা, কোমল গোলাপৰ সুৰক্ষা কাঁইটে আৱৰি ৰখাৰ দৰে জাহানাৰাৰ ফুল আলসুৰা ৰূপৰ সুৰক্ষা কবচ পাতল ওৰনিখন।

লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাহ উর্দু কবিতাত প্রেমৰ চিত্র ফুটাই তুলিছে এনেদৰে--

" প্রণয়িণীৰ প্রিয়তম বিদেশত। প্রিয়তমক দেখিবলৈ বাট চাই থাকোঁতে প্রণয়িণীয়ে ওচৰতে কাউৰী এটা দেখি কাউৰীটোক সম্বোধন কৰি কৈছে। "হেৰ কাউৰী! তই মোৰ ওচৰলৈ কিয় আহিছ মই জানিছো। মোৰ মৃত্যুকাল সন্নিকট। তই মোৰ মৰা-শটো খাবলৈ আহিছ। খা, মোৰ শৰীৰৰ সকলো মঙহ টানি টানি খা। কিন্তু তোক কাবৌকৈ মাতিছো, মোৰ এটি মিনতি ৰাখিবি- মোৰ সেই মেল খাই থকা চকু দুটি তই নেখাবি, কাৰণ মোৰ প্রিয়তম উভতি আহিলে সেই দুটিয়ে তেওঁক এবাৰ আকৌ প্রাণভৰি দেখিবলৈ পাব।"[৩]

প্রেম স্বর্গীয় অনুভূতি। প্রেমাস্পদৰ অনুপস্থিতিত হৃদয়ৰ ৰিক্ততা, গভীৰ প্রতীক্ষা, মিলন ব্যাকুলতা, নয়নভৰি চোৱাৰ বাসনা, মিলনত ব্যর্থ হৈ মৃতপ্রায় হৈ পৰা আদি মানৱীয় আবেগ অনুভূতিৰ অনুৰণন ব্যক্তিমাত্রৰে থাকে। উর্দু কবিৰ এই কবিতাতো মানৱীয় আবেগ-অনুভূতি স্বাভাৱিক ৰূপত মূর্ত হৈ উঠিছে। এনে হাবিয়াস, এনে আকুলতা, মিলন বাসনা, বিৰহ যন্ত্রণাই জগতৰ মানৱৰ হৃদয় স্পর্শ কৰে। উর্দু কবিতাৰ প্রণয়িণীৰ বুকুত উথলি উঠা বিৰহ কাতৰতাই সমগ্র বিশ্বৰ মানৱৰ অন্তৰ কৰুণতাৰে বিগলিত কৰে। যাৰ বাবে কবিতাটো দেশ কালৰ সীমা অতিক্রম কৰি জগতৰ মানৱৰে হৃদয় আলোড়িত কৰি তুলিছে।

" মই মোৰ প্রিয়তমক বিচাৰি জগতত কত ঘূৰিলোঁ, কত ফুৰিলোঁ! শেহত নাপাই ভাগৰি যেতিয়া ঘৰলৈ আহিলোঁ, দেখোমোৰ সেই বুকুৰ ধন প্রিয়তমে মোৰ, চোতালতে উমলিব লাগিছে।"[৪]

গভীৰ দৃষ্টিভঙ্গীৰে লক্ষ্য কৰিলে দেখা যায় যে উক্ত কবিতাত ঈশ্বৰৰ প্রতি আকুল আকুতি, গভীৰ প্রেম মূর্ত হৈ উঠিছে। জগত স্রষ্টা প্রত্যেকৰে হৃদয়ৰ মাজত লুকাই থাকে। অবিনশ্বৰ, অদৃশ্য ঈশ্বৰক কিন্তু মায়া চকুৰে নেদেখে। যাৰ বাবে বাহ্যিক জগতত ঈশ্বৰৰ অস্তিত্ব বিচাৰি ফুৰে। কিন্তু হৃদয়ৰ সমস্ত অনুৰাগেৰে উপলব্ধি কৰিলে নিজ অন্তৰতে অব্যক্ত ঈশ্বৰক অনুভৱ কৰিব পাৰি। এই কথাই যেন উর্দু কবিতাত ভাস্বৰ হৈ উঠিছে।

২.০৫ অনুবাদৰ ভূমিকা ঃ

বিশ্বসাহিত্যত অনুবাদৰ ভূমিকা অপৰিসীম। পৃথিৱীৰ যিবোৰ দেশ আছে সেই দেশসমূহত অসংখ্য ভাষা-ভাষী, জাতিৰ লোক আছে। প্রত্যেক দেশৰ ভাষা শিকণ আৰু সাহিত্য অধ্যয়ন সম্ভৱ নহয়। কিন্তু জগত সভাত নিজৰ অস্তিত্ব প্রদর্শনৰ বাবে অন্যদেশীয় সাহিত্যৰ সাহিত্য অধ্যয়ন অপৰিহার্য। অন্যদেশীয় সাহিত্যৰ লগত সম্পর্ক অক্ষুন্ন ৰাখিবলৈ অনুবাদ অন্যতম উপায়। অনুবাদে বিশ্বসাহিত্যৰ লগত সংযোগ স্থাপন কৰাত সাঁকোৰ ভূমিকা পালন কৰে। অনুবাদৰ ক্ষেত্রত অসম চহকী। চতুর্দশ শতিকাতে অসমে অনুবাদৰ দিশত খোজ দিয়ে। প্রাচীন অসমীয়া কবিসকলে অনুবাদৰ জৰিয়তে সাহিত্যক বিশ্বমুখী কৰাৰ নিদর্শন দেখুৱাই থৈ যায়। এইসকল কবিয়ে কেৱল সংস্কৃত ভাষাৰ পুথিৰ অনুবাদেই নহয়, সংস্কৃত পুথিৰ পৰা বিষয়বস্তু আহৰণ কৰি মৌলিক কল্পনাৰ সংযোগেৰে অন্যান্য সাহিত্যৰো সৃষ্টি কৰে। অসমীয়া সাহিত্যৰ বিশ্বসাহিত্যৰ লগত সংযোগ সেঁতু স্থাপনৰ অনুবাদ কার্য যে অতি প্রয়োজনীয় সেই কথা তৰুণৰাম ফুকনৰ অভিভাষণত প্রকাশি উঠিছে।

২.০৬ অসমীয়া সাহিত্য ঃ

ভালেমান ফুল মানুহৰ পৰা নিলগত ফুলি নিলগতে মৰহি যায়, মানুহে বননিত অনাঘ্রাত, অস্পর্শ অৱস্থাতে বহু ফুল ফুলি বননিতে মৰহি যোৱাৰ কথাৰ অৱতাৰণা কৰি সভাপতি নগেন্দ্র নাৰায়ণ চৌধুৰীয়ে বহু অসমীয়া সাহিত্য অনাদৰ আৰু প্রচাৰ বিমুখিতাৰ বাবে যে উপযুক্ত মর্যদা আৰু জনপ্রিয়তা নাপায় সেইকথা ব্যক্ত কৰিছে। অন্যথা বিশ্বসাহিত্যত সিবোৰ জাকত জিলিকা হৈ থাকিলহেঁতেন।

নগেন্দ্রনাৰায়ণ চৌধুৰীয়ে স্পষ্টভাৱে কৈছে যে বর্তমান অসমীয়া সাহিত্যিকসকলে তেনে গ্রন্থ ৰচনাৰ ওপৰতহে গুৰুত্ব দিয়া উচিত যিবোৰে স্থান, কাল, পাত্রভেদে সকলো ধর্মৰ নীতি আদর্শক প্রভাৱিত কৰে। সকলো দেশতে আদৰণীয় সাহিত্য ৰচনাৰ ওপৰত তেওঁ গুৰুত্ব দিছে। সকলো দেশৰ লোকৰ অন্তৰ স্পর্শ কৰিব পৰা সাহিত্য

বিশ্বসাহিত্যৰ স্তৰলৈ উন্নীত হয়। জ্ঞানদাভিৰাম বৰুৱাই অসমীয়া সাহিত্য ক্ষেত্ৰত যি অমূল্য সম্পদ আছে সেই সম্পদখিনি ভালভাৱে ৰখাৰ ওপৰত গুৰুত্ব দিছে। তেওঁ কয় যে অসমীয়া সাহিত্যই যেতিয়া জগত সভাত সন্মান লাভ কৰিব পাৰিব তেতিয়াহে সাহিত্যৰ উন্নতি হোৱা বুলি জানিব পৰা যাব। এই কথাই অসমীয়া সাহিত্যই বিশ্ব সাহিত্যৰ লগত ফেৰ মৰাৰ আকাংক্ষাৰ কথাই সূচায় ।

৩.০০ সামৰণি ঃ

পৃথিৱীৰ ভিন্ন প্ৰান্তত ভিন ভিন সমাজ, সংস্কৃতি, আদৰ্শ, ভাব, কল্পনাক নিজ দেশীয় পৰিৱেশত সৃষ্ট নিজ নিজ ভাষাৰ দ্বাৰা উন্নত মানৰ সাহিত্যই বিশ্ব সাহিত্য। সমগ্ৰ বিশ্বৰ সাহিত্যক একেডালি ক্ষীণ সূতাৰ দ্বাৰা গ্ৰথিত হৈ থাকে। এই সূতাৰ আঁতডাল প্ৰত্যেক দেশৰ সাহিত্যই ধৰি ৰখা উচিত। অন্যথা সাহিত্য জগতৰ লগত সম্পৰ্ক বিচ্ছিন্ন হৈ সঙ্কীৰ্ণ হৈ পৰিব আৰু কালৰ সোঁতত লোপ পোৱাৰো সম্ভাৱনা থাকে। অসমীয়া সাহিত্যই জগত সাহিত্যৰ লগত আত্মিক সম্পৰ্ক বজাই ৰখাৰ চেষ্টা অব্যাহত ৰাখিব লাগিব। অসমীয়া সাহিত্যক বিশ্বাসাহিত্যৰ লগত পৰিচয় কৰাই দিব পাৰিলেহে যথাযোগ্য আদৰ লাভ কৰিব। চিৰন্তন মানৱীয় আবেগ, অনুনভূতিৰে সাহিত্যই ৰাষ্ট্ৰীয় একপক্ষীয়তা আৰু সংকীৰ্ণতা আঁতৰাই এক বিৰাট বিশ্বৰ সন্ধান দিয়ে। বিশ্বৰ বিভিন্ন প্ৰান্তৰ সাহিত্যিকৰ মহৎ আৰু উচ্চখাপৰ সাহিত্য ৰচনাৰ আদৰ্শৰে অসমীয়া সাহিত্য ৰচনাৰ ওপৰত জোৰ দিব লাগিব। তেহে অসমীয়া সাহিত্যই বিশ্বসাহিত্যত আপোন বৈশিষ্ট্যৰে মহিমামণ্ডিত হৈ থাকিব। ❑

প্ৰসঙ্গ টোকা ঃ

১. হাজৰিকা,অতুলচন্দ্ৰ সম্পা.অসম সাহিত্য সভাৰ ভাষণাৱলী, দ্বিতীয় ভাগ- পৃ- ৮০
২. হাজৰিকা,অতুলচন্দ্ৰ সম্পা.অসম সাহিত্য সভাৰ ভাষণাৱলী, প্ৰথম ভাগ- পৃ-১২৩
৩. হাজৰিকা,অতুলচন্দ্ৰ সম্পা.অসম সাহিত্য সভাৰ ভাষণাৱলী, প্ৰথম ভাগ- পৃ- ১২৯
৪. হাজৰিকা,অতুলচন্দ্ৰ সম্পা.অসম সাহিত্য সভাৰ ভাষণাৱলী, প্ৰথম ভাগ, পৃ-১২৯

গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

ডেকা, পবিন্দ্ৰঃ পাশ্চাত্য সাহিত্যৰ কথা। গুৱাহাটীঃ চন্দ্ৰপ্ৰকাশ। ২০১৮। মুদ্ৰিত।
দাস,ক্ষুদিৰাম। ৰবীন্দ্ৰ প্ৰতিভাৰ পৰিচয়। কলকাতা ঃ এ.কে মল্লিক । ২০০৯। মুদ্ৰিত।
ভট্টাচাৰ্য, পৰাগ কুমাৰ ঃ প্ৰসঙ্গ বিশ্বসাহিত্য। গুৱাহাটী ঃ বনলতা। ১৯৯২। মুদ্ৰিত ।
মহন্ত, লক্ষ্মীকান্ত ঃ বিশ্বসাহিত্যৰ আভাস । ডিব্ৰুগড় ঃ বনলতা। ১৯৯০ । মুদ্ৰিত ।
শৰ্মা, সত্যেন্দ্ৰনাথ। অসমীয়া সাহিত্যৰ সমীক্ষাত্মক ইতিবৃত্ত । গুৱাহাটীঃ প্ৰতিমা দেৱী, ২০০৪। মুদ্ৰিত ।
হাজৰিকা,অতুলচন্দ্ৰ (সম্পা)। অসম সাহিত্য সভাৰ ভাষণাৱলী । যোৰহাটঃ অসম সাহিত্য সভা।১৯৫৫। মুদ্ৰিত।
---------। অসম সাহিত্য সভাৰ ভাষণাৱলী। শিৱসাগৰঃ শ্ৰীপৰাগধৰ চলিহা। ১৯৫৭। মুদ্ৰিত।

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

প্ৰবন্ধ

ভূপেন হাজৰিকাৰ গীতত শব্দৰ সমাহাৰ

মৰমী চৌধুৰী

অধ্যাপিকাৰ, অসমীয়া বিভাগ
কন্যা মহাবিদ্যালয়
গুৱাহাটী, গীতানগৰ
৮৭২৪০৬১৪৪৭
maramichoudhury1969@gmail.com

সংক্ষিপ্তসাৰ ঃ

বিশ্বৰ দৰবাৰত নিজকে প্ৰতিষ্ঠা কৰা বিশ্ববৰেণ্য ভূপেন হাজৰিকা দৰাচলতে অসাধাৰণ প্ৰতিভাসম্পন্ন ব্যক্তি। তেওঁ একেধাৰে গায়ক, সুৰকাৰ, গীতিকাৰ, বোলছবি পৰিচালক, আবৃত্তিকাৰ, মানৱ প্ৰেমিক, সমাজ সচেতক আৰু প্ৰকৃত দেশপ্ৰেমিক। সমাজৰ প্ৰতিটো স্তৰৰ ব্যক্তিৰ বাবে তেওঁৰ অৱদান অমূল্য হিচাপে বিবেচিত হৈছে।

সমাজ আৰু সংস্কৃতিৰ মাজত থকা সম্বন্ধই ওপজা মাটিৰ পৰা পৃথিৱীৰ ভিন্ন প্ৰান্তৰ আকাশ বতাহ সাহিত্য সংস্কৃতি আকোৱালি লৈ গীত ৰচি গৈছিল হাজৰিকাদেৱে। মানুহৰ প্ৰতি থকা সীমাহীন ভালপোৱাই সেয়েহে ভিন্ন স্তৰৰ মানুহৰ জীৱন সংগ্ৰাম, প্ৰেম আদি সকলো বিষয়ৰে ওপৰত সংগীত সৃষ্টি কৰিবলৈ উদ্বুদ্ধ কৰিছিল তেওঁক।

শব্দ প্ৰয়োগ আছিল তেওঁৰ গীতৰ অনন্য আকৰ্ষণ। সেয়া যেন তেওঁৰ নিজস্ব শৈলী— য'ত আছে কেৱল নতুনত্ব। সহজ আৰু গভীৰ অৰ্থ বুজাবলৈ প্ৰয়োগ কৰা শব্দৰাজিয়ে শ্ৰোতাৰ হৃদয় চুই গৈছে। মানুহৰ চিন্তা চেতনাৰ প্ৰকাশ পায় ভাষাৰ মাধ্যমেৰে। সেই ভাষাৰ ধৰণী হ'ল শব্দ পুঞ্জ। বিভিন্ন ভাষা-ভাষী লোকৰ থলুৱা শব্দৰ ব্যৱহাৰ, তেওঁলোকৰ কৃষ্টিৰ ওপৰত ৰচিত হোৱা হাজৰিকাদেৱৰ গীতবোৰে বৰঅসমৰ কলা কৃষ্টিৰ ডোলডাল যেন কিছু পৰিমাণে হ'লেও মজবুত কৰাত সহায় কৰিছে।

বীজ শব্দ ঃ

ভূপেন হাজৰিকা, ভাষা, শব্দ, গীত।

অৱতৰণিকা ঃ

গণশিল্পী, বিশ্ববৰেন্য শিল্পী, সমন্বয়ৰ পুৰোহিত হিচাপে এক অসাধাৰণ ব্যক্তিত্বৰ গৰাকী ভূপেন হাজৰিকা। সমাজৰ প্ৰতিটো স্তৰৰ লোকৰ বাবে, প্ৰতিটো জাতি-জনগোষ্ঠীৰ বাবে, কিবা নহয় কিবা এক উৎসৱৰ প্ৰতীক ভূপেন হাজৰিকা। মানৱপ্ৰেমী, জাতীয়তাবাদী লোকজন বিশ্বৰ চুকে-কোনে এখন উচ্চ আসন দখল কৰিবলৈ সক্ষম হোৱা লোকজনেই হ'ল ভূপেন হাজৰিকা।

সমাজৰ প্ৰতি থকা দায়িত্ববোধ তেওঁৰ গীতৰ এক অনবদ্য অংগ। নিবনুৱা ডেকাৰ পৰা মাছমৰীয়ালৈ, শিশু-চেনমনীয়াৰ পৰা আৰ্তজনলৈ সকলোৰে মনৰ বেদনাক অনুধাৱন কৰি উৎসাহজনক বাণী বিলাবলৈ সক্ষম হোৱা ব্যক্তিজনেই হ'ল ভূপেন হাজৰিকা। ল'ৰা-বুঢ়া, ডেকা-ডেকেৰীৰ মন মগজুত অনুৰণনৰ সৃষ্টি কৰিব পৰা শক্তি আছে তেওঁৰ গীতৰ মাজত।

অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য ঃ

ভূপেন হাজৰিকাৰ গীতৰ মাজত আছে যেন — অসমীয়া ভাষাৰ শব্দভাণ্ডাৰ। সাম্যবাদ, মাৰ্ক্সবাদ, সমাজ সংস্কাৰ, বৈপ্লৱিক গীত গোৱা তেওঁৰ গীতসমূহত অলেখ শব্দৰ পয়োভৰ ঘটিছে। সৰল আৰু কঠিন শব্দ ব্যৱহাৰ কৰা গীতসমূহ মূলতে তৎসম, অৰ্ধতৎসম, ধ্বন্যাত্মক আৰু যুক্তাক্ষৰযুক্ত শব্দ। তাৰোপৰি দেখা যায় কাৰ্বি শব্দ, ইংৰাজী শব্দ, খাচী, মিচিং, বড়ো-কছাৰী, চাহ-জনগোষ্ঠীয়, নেপালী, অৰুনাচলী, মিজো শব্দৰ ব্যৱহাৰ।

বিভিন্ন জাতি-জনজাতিৰে ভৰপুৰ পুৰণি বৰঅসমৰ সাহিত্য সংস্কৃতি তথা জাতীয় জীৱনত ব্যৱহাৰিত এই শব্দৰাজিৰ ব্যৱহাৰ হোৱা গীতসমূহৰ বিষয়ে সম্যক জ্ঞান আহৰণ কৰাই এই অধ্যয়নৰ মূল উদ্দেশ্য।

অধ্যয়নৰ পদ্ধতি ঃ

বিশ্লেষণাত্মক আৰু বৰ্ণনাত্মক পদ্ধতিৰে আলোচ্য পত্ৰখনি প্ৰস্তুত কৰা হৈছে।

অধ্যয়নৰ উৎস ঃ

গৱেষণা পত্ৰখনি প্ৰস্তুত কৰিবলৈ যাওঁতে মুখ্য আৰু গৌণ সমল হিচাপে তলৰ সমলখিনি ব্যৱহাৰ কৰা হৈছে।

মুখ্য সমল ঃ

✶ ভূপেন হাজৰিকাৰ গীত আৰু জীৱন ৰথ
— ড° দিলীপ কুমাৰ দত্ত

গৌণ সমল ঃ

✶ সাহিত্য আলোচনা
— শ্ৰীত্ৰৈলোক্যনাথ গোস্বামী

✶ লগতে বিভিন্ন আলোচনী, কিতাপ আদিৰ সহায় লোৱা হৈছে।

মূল বিষয়বস্তু বিশ্লেষণ ঃ

'ভাব বা অৰ্থ প্ৰকাশিত হয় শব্দৰ সহায়ত। শব্দ ভাবৰ বাহক — আৰু সাহিত্যৰ বাহ্যিক শৰীৰ। মানৱৰ হৰ্ষ-বিষাদ, যাতনা-বেদনা, আশা-আকাংক্ষা সাহিত্যৰ বুকুত প্ৰতিফলিত কৰিব লাগিলে সেইবোৰ শব্দাশ্ৰয়ী হ'ব লাগে। শব্দহীন ভাবৰ সাহিত্যত প্ৰকাশ ক্ষমতা নাই। বাহ্যিক আৰু অন্তৰ জগতৰ সকলো শব্দৰ মাজেদিয়েই নতুন ৰূপ পায়।'[১]

শব্দৰ প্ৰয়োগ ভূপেন হাজৰিকাদেৱৰ গীতৰ এক অমূল্য সম্পদ। সেয়েহে হয়তো প্ৰতিজন শ্ৰোতাৰ অন্তৰত বাজি থাকে সেই সুৰৰ মূৰ্চনা প্ৰতি পলে পলে, যুগে যুগান্তৰে। হয়তো বিভিন্ন জাতি-জনজাতি আৰু সমাজৰ ভিন্ন চৰিত্ৰৰ প্ৰতিফলন ঘটোৱা সেই শব্দবোৰৰ গূঢ়াৰ্থ বুজি পোৱাত কোনো সমস্যাৰ সৃষ্টি নকৰে। তেখেতে গীতত প্ৰয়োগ কৰা শব্দবোৰক সেয়েহে মূল দুভাগত ভাগ কৰিব পাৰি — সৰল আৰু কঠিন শব্দ। দুয়োবিধ শব্দৰ অগাধ ভাণ্ডাৰ ভূপেন হাজৰিকাদেৱ। ইয়াৰ বাহিৰেও তেওঁ যুক্তাক্ষৰযুক্ত বা দ্বিস্বৰ ধ্বনিবিলাক (কঠিন শব্দ) তেওঁৰ গীতত ব্যৱহাৰ কৰিছিল।

ভূপেন হাজৰিকাৰ গীতত সৰল শব্দৰ ব্যৱহাৰ ঃ

নিজৰ জন্মভূমিক ভালপোৱা, দেশপ্ৰেমী হাজৰিকাদেৱে সৰল শব্দৰে গাইছিল —

"অসম আমাৰ ৰূপহী, গুণৰো নাই শেষ
ভাৰতৰে পূৰ্ব দিশৰ সূৰ্য উঠা দেশ"

(বোম্বাই, ১৯৬৯)

"অসমীৰ আইৰে লালিতা পালিতা
মই তোলনীয়া জী
অসমীৰ সন্মান সদায়ে ৰাখিমে
আৰুনো কওঁ মই কি?

(কলিকতা ১৯৮২)

একেই সৰল শব্দ ব্যৱহাৰ কৰি মানৱদৰদী হাজৰিকাদেৱে আকৌ গাইছিল —

"ৰঙা সেন্দুৰ কাৰ মচা গ'ল"
"মোৰ হে ল'ৰাটিক! এইবাৰ বিহুতে!
নিদিলো সূতাৰে চোলা"

(গুৱাহাটী, ১৯৫৩)

"মানুহে মানুহৰ বাবে! যদিহে অকনো নেভাবে"

(ভাষা আন্দোলন, ১৯৬০-৬১)

"শীতৰে সেমেকা ৰাতি!শীতৰে সেমেকা ৰাতি"

(১৯৭০)

অতি নিমজ বা সৰল শব্দ প্ৰয়োগেৰে প্ৰেম অন্বেষণৰ শ্ৰুতিমধুৰ বিষাদৰ 'প্ৰেমগীত' বোৰে শ্ৰোতাৰ অন্তৰত গুঞ্জৰিত হৈ আছে যুগে যুগে।

"আকাশী গঙ্গা বিচৰা নাই
নাই বিচৰা স্বৰ্ণ অলংকাৰ"

(খাৰঘুলি, ১৯৫৩)

"তোমাৰ দেখো নাম পত্ৰলেখা" গীতৰ জৰিয়তে আকৌ প্ৰেমিকাৰ প্ৰতি অভিমান ব্যক্ত কৰিছে আৰু সোৰৰাই দিছে —

"মোৰ চিত্ৰ নাট গীত কবিতাত
বিচাৰিলে পাবা চাগৈ পুৰণা ঠিকনা"

আন এটি প্ৰেমৰ কবিতাত আকৌ অতি সহজ শব্দৰ ব্যৱহাৰেৰে প্ৰকাশ কৰিছে মনৰ ভাব —

"মোৰ মৰমে মৰম বিচাৰি যায়
বাৰিষাৰ কেঁচা বানে!মোৰেই"

(গুৱাহাটী, ১৯৪৮)

হাজৰিকাদেৱ আছিল গণশিল্পী। সমাজৰ প্ৰতি থকা দায়বদ্ধতা আছিল অপৰীসীম —

"মেঘে গিৰ গিৰ কৰে !আহা মেঘে হিৰ হিৰ কৰে
এজাক যেন বৰযুণ আহো আহো কৰে"

(গুৱাহাটী, ১৯৮২)

অসমীয়া নিবনুৱা যুৱকক অনুপ্ৰাণিত কৰিবলৈ, সহজ সৰল শব্দ ব্যৱহাৰ কৰি তেখেতে গাইছিল —

"অটো ৰিক্সা চলাও, আমি দুয়ো ভাই"

(গুৱাহাটী, ১৯৬৮)

উচ্চাৰণৰ ক্ষেত্ৰত সদা সচেতন, হাজৰিকাদেৱে সহজ তথা সৰল শব্দৰ ব্যৱহাৰেৰে অলেখ গীতৰ সৃষ্টি কৰি গৈছে আৰু অসমীয়া জনজীৱনত উল্লেখনীয় বৰঙণি যোগাইছে। যাৰ বাবে অসমীয়া জনজীৱনত ইয়াৰ প্ৰভাৱ অতুলনীয় হিচাপে বিবেচিত হয়।

"ভূপেন হাজৰিকাই 'অগ্নিযুগৰ ফিৰিঙতি মই', 'কপি উঠে কিয় তাজমহল', 'স্নেহেই আমাৰ শত শ্ৰাৱণত', 'সুৰ নগৰীৰ সুৰ বলীয়া মই' আদি গীতেৰে কেৱল যে সকলোৰে অন্তৰ জয় কৰিলে এনে নহয়, সেই গীতবিলাকৰ গীতিব্যঞ্জক শব্দ, ভাৱপূৰ্ণ মধুৰ ভাষা, আশাপূৰ্ণ দৃষ্টিভংগী আৰু কোমল সুৰে অসমীয়া সমাজত যে এজন অতি পাৰদৰ্শী গায়ক-গীতিকাৰ উদ্ভৱ হ'ল তাৰ সংকেত দিলে।"[২]

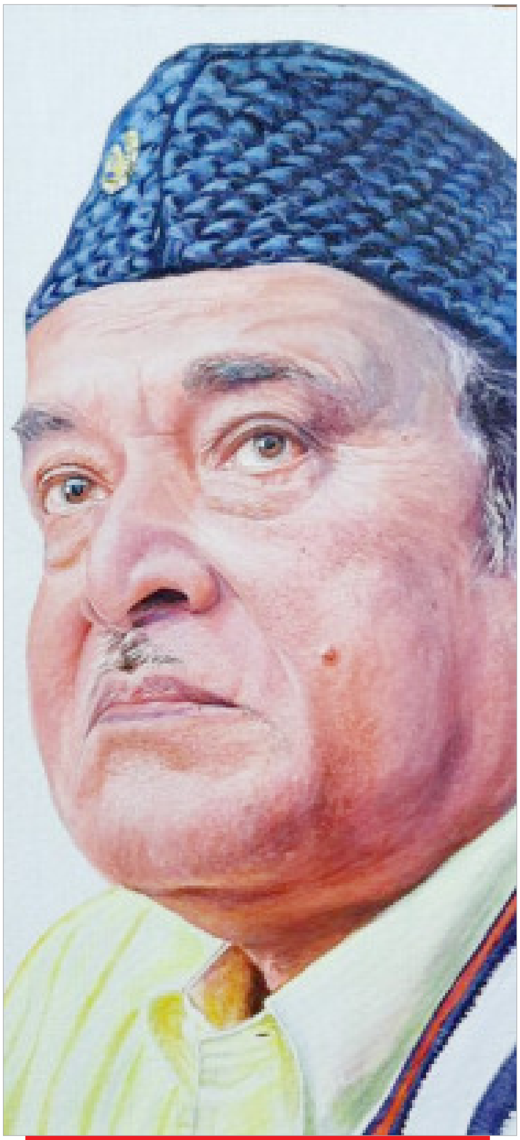

ভূপেন হাজৰিকাৰ গীতত কঠিন শব্দৰ ব্যৱহাৰ ঃ

কোনো গভীৰ বিষয়বস্তুৰ গুৰুত্ব বুজাবলৈ কঠিন শব্দ প্ৰয়োগ ভূপেন হাজৰিকাৰ এক অন্যতম আহিলাস্বৰূপ।

সমাজ সচেতক ভূপেন হাজৰিকাই নিজৰ ক্ৰোধিত মনৰ প্ৰকাশ ঘটাইছিল এনেদৰে।

বিস্তীৰ্ণ পাৰৰে !অসংখ্য জনৰে! হাহাকাৰ শুনিও নিঃশব্দে নিৰৱে! বুঢ়া লুইত তুমি! বোৱা কিয়?

(কলিকতা, ১৯৫৫)

কঠিন শব্দৰ প্ৰয়োগেৰে বুঢ়া লুইতো তেওঁৰ প্ৰশ্নবানৰ পৰা সাৰি যাব পৰা নাই।

তেওঁ আছিল এক বিপ্লৱী সৈনিক, সেয়েহে তেওঁ গাইছিল—

"তপ্ত তীখাৰে !অগ্নিশক্তি !ৰক্তবৰ্ণ !মুক্তি পিয়াসী !
সুপ্ত মানুহৰ ! বক্ষতীখা হৈ গলে এ গলিলে !
জনতাতন্ত্ৰৰ ! সাজি ললো অস্ত্ৰ !আৰ্তনাদ...." আদি

নৰকংকালৰ অস্ত্ৰ, ধৰ্ম ব্যৱসায়ী, অস্পৃশ্যতাৰ মহাদানব আদি কঠিন শব্দবোৰ প্ৰতিকী অৰ্থত ব্যৱহাৰ কৰি এখন নতুন সমাজ, এখন নতুন অসম গঢ়াৰ মানসিকতাৰে তেও গাইছিল—

"অগ্নিযুগৰ ফিৰিঙতি মই !নতুন অসম গঢ়িম।"
"সৰ্ব্বহাৰাৰ সৰ্ব্বস্ব !পুনৰ ফিৰাই আনিম" আদি
(১৯৪৮, চিৰাজ)

অপূৰ্ব শব্দৰ ব্যৱহাৰেৰে তেওঁ গাইছিল—

"ধ্বংসমূখী দৃষ্টিভংগী ! কিম্বা মনোমালিন্য"
"সেয়া নহয় মোৰ গানৰ লক্ষ্য ! লক্ষ্য শান্তি অনন্য"
(১৯৬৯, কলিকতা)

জাগ্ৰত জনতাক উদ্বুদ্ধ কৰি অহিংস পথেৰে আগুৱাই লৈ যোৱাত সফল হৈছিল তেওঁ।

"মুক্তিকামী লক্ষজনৰ, মৌন প্ৰকাশ শুনিছনে নাই।"
(১৯৭৭, কলিকতা)

"আজি ব্ৰহ্মপুত্ৰ হল বহ্নিমান"
(১৯৭৯, অসম আন্দোলন)

"ভাঙ্ ভাঙ্ ভাঙ্ ভাঙোতা শিল ভাঙ্"
(১৯৫৩, গুৱাহাটী)

মুঠতে ক'বলৈ হ'লে কঠিন শব্দৰ প্ৰয়োগে তেওঁৰ গীতৰ মাত্ৰা এখোপ ওপৰলৈ লৈ গৈছে।

হাজৰিকাৰ গীতত ব্যৱহৃত হোৱা বাচকবনীয়া শব্দই মন মগজুত অনুৰণনৰ সৃষ্টি কৰিব পৰা ক্ষমতা বিদ্যমান কিছু শব্দৰ ব্যৱহাৰ এনেধৰণৰ—

তৎসম শব্দ ঃ সৰ্ব, স্নেহ, মুক্তি, মুক্ত, সৃষ্টি, অজস্ৰ, উন্মত, প্ৰতাপ, কণ্ঠৰুদ্ধ, তৃষ্ণা, নিৰ্লজ্জ, সহস্ৰ, উত্তাপ, ত্ৰাস, বধিৰ, অগ্ৰগামী, শৃগাল, জাগ্ৰত, অগ্নিপিণ্ড, জ্বালাময়ী, ব্যৰ্থ।

অৰ্ধতৎসম ঃ থান, থাপিলা, সোনালী, চেনেহ, শুকুলা, ধৰম, শতৰু আদি।

দ্বিৰুক্তিবাচক ঃ জিকমিক, ঘনে ঘনে, গুপুতে গুপুতে, মিঠা মিঠা, ছিৰাছিৰি, হায় হায়, তিলতিল, মিচ্কি মাচ্াক আদি।

যুক্তাক্ষৰ যুক্ত শব্দ ঃ সমন্বয়, অগ্নিপিণ্ড, বিস্তীৰ্ণ, বিমুৰ্ত্ত, স্খলন, সহস্ৰ, নিশ্বাস, ব্ৰহ্মপুত্ৰ,সৃষ্টি আদি।

ঠাচ প্ৰকাশক শব্দ ঃ ন-বোৱাৰী, দেউ, ৰমক-জমক, আলফুলীয়া, কান্দি কাতি, পেটত গামোচা বান্ধি, দপ্ দপ্ অগনি, ফটা কঁথা, সেন্দুৰী আলি, ধপ্ ধপ্ বুকু, নঙঠা পিঠি, তিল্ তিল্ মৃত্যু, অজীন-পাতকী ইত্যাদি।

হাজৰিকা দেৱে গীতৰ মাজে মাজে কিছুমান ইংৰাজী শব্দও ব্যৱহাৰ কৰিছিল। যেনে—

ইংৰাজী শব্দ ঃ

ডিগনিটী অব লেবাৰ, ইয়াৰ, বেকাৰ, টেকনিক, বি-ই, ফেল, এম-এ, পাৰ্মিট, কমপ্লেক্স, পেচেঞ্জাৰ প্ৰফেচাৰ, ছাবজেক্ট, ফিফথ, ছিগনেল।

আৰবী শব্দ ঃ

"আজিৰ ঈদ মজলিচতে" গীতত ব্যৱহাৰ হোৱা আৰবী শব্দবোৰ এনেধৰণৰ—

ৰমজান, ঈদ, মেহফিল, মজলিছ, ৰহিম, ইনচানিয়ত, ইছলাম, আকবৰ, মক্কা, কোৰাণ ইত্যাদি।

ফাৰ্চী শব্দ ঃ

তৈয়ব, মোহব্বত, ৰোজা।

"লোকপ্ৰিয় বৰদলৈৰ মৃত্যুৰ পাচত আন্তৰিকভাৱে পৰ্বত ভৈয়ামৰ সম্প্ৰীতিৰ কাৰণে ড° ভূপেন হাজৰিকাৰ দৰে আন কোনো অসমীয়া নেতাই কেতিয়াও খটা নাই। পৰ্বত ভৈয়াম সম্প্ৰীতিৰ অবিহনে অসমৰ শ্ৰীহানি হ'ব বুলি আৰু অসমৰ সমাজ সচেতক ভূপেন হজাৰিকাই কৈ থৈ গ'ল সমাজ সচেতনতা, সামাজিক দায়বদ্ধতা আৰু মানৱতাৰ কথা।" ৩

ভূপেন হাজৰিকাৰ গীতত বৰ অসমৰ বিভিন্ন জনগোষ্ঠীয় সমাজ জীৱনৰ প্ৰতিফলন, তেওঁৰ গীতৰ কলিতেই ইয়াৰ প্ৰকাশ ঘটিছে।

নানা জাতি-উপজাতি/ৰহনীয়া সৃষ্টি/আঁকোৱালি লৈ হৈছিল সৃষ্টি/এই মোৰ অসম দেশ/বিভেদ পৰিহৰি/নিজ হাতে শ্ৰম কৰি/দেশক নগঢ়িলে/এই দেশ হ'ব নিঃশেষ/ আৰু মনবোৰও ভাগি ছিগি যাব/আজিৰ অসমীয়াই নিজক

নবচালে অসমতে মগনীয়া হ'ব।

বিভিন্ন জাতি, জনগোষ্ঠীৰ সংস্কৃতিৰ প্ৰতিফলন ঘটা কিছু গীতৰ অংশ বিশেষ উনুকিয়াইছো।

বড়ো-কছাৰী জনগোষ্ঠীৰ শব্দ ঃ

তেওঁৰ 'বৰদৈচিলা নে সৰুদৈচিলা নে' গীতটোত বড়ো ভাষাত 'বৰদৈচিলা' শব্দৰ অৰ্থ ব্যাখ্যা কৰিছে এনেদৰে বৰদৈচিলাৰ 'বৰ' মানে বতাহ/'দৈ' মানে পানী/ চিখলা মানে হ'ল গোসানীজনী।

মিচিং জনগোষ্ঠীৰ শব্দ ঃ

ৰজনীকান্ত বৰদৈৰ 'মিৰি জীয়ৰী' উপন্যাসৰ প্ৰসংগত ৰচিত গানৰ জৰিয়তে তেওঁ মিচিং সমাজৰ প্ৰগতি আৰু অন্যান্য সম্প্ৰদায়ৰ স'তে সম্প্ৰীতি কামনাৰে গাইছে।

"এ জংকি পানেইৰ মিচিং সমাজ!
নিজেই দিচাং আবুং হৈ
অসমীৰে বৰ লুইতৰ সোঁতটি বঢ়াব!
মৰমৰহে এই যুগটি"

(১৯৬৩, দিচাংমুখ)

ৰিবি গাচেং, আবুং দুমেৰ, গোংগাং এগে, মিবু গালুক, মিচিং শব্দৰ ব্যৱহাৰ হৈছে তেওঁৰ গীতত।

কাৰ্বি জনগোষ্ঠীৰ শব্দ ঃ

১৯৮২ চনত ৰচনা কৰা 'ডিফু হল তোমাৰে নাম' গীতৰ মৰ্মাৰ্থ প্ৰকাশ কৰিছে এনেধৰণে—

"শুৰলা কাৰবি ভাষাত হে ! কাৰবি মানে পাহাৰ!
আৰ্লেং মানে মানুহ! আৰু স্বজাতি আমাৰ হে।
কাৰতে পোহৰ আৰু বি মানে কৰ্ম
কাৰবি জাতিৰ আদৰ্শ হ'ল !কৰ্ম মানে ধৰ্ম"

(১৯৮২, ডিফু)

চাহ জনগোষ্ঠীৰ শব্দ ঃ

ভাৰতবৰ্ষৰ ভিন ভিন প্ৰান্তৰ প্ৰব্ৰজিত হোৱা অসমীয়া কলা-সংস্কৃতিক আকোৱালী লোৱা সহজ সৰল চাহ জনগোষ্ঠীৰ পৰম্পৰাগত উছৱ পৰৱত আনন্দৰ জোৱাৰ সৃষ্টি কৰা পৰিৱেসৰ সামঞ্জস্য ৰাখি তেওঁ গাইছিল—

"ৰাধাচূড়াৰ ফুল গুঁজি ৰাধাপুৰৰ ৰাধিকা"— এই গীতত জুগুনু, মাদল, লছমী, ঝুমুৰ, ফটিকা, ছোট বড়ো আদি শব্দৰ প্ৰয়োগ ঘটিছে।

(১৯৬৯, নিজৰাপাৰ)

তাৰোপৰি "চামেলি মেমচাহাব" কথাছবিত শব্দৰ ব্যৱহাৰ এনেধৰণৰ—

ধৰব পাহি, চাহেলী, ছোটো, লাল-লাল, গো, আশ্বিন, মাসে, টাঁকেৰ, মাঝে, ছাড়ে, ৰইল, হাঁসি ইত্যাদি।

খাচী জনগোষ্ঠীৰ শব্দ ঃ

"খুব্‌লেই শ্বিবুন", "দুয়োটি বাঁহী বাঁহৰে বাঁহী" গীতত ব্যৱহাৰ কৰা খাচী শব্দৰ প্ৰয়োগ

লিয়েং মাকাও
....
....
তাতে ডিয়েংচিয়ে পাতৰ ৰং সানিছা!
....
....
তেওঁৰ জেইনচেম খনি বিজুলীৰে বোৱা!
খুবলেই শ্বিবুন।

জেইনচেম, খুবলেই, শ্বিবুন, ব্লেই, লিংডো, নংপো, লিয়েনমাকাও, শ্বৰাতি।

অৰুণাচলৰ জনগোষ্ঠীৰ শব্দ ঃ

১৯৬১ চনত ৰচনা কৰা "চিয়াঙৰে গালং..." গীতত আপাটানী, খামতি, গালং, মনপা নকটেই, টাংছা, চৰধুক্‌কেন, পদম্ আদি অৰুণাচলী শব্দৰ লগতে উত্তৰ-পূবৰ বিভিন্ন জাতি-জনজাতিৰ মাজৰ সম্পৰ্ক সুন্দৰকৈ প্ৰতিফলিত হৈছে।

"টিৰাপৰে বস্তি চাংলাং !তাতে সৰল জনজতি লুংচাং
সৌৱা টিৰাপ নৈৰ বুকুৰে !বাহৰ ওলোমা সাঁকোৰে
টাংচা খেতিয়ক পাৰ হৈ!সৌৱা দেখোঁ দলে দলে নামিছে
পিঠিত হোৱা লৈ- নামিছে..."

(১৯৬১, অৰুণাচল)

মিজো জনগোষ্ঠীৰ শব্দ ঃ

"মিজোৰাম ঃ তোমাক নমস্কাৰ" গীতত গাইছে—
"তাইৰ হাতে বোৱা 'গোৱান' মেখেলাতে
ৰঙা নীলা আশা ভৰা ফুল ফুলিলে
তাইৰ বক্ষৰ 'কৰচেই' চোলাতেই
শুকুলা মেঘে কিবা ফুল বাছিলে"

(১৯৬৮, মিজোৰাম)

গীতটিত- পাংকপাৰ, চেইৰো আদি লোক নৃত্যৰ কথা, মিজোৰামৰ বিভিন্ন জাতি জনজাতি যেনে— মিজো, হমাৰ, পৈ, লাখেৰ, কুকি আদি কথাৰো উল্লেখ আছে।

তেখেতে “ৰংপুৰ তোমাৰ নাম” গীতত কৈছে—

“ভাষা সাহিত্যৰ ক'ত কথাকে লিখিম
জনজাতিৰ ভাষাৰ দান কিমান বখানিম হে।
বড়ো তিৱা হাজং ৰাভা এ দেউৰী মণিপুৰী
তাই ভাষাই অসমীয়াক ৰাখে দৃঢ় কৰি হে।”

উপসংহাৰ ঃ

আজীৱন গীতৰ মাজতে আবদ্ধ ৰাখি, বৰ অসমৰ ভিন্ন জাতি-জনজাতিৰ মাজত সমন্বয়ৰ বতৰা বিলাই গ'ল তেওঁ। বিভিন্ন জাতি জনগোষ্ঠীৰ মাজৰ পৰা তেওঁলোকে ব্যৱহাৰ কৰা শব্দৰাজি বিভিন্ন গীতৰ যেগেদি প্ৰকাশ কৰি অসমীয়া শব্দৰ ভৰাল টনকিয়াল কৰি গ'ল। ল'ৰাৰ পৰা বুঢ়ালৈ, কৃষকৰ পৰা মাছমৰীয়ালৈকে সকলোৰে বাবে গোৱা গীতবোৰ আকৰ্ষনীয় ৰূপত সকলোৰে মনত খাপ খুৱাই গ'ল। ❑

পাদটীকা ঃ

১। শ্ৰীত্ৰৈলোক্য নাথ গোস্বামী — সাহিত্য আলোচনা, পৃষ্ঠা-১
২। ড° দিলীপ কুমাৰ দত্ত — ভূপেন হাজৰিকাৰ গীত আৰু জীৱন ৰথ, পৃষ্ঠা-৩৮
৩। ড° দিলীপ কুমাৰ দত্ত — ভূপেন হাজৰিকাৰ গীত আৰু জীৱন ৰথ, পৃষ্ঠা-১৭৬

সহায়ক গ্ৰন্থ ঃ

১। গোস্বামী, শ্ৰীত্ৰৈলোক্য নাথ ঃ- সাহিত্য আলোচনা, বাণী প্ৰকাশ, পঞ্চম সংস্কৰণ ১৯৮৮
২। গোস্বামী, লোকনাথ ঃ- বন্দিত ভূপেন দা নিন্দিত ভূপেন হাজৰিকা, আক-বাক, গুৱাহাটী, দ্বিতীয় প্ৰকাশ ২০০৯
৩। দত্ত, দিলীপ কুমাৰ ঃ- ভূপেন হাজৰিকাৰ গীত আৰু জীৱন ৰথ, বনলতা, পাণবজাৰ, পঞ্চম সংস্কৰণ, ২০১১
৪। দলে, হেমচন্দ্ৰ ঃ- লোখগুৱালাৰ দাদা ভূপেন হাজৰিকা সান্নিধ্য সোঁৱৰণ, বিস্ময় প্ৰকাশন, লখিমী পথ, প্ৰথম প্ৰকাশ ২০১৫

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

প্ৰবন্ধ

অসমৰ টেটোন শ্ৰেণীৰ সাধুকথা ঃ নিংনি ভাৰৰীয়াৰ সাধুকথাৰ বিশেষ উল্লিখনসহ

ব্ৰজেন বৈশ্য
গৱেষক ছাত্ৰ, অসমীয়া বিভাগ
গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয়
৯১০১৭০০১৯৩
bbaishya61@gmail.com

ড° উপেন ৰাভা হাকাচাম
অধ্যাপক, অসমীয়া বিভাগ
গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয়
৮৬৩৮৬৫৯৫৫৬

সংক্ষিপ্তসাৰ ঃ

সাধুকথা হৈছে লোককথাৰ এটা অন্যতম ভাগ। ই হৈছে এবিধ গদ্যধৰ্মী লোককথা। ইংৰাজী 'Folktale'ৰ অসমীয়া পৰিভাষা হিচাপে সাধুকথা শব্দটো ব্যৱহাৰ কৰা হয়। শদিয়াৰপৰা ধুবুৰীলৈ অসমৰ সৰ্বত্ৰতে সাধুকথাৰ প্ৰচলন আছে। সাধুকথাক বিভিন্ন জাতি-জনজাতিৰ লোকে বেলেগ বেলেগ নামেৰে নামকৰণ কৰা দেখা যায়। কামৰূপ অঞ্চলত সাধুকথাক 'সাজো-কথা', দৰঙ অঞ্চলত 'উপকথা', চাহ জনগোষ্ঠী লোকৰ মাজত 'খিৰিচা', কাৰ্বিসকলৰ ভাষাত 'তম্ আলুন' ইত্যাদি বিভিন্ন নামেৰে সাধুকথাক জনা যায়। সাধুকথাৰ বিষয়বস্তু, ভাব, চৰিত্ৰাদিৰ ওপৰত ভিত্তি কৰি বিভিন্নজনে সাধুকথাক বিভিন্ন ভাগত ভাগ কৰিছে। তাৰ ভিতৰত সাধুকথাৰ এটা প্ৰধান ভাগ হৈছে টেটোন বা টেণ্টন শ্ৰেণীৰ সাধুকথা। ইংৰাজী 'Trick star Tale'ৰ পৰিভাষা হিচাপে অসমীয়া ভাষাত টেটোন বা টেণ্টন শ্ৰেণীৰ সাধুকথা পৰিভাষাটো ব্যৱহাৰ কৰা হয়। টেটোন বা টেন্টন শ্ৰেণীৰ সাধুকথাৰ মুখ্য চৰিত্ৰটোৱে নিজৰ অভীষ্ট কামনা সিদ্ধিৰ বাবে আন চৰিত্ৰক ঠগায় বা প্ৰতাৰণা কৰে। এই শ্ৰেণী সাধুকথাৰ মুখ্য চৰিত্ৰটো অত্যন্ত জেদী, চৰিত্ৰটোৱে সমাজৰ অন্যান্য লোকক নিজৰ ক্ৰিয়া-কলাপৰ যোগেদি হাস্যৰস প্ৰদান কৰে। প্ৰত্যুৎপন্নমতি গুণসম্পন্ন টেটোনে কাৰ্যৰ ভাল-বেয়া, উচিত-অনুচিত আদি দিশ বিচাৰ নকৰে। এই শ্ৰেণীৰ সাধুকথাত কেৱল মানুহেই নহয়, জীৱ-জন্তু আদিয়েও টেটোনৰ ভূমিকা পালন কৰে। অসমত প্ৰচলিত তেনে কেইটামান উল্লেখযোগ্য টেটোনৰ সাধুকথা হ'ল – 'টেটোন', 'টেটোন তামুলী', 'টামন আৰু টেণ্টন', 'টেণ্টনপুৰৰ টেণ্টন', 'শিয়াল পণ্ডিত','শিয়াল আৰু ঘঁৰিয়াল', 'শিয়াল আৰু বাঘ', 'বুঢ়া-বুঢ়ী আৰু শিয়াল', 'বান্দৰ আৰু শিয়াল', 'বামুণৰ বহুৱা' আদি। ভাৰতবৰ্ষৰ আন আন ঠাইৰ টেটোনধৰ্মী চৰিত্ৰ বীৰবল, তেনালি ৰাম, গোপাল ভাঁড় আদিৰ দৰে অসমৰ নিংনি ভাৰৰীয়াও এক অন্যতম টেটোনধৰ্মী চৰিত্ৰ। অসমৰ বৰপেটা জিলাৰ মাজৰহাটীত জন্ম গ্ৰহণ কৰা টেটোন নিংনি ভাৰৰীয়াৰ সাধুকথাবোৰ লোকসমাজত মৌখিক ৰূপত প্ৰবাহিত হৈ আছে। আমাৰ এই আলোচনাত টেটোন শ্ৰেণীৰ সাধুকথাৰ প্ৰকৃতি বা

বৈশিষ্ট্যৰ সাধাৰত অসমত প্ৰচলিত টেটোন শ্ৰেণীৰ সাধুকথাৰ লগতে বিশেষভাৱে নিংনি ভাৰৰীয়াৰ সাধুকথাৰ বিষয়ে আলোচনা কৰা হ'ব।

বীজ শব্দ ঃ নিংনি ভাৰৰীয়া, টেঙৰালি, টেটোন, প্ৰত্যুৎপন্নমতি, বুদ্ধিমত্তা, সাধুকথা

০.০ অৱতৰণিকা

লোক সংস্কৃতিৰ পৰিসৰ অত্যন্ত বিশাল। লোক সংস্কৃতিৰ বিশাল পৰিসৰৰ ভিতৰত লোক সাহিত্য, সামাজিক লোকচাৰ, ভৌতিক সংস্কৃতি আৰু লোক পৰিবেশ্য কলা- এই চাৰিটা ক্ষেত্ৰ অন্তৰ্গত। এই প্ৰধান চাৰিটা ক্ষেত্ৰৰ ভিতৰত লোক সাহিত্য অন্যতম। লোক সাহিত্য হ'ল জনসাধাৰণৰ মুখে মুখে পৰম্পৰাগতভাৱে প্ৰচলন হৈ অহা এক ব্যক্তি নিৰপেক্ষ সাহিত্য। লোক সাহিত্য লোকসমাজৰ দলিল স্বৰূপ। "ৰূপ বা অৱয়বৰ ফালৰপৰা বাচিক কলা বা লোকসাহিত্য কেইটামান উপশ্ৰেণীত বিভক্ত। যেনে ঃ (ক) লোক সাহিত্য (খ) গদ্যধৰ্মী লোক কথা (গ) লোকভাষা (ঘ) প্ৰবাদ-প্ৰটন্তৰ-প্ৰবচন আৰু (ঙ) সাঁথৰ বা দিস্তান।" (শৰ্মা, ২০১৪,পৃ.৪৮) লোকসাহিত্যৰ এই উপশ্ৰেণীবোৰৰ ভিতৰত এটা অন্যতম উপশ্ৰেণী হৈছে গদ্যধৰ্মী লোককথা। 'লোক' আৰু 'কথা' এই দুই পদ লগ লাগি 'লোককথা' অভিধাটো গঢ় লৈ উঠিছে। লোকসমাজৰ মাজত মৌখিকভাৱে প্ৰচলিত কথা বা কাহিনীকে চমুকৈ লোককথা বুলি জনা যায়। লোককথা গদ্য আৰু পদ্য উভয় ৰূপত বৰ্ণিত যদিও ইয়াত গদ্যাংশৰ ভূমিকা অধিক। লোককথাত পদ্যাংশই গদ্যাংশক আগবঢ়াই নিয়াত সহায় কৰে। মানুহৰ গল্প কোৱা আৰু শুনা স্বাভাৱিক প্ৰবৃত্তিৰ ফলস্বৰূপে লোককথাৰ জন্ম হৈছে। বিষয়বস্তু, ৰূপ-বৈচিত্ৰ্য আদিলৈ লক্ষ্য কৰি লোককথাক বহলভাৱে প্ৰধানতঃ তিনিটা ভাগত ভাগ কৰিব পৰা যায়। সেই ভাগ তিনিটা হ'ল—

(ক) পুৰাণ কথা বা পুৰা কথা বা পুৰাবৃত্ত বা গোসাঁই কথা, আখ্যান, অতিকথা (myth)।

(খ) জনশ্ৰুতিমূলক বা জনশ্ৰুতিগত কথা বা কাহিনী (Legend) উপাখ্যান।

(গ) সাধুকথা, সাধু, সাজোকথা, উপকথা, উককথা, কিচ্ছা, কাহিনী (Tale) ।(শৰ্মা, ২০১১, পৃ.১৬৫) লোককথাৰ এই ভাগ তিনিটাৰ ভিতৰত এটা অন্যতম ভাগ হৈছে সাধুকথা। সাধুকথাক ইংৰাজীত 'Folk Tale' বুলি কোৱা হয়। সাধুকথা হৈছে জনসাধাৰণৰ মুখে মুখে প্ৰচলন হৈ অহা এক প্ৰকাৰ গদ্যধৰ্মী লোককথা। অতি প্ৰাচীন কালৰেপৰা সাধুকথাবোৰ পৃথিৱীৰ বিভিন্ন দেশত মৌখিক ৰূপত প্ৰচলিত হৈ আহিছে। প্ৰাচ্য আৰু পাশ্চাত্য উভয় দেশতে সাধুকথাৰ প্ৰচলন দেখা যায়। প্ৰাচ্যৰ দেশবোৰৰ ভিতৰত ভাৰতবৰ্ষত সাধুকথ্যৰ প্ৰাচুৰ্য্য লক্ষণীয়। সমগ্ৰ ভাৰতবৰ্ষ লোককথা বা সাধুকথাৰ ভূ-স্বৰ্গস্বৰূপ। 'জতকৰ সাধু', 'পঞ্চতন্ত্ৰৰ সাধু','হিতোপদেশৰ সাধু' আদি হ'ল প্ৰাচীন ভাৰতীয় সাধুকথাৰ নিদৰ্শন। পাশ্চাত্যৰ দেশবোৰৰ ভিতৰত গ্ৰীচ দেশত প্ৰাচীন লোককথা সংগ্ৰহৰ নিদৰ্শন পোৱা যায়। গ্ৰীচ দেশৰ ঈচপ নামে কোনো এক লোকৰ নামত থকা 'ঈচপৰ সাধু'-ৰেই হ'ল গ্ৰীচৰ প্ৰাচীনতম লোককথা সংগ্ৰহৰ

নিদৰ্শন। ভাৰতবৰ্ষকে আদি কৰি গ্ৰীচ, মিচৰ আদি বিভিন্ন দেশত প্ৰাচীন লোককথা সংগ্ৰহৰ নিদৰ্শন পোৱা যায় যদিও সিবোৰ প্ৰণালীবদ্ধভাৱে সংকলিত সাধুকথা বা লোককথা নাছিল। জাৰ্মান দেশৰ দুই ভাতৃ জেকব গ্ৰিম আৰু উইলিয়াম জেকবে ১৮১২ চনত জাৰ্মান দেশীয় লোককথাবোৰ সংগ্ৰহ কৰি 'House Hold Tales' নামেৰে ১৮১২ চনত সাধুকথাৰ দুটা খণ্ড প্ৰকাশ কৰে। গ্ৰিম ভাতৃদ্বয়ে সংকলন কৰা 'গ্ৰিম ফেইয়াৰি টেইলচ্' খ্যাত লোককথাবোৰেই হ'ল পৃথিৱীৰ প্ৰথম বিজ্ঞানসন্মত লোককথা বা সাধুকথা। গ্ৰিম ভাতৃদ্বয়ৰ পৰৱৰ্তী কালত সম্প্ৰতি বিশ্বৰ চুকে-কোনে সিঁচৰতি হৈ থকা সাধুকথাবোৰ বিভিন্নজনে বিজ্ঞানসন্মতভাৱে সংগ্ৰহ তথা সম্পাদনা কৰা পৰিলক্ষিত হৈছে।

বিশ্বৰ বিভিন্ন প্ৰান্তৰ দৰে ভাৰতবৰ্ষ তথা অসমতো সাধুকথাৰ সংগ্ৰহ তথা সম্পাদনা কাৰ্য পৰিলক্ষিত হয়। সাধুকথাৰ ক্ষেত্ৰত অসম হৈছে এক চহকী ৰাজ্য। অসমৰ বিভিন্ন জাতি-উপজাতিৰ মাজত সাধুকথাৰ প্ৰচলন আছে। অসমৰ কামৰূপ অঞ্চলৰ লোকে সাধুকথাক 'সাজোকথা' বুলি কয়। সেইদৰে দৰং অঞ্চলৰ লোকে 'উপকথা', 'উককথা' বা 'গোসাঁই কথা', চাহ জনগোষ্ঠীয় লোকে 'খিৰিচা', কাৰ্বিসকলে 'তম্ আলুন', বঙালীসকলে 'ৰূপকথা' বা 'আযাৰে গল্প' ইত্যাদি বিভিন্ন নামেৰে সাধুকথাক নামকৰণ কৰা দেখা যায়। ৰূপ- বৈচিত্ৰ্য, বিষয়বস্তু আদিৰেও অসমত প্ৰচলিত সাধুকথাবোৰ বৈশিষ্ট্যপূৰ্ণ। অসমত অৰুণোদয় যুগতে সাধুকথা সংগ্ৰহ তথা সম্পাদনাৰ বীজ ৰোপিত হয়। অৰুণোদয় কাকতত প্ৰকাশিত সাধুকথাবোৰ হ'ল— 'বাইবেলৰ সাধু', 'বুঢ়া আৰু যুদ্ধ নায়ক', 'মাউৰী ছোৱালী', 'ঈগলৰ বাহ', 'আফ্ৰিকাৰ সাধু' আদি। অৱশ্যে সেই সাধুবোৰ অসমৰ পটভূমিত ৰচিত সাধু নাছিল। অসমত লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাই পোনপ্ৰথমে অসমৰ লোক সমাজৰ মাজত প্ৰচলিত সাধুকথা কেতবোৰ সংগ্ৰহ কৰি 'বুঢ়ী আইৰ সাধু' নামে ১৯১১ চনত প্ৰকাশ কৰে। বেজবৰুৱাৰ পৰৱৰ্তী কালৰপৰা সাম্প্ৰতিক কাললৈকে বিভিন্ন সংগ্ৰাহকে অসমত প্ৰচলিত সাধুকথা সংগ্ৰহ তথা সম্পাদনা কৰি অসমীয়া সাধুকথাৰ ক্ষেত্ৰখনক টনকিয়াল কৰিবলৈ সক্ষম হৈছে।

সাধুকথাৰ বিভিন্ন শ্ৰেণীৰ ভিতৰত এটা অন্যতম শ্ৰেণী হৈছে টেটোন বা টেণ্টন শ্ৰেণীৰ সাধুকথা। পৃথিৱীৰ বিভিন্ন দেশত টেটোন শ্ৰেণীৰ সাধুকথাৰ প্ৰচলন হৈ আছে। ইতিহাসত এনে কিছুমান চৰিত্ৰ পোৱা যায় যি ৰজাৰ ৰসিক সহচৰ আছিল। তেনে চৰিত্ৰবোৰে ৰাজসভাত ভাঁড় বা বিদূষক হিচাপে কাম কৰিছিল। ৰজা তথা ৰাইজক মনোৰঞ্জন প্ৰদান কৰা তেনে চৰিত্ৰক ইংৰাজীত 'Jester' বুলি কোৱা হয়। বিশ্বৰ বিভিন্ন দেশৰ তেনে ভাঁড় বা বিদূষকৰ ভিতৰত ৰিচাৰ্ড টাৰ্লটন, বীৰবল, তেনালি ৰাম, গোপাল ভাঁড়, মোল্লা নাসিৰুদ্দিন, মোল্লা-দো-পেঁয়াজা আদি অন্যতম। অসমত কোনো ৰজাৰ ৰাজসভাত ভাঁড় বা বিদূষক নিযুক্তি দিয়াৰ তথ্য পোৱা নাযায় যদিও ভাৰতবৰ্ষ বা পৃথিৱীৰ অন্যান্য ভাঁড় বা বিদূষকৰ সমধৰ্মী এটা চৰিত্ৰ হ'ল নিংনি ভাৱৰীয়াৰ চৰিত্ৰ। ভাঁড় বা বিদূষকসকলে প্ৰকৃততে একো একোটা টেটোনধৰ্মী চৰিত্ৰহে। টেটোনৰ গুণ-বৈশিষ্ট্য সম্বলিত ভাঁড় বা বিদূষকসকলৰ কথা-কাহিনীক কেন্দ্ৰ কৰি বিভিন্ন ধৰণৰ টেটোনধৰ্মী সাধুকথা প্ৰচলন হৈ আছে। অসমৰ সাধুকথাত শিয়াল, বান্দৰ আদি জন্তুৱে টেটোনৰ ভূমিকা পালন কৰা দেখা যায় । নিংনি ভাৱৰীয়াৰ সাধুকথাই অসমৰ টেটোন শ্ৰেণীৰ সাধুকথাৰ ক্ষেত্ৰখনক বাৰুকৈয়ে সমৃদ্ধ কৰিছে।

০.১ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য ঃ

প্ৰত্যেকটো গৱেষণা কাৰ্যৰ অন্তৰালত একোটা বিশেষ উদ্দেশ্য নিহিত থকাৰ দৰে আমাৰ গৱেষণা কাৰ্যৰ বিশেষ উদ্দেশ্য হ'ল-

(ক) অসমত প্ৰচলিত টেটোন শ্ৰেণীৰ সাধুকথা সম্পৰ্কে আলোচনা কৰা।

(খ) টেটোন শ্ৰেণীৰ সাধুকথাৰ আধাৰত নিংনি ভাৱৰীয়াৰ সাধুকথা সম্পৰ্কে আলোচনা কৰা।

০.২ অধ্যয়নৰ পদ্ধতি ঃ

প্ৰস্তাৱিত গৱেষণা কাৰ্যটো সম্পন্ন কৰাৰ বাবে বৰ্ণনাত্মক তথা বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতিৰ

সহায় লোৱা হৈছে।

০.৩ অধ্যয়নৰ ক্ষেত্ৰ ঃ

প্ৰস্তাৱিত গৱেষণা কৰ্মটোৰ ক্ষেত্ৰ হিচাপে বৰপেটা জিলাক বাচি লোৱা হৈছে। টেটোন শ্ৰেণীৰ সাধুকথাৰ স্বৰূপ জনাৰ ক্ষেত্ৰত পুথিগত তথ্যৰ সহায় লোৱা হৈছে যদিও নিংনি ভাৱৰীয়াৰ সাধুকথা সন্দৰ্ভত জনাৰ ক্ষেত্ৰত পুথিগত তথ্যৰ লগতে নিংনি ভাৱৰীয়াৰ বাসস্থান বৰপেটা জিলাক গৱেষণাৰ ক্ষেত্ৰ হিচাপে বাচি লোৱা হৈছে।

০.৪ অধ্যয়নৰ প্ৰয়োজনীয়তা

প্ৰস্তাৱিত গৱেষণাৰ বিষয়টো অধ্যয়নৰ বিশেষ প্ৰয়োজন আছে। সেই প্ৰয়োজনীয়তাবোৰ হ'ল—

(ক) এই বিষয়টো অধ্যয়নৰ জৰিয়তে টেটোন শ্ৰেণীৰ সাধুকথাৰ স্বৰূপ, বৈশিষ্ট্যাদি জানিব পৰা যাব।

(খ) এই বিষয়টো অধ্যয়নৰ জৰিয়তে অসমত প্ৰচলিত টেটোন শ্ৰেণীৰ সাধুকথা সম্পৰ্কে জানিব পৰা যাব।

(গ) নিংনি ভাৰৰীয়া এক অন্যতম টেটোনধৰ্মী চৰিত্ৰ। নিংনি ভাৰৰীয়াই ব্ৰিটিছ ৰাজত্বৰ সময়ৰ অসমত কানি বৰবিহৰ অবাধ প্ৰচলনৰ বিৰুদ্ধে মাত মাতিছিল। নিংনি ভাৰৰীয়া আছিল এজন সমাজ সংস্কাৰক। হাস্য-ব্যঙ্গৰ জৰিয়তে ভাৰৰীয়াই কু-সংস্কাৰ, অন্ধবিশ্বাস আদি দূৰ কৰিবলৈ প্ৰয়াস কৰিছিল। ব্যঙ্গ ৰচনাই মানৰ চেতনাক জাগ্ৰত কৰি পাঠক-শ্ৰোতাৰ মনত দীৰ্ঘম্যাদী প্ৰভাৱ পেলাবলৈ সক্ষম। আকৌ, সাহিত্যৰ বুৰঞ্জীত বিশেষ মূল্য নাথাকিলেও সমাজতত্ত্ব তথা লোকসংস্কৃতিৰ বিষয় হিচাপে সাধুকথা মূল্যৱান সম্পদ। নিংনি ভাৰৰীয়াৰ সাধুকথাই যি গুৰুত্ব লাভ কৰিব লাগিছিল, তেনে গুৰুত্ব লাভ কৰা দেখা নাযায়। এনেবোৰ দিশৰ প্ৰতি লক্ষ্য ৰাখি টেটোন শ্ৰেণীৰ সাধুকথা হিচাপে নিংনি ভাৰৰীয়াৰ সাধুকথাৰ প্ৰচাৰ-প্ৰসাৰত সহায়ক হ'ব বুলিয়েই এই বিষয়টো বাচি লোৱা হৈছে।

১.০ টেটোন শ্ৰেণীৰ সাধুকথাৰ স্বৰূপ

ইংৰাজী 'Trickstar Tale' -ৰ অসমীয়া পৰিভাষা হিচাপে টেটোন শ্ৰেণীৰ সাধুকথা অভিধাটো ব্যৱহাৰ কৰা হয়। টেটোন শব্দৰ আভিধানিক অৰ্থ হ'ল– 'টেঙৰ, দুষ্ট স্বভাৱ বিশেষ আৰু প্ৰতাৰক।' (বৰুৱা, ২০০০,পৃ.৪২৮)। টেঙৰ, দুষ্ট স্বভাৱৰ, প্ৰতাৰক, চৰিত্ৰ বিশেষক কেন্দ্ৰ কৰি সৃষ্টি হোৱা সাধুকথাকে চমুকৈ টেটোনৰ সাধুকথা বুলি কোৱা হয়। 'টেটোন শ্ৰেণীৰ সাধুকথাসমূহ প্ৰৱঞ্চক, টেঙৰ বা চতুৰ মানৰ বা মানৰ ভিন্ন চৰিত্ৰ কেন্দ্ৰিক, যিটো চৰিত্ৰই আনক ঠগাই তাৰ বুদ্ধিমত্তাই জনসাধাৰণক আমোদ প্ৰদান কৰে, তুলনামূলকভাৱে স্বাভাৱিক বা অস্বাভাৱিক ৰূপ চৰিত্ৰত প্ৰতিফলিত হয়।" (গোস্বামী,২০১৪,পৃ.১০৬) টেটোন শ্ৰেণীৰ সাধুকথাৰ মুখ্য চৰিত্ৰ বা নায়কে আনৰ সুখ-দুখ, সুবিধা-অসুবিধাৰ কথা চিন্তা নকৰি নিজৰ মনৰ কামনা সিদ্ধিৰ বাবে আনক ঠগায় বা প্ৰতাৰণা কৰে। টেটোন বৰ জেদী তথা অনমনীয় চৰিত্ৰ। "টেটোন অসংযত আৰু সাংঘাতিক ধৰণৰ চৰিত্ৰ। আদিম অধিবাসী, কৃষক, নগৰীয়া আদি সকলো শ্ৰেণীৰ লোকক বিমল আনন্দ যোগাই অহা টেটোন চৰিত্ৰই মকৰা বা শহাপহু অথবা সিংহ বা বাঘ নাইবা বান্দৰ বা পৰিহাস্যকাৰক (Jester) বা মূৰ্খ ৰূপত আত্ম প্ৰকাশ কৰে।" (শৰ্মা, ২০১১, পৃ. ১৭৯-৮০) টেটোনে সমাজৰ লোকৰ বিনোদনৰ বাবে হাস্যদ্দীপক অভিনয় কৰে। অৱশ্যে টেটোনৰ হাস্য-ব্যঙ্গৰ অন্তৰালত সামাজিক প্ৰকাৰ্য নিহিত হৈ থাকে।

১.১ টেটোন শ্ৰেণীৰ সাধুকথাৰ বৈশিষ্ট্য

টেটোন শ্ৰেণীৰ সাধুকথাৰ প্ৰকৃতি বিচাৰ কৰিলে ইয়াৰ কেতবোৰ বৈশিষ্ট্য ওলাই পৰে। সেই বৈশিষ্ট্যবোৰ হ'ল—

১.১.০১ এই শ্ৰেণীৰ সাধুকথাৰ মূখ্য চৰিত্ৰটোৱে আনৰ কথা চিন্তা নকৰি কেৱল নিজৰ স্বাৰ্থসিদ্ধিৰ বাবে আনক ঠগায় বা প্ৰতাৰণা কৰে। অৱশ্যে আনক ঠগাবলৈ গৈ কেতিয়াবা টেটোনে নিজেও ঠগ যায়।

১.১.০২ টেটোন শ্ৰেণীৰ সাধুকথাৰ মুখ্য চৰিত্ৰটো অত্যন্ত জেদী। টেটোন জেদ পূৰাবলৈ উপযুক্ত সময় তথা সুযোগলৈ অপেক্ষা কৰে।

১.১.০৩ টেটোনৰ সাধুকথাত টেটোন চৰিত্ৰই নিজ ক্ৰিয়া-কলাপৰ জৰিয়তে সমাজৰ অন্যান্য লোকক হাস্যৰস প্ৰদান কৰে। এনে হাস্য-ব্যঙ্গৰ অন্তৰালত সামাজিক প্ৰকাৰ্যও নিহিত হৈ থাকে।

১.১.০৪ টেটোন ধৰ্মী সাধুকথাৰ মূল চৰিত্ৰটো বিচক্ষণ বুদ্ধিমত্তাশীল চৰিত্ৰ। প্ৰত্যুৎপন্নমতি টেটোন উপস্থিত বুদ্ধিৰ জৰিয়তে সাধাৰণ লোকে কৰিব নোৱাৰা কাম এটাও অনায়াসে কৰে।

১.১.০৫ টেটোনধৰ্মী সাধুকথাৰ মূখ্য চৰিত্ৰটোৱে ব্যক্তিস্বাধীনতাক গুৰুত্ব দি আত্মমৰ্যাদা অক্ষুন্ন ৰাখি ভাল পায়। টেটোনে আনৰ ওচৰত নতশিৰে থাকি ভাল নাপায়। সেয়ে তেওঁ বিভিন্ন কৌশল অৱলম্বন কৰি হ'লেও নিজৰ মতামত দাঙি ধৰে। কোনোৱে টেটোনক কথাৰে জব্দ কৰিব খুজিলেও প্ৰতিপক্ষ যিমান শক্তিশালী নহ'লেও টেটোনে বশ্যতা স্বীকাৰ নকৰি বুদ্ধিদীপ্ততাৰে উচিত প্ৰত্যুত্তৰ দিয়ে।

১.১.০৬ টেটোন শ্ৰেণীৰ সাধুকথাত মানুহৰ বাদেও জীৱ-জন্তু আদিয়েও টেটোনৰ ভূমিকা পালন কৰে। মানৰ বা

মানৰ ভিন্ন টেটোন চৰিত্ৰ আচলতে একোটা ৰূপক বা প্ৰতীকহে। লোকসমাজে এনে ৰূপক বা প্ৰতীকৰ সহায়ত বিভিন্ন সামাজিক প্ৰকাৰ্য সাধন কৰে।

২.০ অসমত প্ৰচলিত টেটোন শ্ৰেণীৰ সাধুকথা

পৃথিৱীৰ বিভিন্ন দেশৰ লগতে ভাৰতবৰ্ষ তথা অসমতো টেটোন শ্ৰেণীৰ সাধুকথাৰ প্ৰচলন আছে। অসমত কেতিয়াৰপৰা এই শ্ৰেণী সাধুকথাৰ প্ৰচলন হৈ আছে, সেই কথা ন দি ক'ব পৰা নাযায়। প্ৰফুল্লদত্ত গোস্বামীয়ে কৈছে- - "মঙ্গোলীয় লোকসকল অসমলৈ অহাৰ পিছৰেপৰা টেটোন শ্ৰেণীৰ সাধুকথা সম্ভৱতঃ অসমৰ জাতি-জনজাতিৰ মাজত প্ৰচলন হ'বলৈ ধৰে।" (গোস্বামী,২০১৪পৃ. ৪৫) গোস্বামীৰ এই অনুমান সৰ্বজনগ্ৰাহ্য নহয়। নবীনচন্দ্ৰ শৰ্মাই গোস্বামীৰ কথা অস্বীকাৰ কৰি কৈছে - "গোস্বামীৰ এই প্ৰমেয় সম্পূৰ্ণৰূপে গ্ৰহণ কৰিব নোৱাৰি। উচ্চ শ্ৰেণী, মালিক বা গৰাকী বা প্ৰভু, শাসক, শোষণকাৰী অত্যাচাৰী, গণশত্ৰু আদিৰ ভণ্ডামি, ক্ৰুৰতা, শাসন-শোষণ আদিক ব্যঙ্গ বা ইতিকিং কৰাৰ উদ্দেশ্য আগত ৰাখি পৃথিৱীৰ সৰ্বত্ৰতে টেটোন চৰিত্ৰৰ উদ্ভৱ হোৱা দেখা যায়। উত্তৰ আমেৰিকা, দক্ষিণ আমেৰিকা, আফ্ৰিকা আদিতো টেণ্টন চৰিত্ৰৰ প্ৰচলন লক্ষ্য কৰিব পাৰি। এই ফালৰপৰা কোনো এটা বিশেষ অঞ্চলৰ কোনো এটা বিশেষ সাংস্কৃতিক পৰিয়াল বা ভাষা পৰিয়ালত টেটোনৰ উদ্ভৱ হৈছিল বুলি ক'ব নোৱাৰি।" (শৰ্মা, ২০১১, পৃ.১৪৩) নবীনচন্দ্ৰ শৰ্মাৰ কথাৰ আঁত ধৰি ক'ব পৰা যায় যে অসমত টেটোন শ্ৰেণীৰ সাধুকথা কেতিয়াৰপৰা প্ৰচলন হৈছিল, সেই কথা খাটাংকৈ ক'ব পৰা নগ'লেও অন্যান্য সাধুকথাৰ দৰে টেটোন শ্ৰেণীৰ সাধুকথাও যে দূৰ-অতীতৰপৰা প্ৰচলন হৈ আহিছে, সেই কথা ক'ব পৰা যায়। বিভিন্ন জাতি-জনজাতিৰ মাজৰ এই শ্ৰেণীৰ সাধুকথা প্ৰচলন হৈ থকালৈ লক্ষ্য ৰাখি কেৱল মংগোলীয় জনগোষ্ঠীৰ পৰা এই শ্ৰেণী সাধুকথা প্ৰচলন হোৱা কথা মানি লব নোৱাৰি।

অসমত বসবাস কৰা ভিন্ ভিন্ জাতি-উপজাতিৰ মাজত প্ৰচলিত কেইটামান উল্লেখযোগ্য টেটোনৰ সাধুকথা হ'ল— 'টেটোন', 'টেটোন তামুলী' 'টামন আৰু টেণ্টন', 'টেণ্টনপুৰৰ টেণ্টন', 'শিয়াল পণ্ডিত', 'বুঢাবুঢী আৰু শিয়াল', 'শিয়াল আৰু ঘঁৰিয়াল,' 'নীল বৰণীয়া শিয়াল' আদি। অসমত প্ৰচলিত টেটোনৰ সাধুবোৰত শিয়াল চৰিত্ৰটোৱে টেটোনৰ ভূমিকা পালন কৰা দেখা যায়। চতুৰ শিয়ালে প্ৰায়েই নিজৰ স্বাৰ্থসিদ্ধিৰ বাবে আন জীৱ-জন্তুক ঠগায়। অৱশ্যে টেটোন শিয়ালে কেতিয়াবা নিজেও ঠগ খাবলগীয়া হোৱা পৰিলক্ষিত হয়। উদাহৰণস্বৰূপে 'বুধিয়ক শিয়াল' নামৰ সাধু এটাত প্ৰথমতে টেটোন শিয়ালে বুদ্ধিৰে বাঘৰ পোৱালীক ঠগি সিহঁতৰ ভাগৰ খাদ্য কাঢ়ি খাই, বাঘক শ'লঠেকত পেলাই বাঘক মৃত্যুমুখলৈ ঠেলি দি বাঘৰ মৃত্যু হোৱাত বাঘিনী আৰু পোৱালী দুটাকো বুদ্ধিৰে ঠগাই সিহঁতে চিকাৰ কৰা খাদ্য টেটোন শিয়ালে আৰামত ভক্ষণ কৰিছিল। বাঘৰ পোৱালী দুটা ডাঙৰ হোৱাত শিয়ালৰ চলনা বুজিব পাৰি পোৱালি দুটাই শিয়ালক মাৰি পেলায়।

অসমত প্ৰচলিত টেটোনৰ সাধুকথাত শিয়ালৰ উপৰিও বাঘ, বান্দৰ, বগলী, কেঁকোৰা, টিপচী চৰাই আদি জীৱ-জন্তুৰেও টেটোনৰ ভূমিকা পালন কৰা দেখা যায়। 'বাঘ আৰু কেকোৰা' নামৰ সাধুত কেঁকোৰাই টেটোনৰ ভূমিকা পালন কৰা দেখা যায়। সাধুটোত টেটোন কেঁকোৰাই বাঘক এসাজ খাবলৈ নিমন্ত্ৰণ কৰি বাঘক নেগুৰডাল গাঁতৰ ভিতৰলৈ সোমাই দিবলৈ কৈ বাঘে নেগুৰডাল সোমাই দিয়াত কেঁকোৰাই বাঘৰ নেগুৰডাল কামুৰি চিঙি পেলায়। সাধুটোত বাঘ অজলা আৰু কেঁকোৰা চতুৰ ৰূপত অংকিত হৈছে। সেইদৰে, 'বান্দৰ আৰু মেকুৰী' নামৰ সাধুত টেটোন বান্দৰে মেকুৰীয়ে অনা পিঠা ভাগ কৰি দিয়াৰ চলেৰে সমস্ত পিঠা খাই মেকুৰীক ঠগা দেখা যায়। একেদৰে 'বান্দৰ আৰু ঘঁৰিয়াল' নামৰ সাধুত প্ৰত্যুৎপন্নমতি গুণসম্পন্ন টেটোন বান্দৰে উপস্থিত বুদ্ধি খটুৱাই নিশ্চিত বিপদৰপৰা ৰক্ষা পৰা দেখা যায়। সাধুটোত ঘৈণীয়েকৰ কথা পেলাব নোৱাৰি ঘঁৰিয়ালে বন্ধু বান্দৰক মিছা কথা কৈ পানীৰ মাজলৈ লৈ গৈ যেতিয়া ঘঁৰিয়ালৰ পত্নীয়ে বান্দৰৰ কলিজাটো খাবলৈ বিচৰাৰ বাবে তেনেদৰে মিছা কথা বান্দৰক কৈ বান্দৰক লৈ অহা বুলি কোৱাত বান্দৰে তৎমুহূৰ্ততে বুদ্ধি খটুৱাই কলিজাটো গছৰ ওপৰত থৈ অহা বুলি কয়। কলিজাটো লৈ আহিব লাগে যদি পাৰলৈ লৈ ব'লা বুলি কোৱাত ঘঁৰিয়ালে বান্দৰক পাৰলৈ লৈ আনে। তেতিয়া বান্দৰে তৎক্ষণাত গছৰ ওপৰত উঠি নিজৰ জীৱন ৰক্ষা কৰে। এই সাধুটোৰ লেখীয়াকৈ 'ঢোৱা কাউৰী আৰু টিপচী চৰাই' নামৰ সাধুত কণমানি টিপচি চৰায়ে টেটোনৰ ভূমিকা পালন কৰি বুদ্ধিৰে ঢোৱা কাউৰীক পুৰি মাৰি নিশ্চিত বিপদৰপৰা নিজৰ জীৱন ৰক্ষা কৰা দেখা যায়। এনেদৰে চালে দেখা

যায় যে অসমৰ বিভিন্ন জীৱ-জন্তু, চৰাই-চিৰিকটি আদিক কেন্দ্ৰ কৰি টেটোন শ্ৰেণীৰ সাধুকথা প্ৰচলন হৈ আছে।

৩.০ টেটোন শ্ৰেণীৰ সাধুকথা হিচাপে নিংনি ভাৰৰীয়াৰ সাধুকথা

টেটোনৰ সাধুকথাবোৰ কেৱল জীৱ-জন্তুক কেন্দ্ৰ কৰিয়েই সৃষ্টি হোৱা নাই। টেটোন চৰিত্ৰৰ গুণ-বৈশিষ্ট্য সম্বলিত কেতবোৰ লোকৰ কাৰ্যাৱলীক লৈও লোকসমাজত কেতবোৰ সাধুকথা প্ৰচলিত হৈ আছে। তেনে চৰিত্ৰবোৰৰ ভিতৰত কেতবোৰ বাস্তৱ আৰু কেতবোৰ কাল্পনিক। আন কেতবোৰ এনে টেটোনধৰ্মী চৰিত্ৰ পোৱা যায় যিবোৰ কাল্পনিক নে ঐতিহাসিক চৰিত্ৰ সেই কথা থিৰাংকৈ ক'ব পৰা নাযায়। ইতিহাসত ৰজাৰ সহচৰ বা ৰাজভাণ্ডাৰৰ ৰখীয়া 'বিদূষক' বা 'ভাঁড়' নামে কিছুমান চৰিত্ৰ পোৱা যায়। যেনে--- 'বীৰবল','গোপাল ভাঁড়', 'তেনালি ৰাম', 'মোল্লা নাসিৰুদ্দিন', 'মোল্লা-দা- পেয়াজা' আদি। এই চৰিত্ৰবোৰে বাকপটুতা, উপস্থিত বুদ্ধি আদিৰে মনোৰঞ্জন প্ৰদানৰ সমান্তৰালভাৱে বহু সময়ত ৰজাক নিশ্চিত বিপদৰপৰা ৰক্ষা কৰিছিল। এনে 'বিদূষক' বা 'ভাঁড়' জাতীয় চৰিত্ৰবোৰক ইংৰাজীত 'Jester' বুলি কোৱা হয়। 'Jester' শব্দৰ সমাৰ্থক শব্দবোৰ হ'ল— Fool, Stufor, Seurra, For Bufoon, clown, sot আদি। ভাৰতৰ অন্যান্য প্ৰান্তৰ দৰে অসমত 'ভাঁড়' বা 'বিদূষক' শ্ৰেণীৰ চৰিত্ৰ পোৱা নাযায় যদিও 'ভাঁড়' বা 'বিদূষক' শ্ৰেণীৰ চৰিত্ৰৰ সমধৰ্মী এটা বিশেষ চৰিত্ৰ পোৱা যায়। সেই চৰিত্ৰটোৰ নাম হ'ল নিংনি ভাৰৰীয়া। টেটোনৰ গুণ-বৈশিষ্টবোৰ নিংনি ভাৰৰীয়া চৰিত্ৰত বিদ্যমান। নিংনি ভাৰৰীয়াক কেন্দ্ৰ কৰি অসমত বিশেষকৈ নামনি অসমত বহুতো সাধুকথা প্ৰচলিত হৈ আছে।

নিংনি ভাৰৰীয়া বৰপেটা জিলাৰ এজন সৰবৰহী স্বভাৱ কবি তথা হাস্যৰসিক ভাৰৰীয়া আছিল। "বৰপেটাৰ বুকুত উনৈশ শতিকাৰ তৃতীয় দশকত নিংনি ভাৰৰীয়াৰ জন্ম হৈছিল"। (পাঠক, ১৯৮৭,পৃ.২) সত্ৰ পৰিচালনাৰ সুবিধাৰ্থে বৰপেটা চহৰক বাইশখন হাটি অৰ্থাৎ গাঁৱত বিভক্ত কৰা হৈছিল। "নিংনি ভাৰৰীয়া বৰপেটাৰ মাজৰ হাটিৰ মানুহ আছিল"। (দাস, ২০০৫, পাতনি) নিংনি ভাৰৰীয়া স্থানীয় অঞ্চলত 'নিংনি ভাউৰা' নামে জনাজাত। কামৰূপী উপভাষাত 'ভাৰৰীয়া' পদ বুজাবলৈ 'ভাউৰা' শব্দটো ব্যৱহাৰ কৰা হয়। " "ভাৰৰীয়া" পদ সম্ভৱতঃ সংস্কৃত 'ভাৱ' (অৱস্থা বা স্থিতি) শব্দৰ পৰা ওলাইছে। যেনে ভাও জোৰা, (ছলনা কৰ্, to feign) ভাও ল, (বাব ল, to take the role of), ভাও দেখা (অনুকৰণ কৰ্, to mimic) ইত্যাদি ভাৰৰীয়াৰ ভাও বা অভিনয় বুলিলে অচিন্ত্য-পূৰ্ব (ex-tempore) পদ মুখে মুখে ৰচি ঠাইতে গোৱাকে বুজায়। ভাৰৰীয়াই সভা, মহোৎসৱ, গন্ধ আদিত দৰ্শকসকলৰ মনোৰঞ্জনৰ বাবে দৈনন্দিন জীৱনৰ হাস্যোদ্দীপক ঘটনা লৈ এইদৰে পদ ৰচি গায় নাইবা লগত ৪৩৫ জন পালী লৈ একো থ'ৰা হৈ এনে অভিনয় দেখুৱায়।" (মেধি, ১৯৭৯, পৃ.২২৭) নিংনি ভাৰৰীয়াই বাটে-পথে সভাই-সমিতিয়ে উৎসৱ-পাৰ্বনে ৰাইজৰ আগত অঙ্গী-ভঙ্গীৰে দৰ্শকক

আমোদ দিছিল। পিছলৈ তেওঁ লোকসমাজৰ মাজত নিংনি ভাৰৰীয়া বা নিংনি ভাউৰা নামে পৰিচিতি লাভ কৰে।

নিংনি ভাৰৰীয়া টেটোনৰ গুণ-বৈশিষ্ট্য সম্বলিত এটা অন্যতম চৰিত্ৰ। নিংনি ভাৰৰীয়াৰ কাহিনীক অৱলম্বন কৰি লোকসমাজত ভালেমান সাধুকথা প্ৰচলিত হৈ আছে। টেটোনৰ গুণ-বৈশিষ্ট্য সম্বলিত নিংনি ভাৰৰীয়াই নিজৰ মনে বিচৰা কামনা সিদ্ধিৰ বাবে আন চৰিত্ৰক ঠগায় বা প্ৰতাৰণা কৰা দেখা যায়। 'কলাবাপুৰ মাছমৰা ৰহস্য' নামৰ এটা সাধুত নিংনি ভাৰৰীয়াই কলাবাপক ঠগাই কলাবাপে মাৰি অনা মাছ ভক্ষণ কৰা দেখা যায়। কলাবাপে কষ্ট কৰি অনা মাছখিনি ঠগাই খাবলৈ নিংনি ভাৰৰীয়াই কোনো দ্বিধাবোধ কৰা দেখা নাযায় বা কলা বাপক প্ৰতাৰণা কৰি টেটোন ভাৰৰীয়াই এবাৰলৈকেও অনুশোচনা কৰা দেখা নাযায়। টেটোন ভাৰৰীয়াই কলাবাপক প্ৰতাৰণা কৰি কলাবাপে মাৰি অনা মাছখিনি নিজে ভক্ষণ কৰিবৰ উদ্দেশ্যে মাছখিনিক মৰা গৰুৰ লগত তুলনা কৰিছিল। কলাবাপৰ খোৱা-বোৱাৰ ক্ষেত্ৰত যে বাচ-বিচাৰ আছিল সেই কথা টেটোন ভাৰৰীয়াই জানিছিল। মাছখিনিক মৰা গৰুৰ লগত তুলনা কৰাত কলাবাপে কষ্ট কৰি মাৰি অনা মাছখিনি নাখাওঁ বুলি পেলাই দিয়াৰ লগে লগে টেটোন ভাৰৰীয়াই মাছখিনি বুটলি নিজৰ ঘৰলৈ লৈ গৈছিল।

'গৃহিনীক লাউ খোজা' নামৰ আন এটা সাধুটো টেটোন ভাৰৰীয়াৰ আত্মস্বাৰ্থ সিদ্ধিৰ বাবে আনক প্ৰতাৰণা কৰা এক কাহিনী পোৱা যায়। সাধুটোত অকলে থকাৰ সুযোগত এগৰাকী গৃহিনীক প্ৰতাৰিত কৰি নিংনি ভাৰৰীয়াই গৃহিনীগৰাকীক শ'লঠেকত পেলাই নিজৰ অভীষ্ট কামনা সিদ্ধি কৰা দেখা যায়। গৃহিনীগৰাকীক তেওঁ চালত উঠি লাউ পাৰি দিবলৈ বাধ্য কৰায়। ভাৰৰীয়াই গৃহিনীগৰাকীক কয়— "আই হেৰ ! মই কোনো কালে খেৰৰ ঘৰত উঠি পোৱা নাই তাতে মই ভাৰী মানুহ, চালখনো হেকেটা। মই জখলাত ধৰি থাকোঁ তয়ে পাৰি দেছোন পৰিবৰ কোনো ভয় নকৰিবি"। (দাস, ২০০৫, পৃ.৪২) গৃহিনী গৰাকীয়ে সোনকালে আপদ দূৰ কৰিবৰ বাবে চালত উঠি ভাৰৰীয়াক লাউ পাৰি দিয়ে। এটা লাউত সন্তুষ্ট নহৈ আনটো লাউও পাৰি দিলেহে নামিবলৈ তেওঁ জখলাডাল আগুৱাই দিব অন্যথা চালত উঠা তিৰোতা চাবলৈ সমজুৱাক মাতিব বুলি ভয় খুৱাই টেটোন ভাৰৰীয়াই অৱশিষ্ট লাউটোও গৃহিনী গৰাকীৰ পৰা হাত কৰে। ভাৰৰীয়াই গৃহিনী গৰাকীৰ প্ৰতি কৃতজ্ঞ হোৱাৰ পৰিৱৰ্তে গৃহিনীগৰাকীক চালৰ পৰা নমাত সহায় নকৰি নিজৰ স্বাৰ্থ পূৰণ কৰি লাউ লৈ তাৰপৰা পলায়।

টেটোন নিংনি ভাৰৰীয়া অত্যন্ত জেদী আৰু অনমনীয় স্বভাৱৰ আছিল। তেওঁ প্ৰতিশোধ পূৰণ কৰিবলৈ সময় তথা সুযোগলৈ অপেক্ষা কৰিছিল। 'মৌজাদাৰৰ লগত বন্ধুত্ব' নামৰ এটা সাধুত ভাৰৰীয়াই মৌজাদাৰৰ ওপৰত লোৱা প্ৰতিশোধৰ বিষয়ে জনা যায়। সাধুটোত দেখা যায় যে নিংনি ভাৰৰীয়াই এদিন মৌজাদাৰৰ ঘৰলৈ খাজনা দিবলৈ গৈছিল। ভাৰৰীয়াক দেখিও যেতিয়া মৌজাদাৰে বহিবলৈ কোৱা নাছিল তেতিয়া আত্মসন্মান বোধ থকা নিংনি ভাৰৰীয়াই মৌজাদাৰৰ ব্যৱহাৰত বৰ লাজ পায়। মৌজাদাৰে বহিবলৈ নোকোৱাত ভাৰৰীয়াই ওচৰতে থকা বেঞ্চ এখনত নিজে বহে। মৌজাদাৰক নোসোধাকৈ বেঞ্চখনত বহা বাবে মৌজাদাৰে ভাৰৰীয়াক তিৰস্কাৰ কৰে। মৌজাদাৰৰ তেনে কটু ব্যৱহাৰৰ পোটক তুলিবলৈ ভাৰৰীয়াই মনতে সংকল্প লয়। এদিন সুযোগ বুজি ভাৰৰীয়াই মৌজাদাৰৰ ওপৰত প্ৰতিশোধ লয়। এদিন বৰপেটাৰ সৰু হাকিমৰ ল'ৰা জন্মা বাবে কাছাৰীত সকলোকে চাহ-মিঠাইৰে আপ্যায়ন কৰা হৈছিল। সেই চাহ-পৰ্বত সকলোকে নিংনি ভাৰৰীয়াই নিমন্ত্ৰণ জনাইছিল। মৌজাদাৰ আহিলে তেওঁক বহিবলৈ দিবলৈ খুৰা ভঙা চকী এখন ভাৰৰীয়াই আগতেই সাজু কৰি ৰাখিছিল। যথা সময়ত মৌজাদাৰ আহিলত নিংনি ভাৰৰীয়াই আগতেই সাজু কৰি ৰখা খুৰা ভঙা চকীখন মৌজাদাৰক বহিবলৈ দি মৌজাদাৰক হামখুৰি খুৱাই পেলাই মাৰি নিজৰ প্ৰতিশোধ পূৰণ কৰিছিল। মৌজাদাৰে মাটিত বাগৰি পৰাত মৌজাদৰৰ দুখৰ সমভাগী হোৱা দেখুৱাই ভাৰৰীয়াই কয়— "উংকি কথাটো হ'ল! চেয়াৰখন মই নিজে আনি বহিছিলোঁ কিন্তু খুৰা এটা ভঙা বুলি ক'বই পৰা নাছিলোঁ, মই পাতল মানুহ বুলিহে সাৰিলোঁ নহলে বুঢ়া বয়সত মোৰো ককাল লেৰফেৰিয়া হ'লহেঁতেন।" (দাস, ২০০৫, পৃ.২২)।

টেটোন নিংনি ভাৰৰীয়াই তেওঁৰ কাৰ্যাৱলীৰ জৰিয়তে সমাজৰ লোকক হাস্যৰস প্ৰদান কৰা দেখা যায়। 'মৰা নদীত মাছ মৰা ৰহস্য' নামৰ এটা সাধুকথাত দেখা যায় যে কেম্বল চাহাব আৰু মেমক ভাৰৰীয়াই তেওঁৰ কাৰ্যৰ জৰিয়তে বিমল হাস্যৰস প্ৰদান কৰিছিল। জাকৈৰে মাছ মাৰি চাহাব-মেমক এসাজ খুৱাব বুলি কৈ ভাৰৰীয়াই শুকান গোৰৰ কিছু সংগ্ৰহ কৰি আনি গোবৰবোৰ নদীৰ

পানীত এৰি দিয়ে আৰু যেতিয়া শুকান গোৰৰবোৰ পানীত ওপঙি উঠে মাছ বুলি জ্ঞান কৰি গোৰৰবোৰকে ভাৰৰীয়াই জাকৈৰে টানি আনে। শুকান গোৰৰবোৰ জাকৈৰে সৰকি যেতিয়া পুনৰ পানীত ভাহি উঠে তেতিয়া একো একোটা যেন ডাঙৰ মাছহে জাকৈৰে সৰকি যায়, তেনে ভাৰত ভাৰৰীয়াই আক্ষেপ কৰে। ভাৰৰীয়াৰ কাণ্ড দেখি চাহাব আৰু মেমে হাঁহি হাঁহি অস্থিৰ হয়। চাহাবে ভাৰৰীয়াক কয়-– "ইকি! জাখৈৰ দেখোন তলি নাই। কেনেকৈ মাছ পাবা ?" (দাস, ২০০৫, পৃ.১০) তেতিয়া ভাৰৰীয়াই কয়— "নহয় হুজুৰ জাখৈ এনেকুৱাই। জাখৈৰ তলি বন্ধ হ'লে মাছনো কোন পিনেদি সুমাব ?" (দাস, ২০০৫, পৃ.১০) আচলতে, মৰানদীত মাছ মৰাটো টেটোন ভাৰৰীয়াৰ এক উপলক্ষ্যহে আছিল, চাহাব আৰু মেমক হাস্যৰস প্ৰদান কৰাটোহে তেওঁৰ প্ৰধান উদ্দেশ্য আছিল।

টেটোনে হাস্য-ব্যঙ্গৰ জৰিয়তে সামাজিক প্ৰকাৰ্য সাধন কৰে। নিংনি ভাৰৰীয়াৰ সাধুকথাতো দেখা যায় যে টেটোন ভাৰৰীয়াৰ হাস্য-ব্যঙ্গৰ অন্তৰালত একোটা সামাজিক প্ৰকাৰ্য নিহিত হৈ আছিল। নিংনি ভাৰৰীয়াই অসামাজিক নীতি-নিয়ম আদিৰ বিৰুদ্ধে প্ৰত্যক্ষ বা পৰোক্ষভাৱে প্ৰতিবাদ সাব্যস্ত কৰিছিল। 'পণ্ডিতৰ নিগনি পুৰা ভক্ষণ' নামৰ এটা সাধুত দেখা যায় যে টেটোন নিংনি ভাৰৰীয়াই পঢ়াশালিৰ এজন ধঁপতুৱা পণ্ডিতক ধঁপাত বুলি নিগনি পুৰা খুৱাই ধঁপাত খোৱাটো যে বেয়া কাম, বিশেষকৈ পণ্ডিতসকলে ধঁপাত খোৱাটো যে একপ্ৰকাৰ দোষণীয় কাম সেই কথা বুজাই দিছিল। পঢ়াশালিত ছাত্ৰ-ছাত্ৰীক পাঠ-পঢ়াবলৈ এৰি নিতৌ যেতিয়া পণ্ডিতে ধঁপাত খাই ফুৰিছিল তেতিয়া পণ্ডিতক এশিকনি দিয়াৰ উদ্দেশ্যে ভাৰৰীয়াই চিলিমত ধঁপাতৰ সলনি নিগনি এটা ভৰাই পণ্ডিতক হুপিবলৈ দিয়ে। পণ্ডিতে কয়— "হেৰ নিংনি ! এচিলিম জ্বলোৱা তাকে এহুপা মাৰো"। (দাস, ২০০৫, পৃ.২৬) তেতিয়া পণ্ডিতৰ কথা অন্য অৰ্থত ব্যৱহাৰ কৰি চিলিমত নিগনি এটা ভৰাই অঙঠা এটা দি জ্বলাই ভাৰৰীয়াই পণ্ডিতক হুপিবলৈ দিয়ে। পণ্ডিতে বাৰে বাৰে হুপা স্বত্বেও ধোঁৱা নোলোৱাত চিলিমটো উবুৰিয়াত দিয়াত আধাপুৰা নিগনি এটা ওলাই পৰে। পণ্ডিতে এই কাৰ্যত ভাৰৰীয়াক ক্ষোভ কৰাত ভাৰৰীয়াই কয়— "আপুনি দেখোন ক'লে "বোলে নিংনি এচিলিম লগোৱা এই বুলি"- – সেইবাবে মই সন্মুখত পাই মৰা নিগনিটো লগাই দিলো। মনতে ভাবিলো আপুনি পণ্ডিত মানুহ কিজানি মলা ধপাতৰ সলনি নিগনি পুৰাকে খাবলৈ ভাল পায়।" (দাস, ২০০৫, পৃ.২৬) এনেদৰে সাধুকথাটোৰ মাজেৰে ভাৰৰীয়াই পণ্ডিতক ব্যঙ্গ কৰি পণ্ডিতক ধঁপাতমুক্ত কৰাৰ প্ৰয়াস কৰা দেখা যায়।

টেটোনে কাৰ্যৰ পৰিণতি বা শাস্তিৰ কথা বিবেচনা কৰি কাম নকৰে। ভৱিষ্যতে তেওঁৰ কাৰ্যৰ কেনে ফল হ'ব সেই কথা তেওঁ বিবেচনা নকৰে। নিংনি ভাৰৰীয়াৰ সাধুকথাতো দেখা যায় যে ভাৰৰীয়াইয়ো শাস্তি বা কু-পৰিণতিৰ কথা বা ভৱিষ্যতৰ কথা চিন্তা নকৰি বিভিন্ন কাৰ্যত প্ৰবৃত্ত হৈছিল। সমাজক মনোৰঞ্জন প্ৰদান কৰিবলৈ গৈ তেওঁ কেতিয়াবা ৰুচিবিহৰ্গিত বা নকৰিবলগীয়া কামো কৰিছিল। 'নামফটাৰ বিয়াৰ যৌতুকত নিংনি ভাৰৰীয়া' নামে এটা সাধুত ভাৰৰীয়াই নামফটা নামে পৰিচিত এজন আদবয়সীয়া লোকক বিয়া পাতি দিয়াৰ প্ৰলোভন দি তেওঁৰ পৰা টকা-পইচা সৰকোৱাৰ উপৰিও বিয়াৰ দিনা ডেকা ল'ৰা এজনক কইনা সজাই নিজে কইনাৰ যৌতুক হিচাপে ওলাই হোমৰ গুৰিত বহিছিল। নামফটা বা ৰাইজে প্ৰকৃত কথাটো জানিলে কেনে পৰিস্থিতি সৃষ্টি হ'ব সেই কথা তেওঁ ভবা নাছিল।

বিচক্ষণ বুদ্ধিমত্তাৰ অধিকাৰী টেটোন নিংনি ভাৰৰীয়াৰ বুদ্ধিমত্তাৰ পৰিচয় পোৱা যায় 'খাজনা ৰেহাই' নামৰ এটা সাধুকথাৰ মাজেৰে। সাধুটোত ভাৰৰীয়াই বুদ্ধিমত্তাৰে মাটিৰ খাজনা ৰেহাই পাবলৈ সক্ষম হোৱা দেখা যায়। খাজনা দিব নোৱাৰা অপৰাধত মৌজাদাৰৰ পিয়াদাই নিংনি ভাৰৰীয়াৰ ঘৰৰ লাম-লাকটু সোপাকে ভাঙি-ছিঙি লৈ যোৱাত মৌজাদাৰৰ লগত মৌজাদাৰে কথা পাতি থকা অৱস্থাত ভাৰৰীয়াই হাকিমৰ আগত নিজৰ দুখ বৰ্ণনা কৰে। হাকিমক তেওঁ ডাঙৰ আৰু মৌজাদাৰক সৰু বুলি এনেদৰে কয়—

"আপুনি হৈছে বৰ বাপ মৌজাদাৰ সৰু।

বোপাৰ আগত মই বুকু ঢাকুৰি মৰু।।" (দাস, ২০০৫, পৃ.৬)

প্ৰশংসা শুনি সকলোৱে ভাল পায়। সেইবাবে মৌজাদাৰতকৈ হাকিমক ডাঙৰ বুলি প্ৰশংসা কৰি তাৰ পিছতহে ভাৰৰীয়াই মৌজাদাৰৰ অত্যাচাৰৰ কথা প্ৰকাশ কৰে। পাঁচ টকা খাজনা দিব নোৱাৰা বাবে যে মৌজাদাৰৰ পিয়াদাই দুপৰীয়া বঢ়া ভাতো পেলাই দি কাঁহী-বাতি লৈ গৈছিল সেই কথা তেওঁ হাকিমৰ আগত দুখেৰে প্ৰকাশ কৰে এনেদৰে—

'পাঁচটি টকা তাৰ বাবে মৌজাদাৰে পায়।
সময়মতে সুজিবলৈ নোৱাৰিলো দায়।।
এই দোষতেই দেউতা ৰজাৰ দূত গৈ।
দুপৰীয়া বঢ়া ভাতৰ কাঁহী পালেগৈ।।
খাই উঠি দিম বুলি কলোঁ হাতযোৰ কৰি।
টান মাৰি লৈ আহিল পাগ চুৰা কৰি।।" (দাস, ২০০৫, পৃ.৮)

ভাৰৰীয়াৰ এনে দুখ বৰ্ণনা শুনি হাকিমে মৌজাদাৰক ভাৰৰীয়াৰ খাজনা ৰেহাই দিবলৈ কয়। এনেদৰে বুদ্ধিমত্তাৰে নিংনি ভাৰৰীয়াই খাজনা ৰেহাই পাবলৈ সক্ষম হৈছিল। বিতৰ্ক কৰিলে তেওঁ হয়তো ফাটেকতহে পৰিবলগীয়া হ'লহেঁতেন।

এনেদৰে চালে দেখা যায় যে টেটোনৰ বৈশিষ্ট্যবোৰ নিংনি ভাৰৰীয়াৰ চৰিত্ৰত বাৰুকৈয়ে বিদ্যমান।

৪.০ উপসংহাৰ

অসমৰ বিভিন্ন জাতি-জনজাতিৰ মাজত পুৰণি কালৰেপৰাই বিভিন্ন সাধুকথা প্ৰচলিত হৈ আছে। বিভিন্ন জাতি-জনজাতিৰ মাজত প্ৰচলিত ভিন্ ভিন্ ধৰণৰ সাধুকথাই অসমীয়া সাধুকথাৰ জগতখনক বৈচিত্ৰ্যময় কৰি তোলাত বাৰুকৈয়ে সহায় কৰিছে। অসমীয়া সাধুকথাৰ জগতখনত টেটোন শ্ৰেণীৰ সাধুকথায়ো এক বিশেষ স্থান দখল কৰি আছে। অসমীয়া সমাজে টেটোন চৰিত্ৰক ঘৃণা কৰাৰ পৰিবৰ্তে আকোঁৱালি লোৱাহে দেখা যায়। অসমৰ টেটোন শ্ৰেণীৰ সাধুকথাৰ জগতখনত নিংনি ভাৰৰীয়াৰ সাধুকথাই বিশেষ স্থান দখল কৰি আছে। অসমীয়া লোকসমাজত বিশেষকৈ নামনি অসমত নিংনি ভাৰৰীয়াৰ সাধুকথা বিশেষভাৱে সমাদৃত। সম্প্ৰতি নতুন প্ৰজন্মৰ মাজত অন্যান্য সাধুকথাৰ লগতে নিংনি ভাৰৰীয়াৰ সাধুকথাৰো চৰ্চা কম হোৱা পৰিলক্ষিত হৈছে। টেটোন নিংনি ভাৰৰীয়াৰ সাধুকথাৰ চিন্তা-চৰ্চাই এই শ্ৰেণী সাধুকথাৰ প্ৰচাৰ-প্ৰসাৰত অধিক সহায় কৰাৰ লগতে অসমীয়া টেটোন শ্ৰেণীৰ সাধুকথাৰ ক্ষেত্ৰখনক বাৰুকৈয়ে সমৃদ্ধ কৰি তুলিব বুলি ন দি ক'ব পৰা যায়। ❑

সহায়ক গ্ৰন্থপঞ্জী

অসমীয়া ঃ

গগৈ, লীলা (১৯৮৬) অসমৰ সংস্কৃতি। ডিব্ৰুগড়ঃ বনলতা।

গোস্বামী, প্ৰফুল্ল দত্ত (২০০৪) অসমীয়া জন সাহিত্য। গুৱাহাটী ঃ বাণী প্ৰকাশ।

দাস, যাদব চন্দ্ৰ (২০০৫) নিংনি ভাৰৰীয়াৰ ৰহস্য। বৰপেটা ঃ পঞ্চৰতন ফাৰ্ম।

পাঠক, কিশোৰী মোহন (১৯৮৭) নিংনি ভাৰৰীয়া। বৰপেটা ঃ ভাস্কৰ প্ৰকাশন।

মেধি, কালিৰাম (১৯৭৯), সম্পা.। কালিৰাম মেধি ৰচনাৱলী। যোৰহাট ঃ অসম সাহিত্য সভা, চন্দ্ৰকান্ত সান্দিকৈ ভৱন।

শৰ্মা নবীনচন্দ্ৰ (২০১৪) অসমৰ লোকসাহিত্য। গুৱাহাটী ঃ জ্যোতিপ্ৰকাশন।

ঐ ।(২০১১) লোকসংস্কৃতি। গুৱাহাটী ঃ চন্দ্ৰপ্ৰকাশ।

বাংলা

নায়ক, জীবেশ (২০১০) লোকসংস্কৃতিবিদ্যা ও লোকসাহিত্য। কলকাতা ঃ কলকাতা, বঙ্গীয় সাহিত্য।

ইংৰাজী

Goswami, Prafulla Dutta (1970) Ballads and Tales of Assam, Guwahati : Department of Publication, Gauhati University.

অভিধান

বৰুৱা, হেমচন্দ্ৰ (২০০০) হেমকোষ। গুৱাহাটী ঃ হেমকোষ প্ৰকাশন।

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

প্ৰবন্ধ

মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ উপন্যাসত আৰ্থ-সামাজিক দিশ ঃ এক অধ্যয়ন

তৰালী সূত্ৰধৰ

গৱেষক, অসমীয়া বিভাগ
গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয়
৯১০১৯৮৪৩৫৮
taralisutradhar991@gmail.com

সংক্ষিপ্তসাৰ ঃ

অসম তথা ভাৰতীয় সাহিত্যৰ এগৰাকী প্ৰসিদ্ধ লেখিকা মামণি ৰয়ছম গোস্বামীয়ে সাহিত্যিক জীৱনৰ পাতনি মেলিছিল চুটিগল্পৰ মাজেৰে আৰু জনপ্ৰিয়তা লাভ কৰিছিল ঔপন্যাসিক হিচাপে। তেওঁৰ ৰচিত উপন্যাসসমূহ হৈছে চেনাবৰ সোঁত (১৯৭২), নীলকণ্ঠী ব্ৰজ (১৯৭৬), অহিৰণ (১৯৮০), মামৰে ধৰা তৰোৱাল (১৯৮০), বুদ্ধসাগৰ ধূঁসৰ গাইসা আৰু মহম্মদ মুছা (১৯৮০), দঁতাল হাতীৰ উঁয়ে খোৱা হাওদা (১৯৮৮), জখ্মী যাত্ৰী (১৮৯০), তেজ আৰু ধূলিৰে ধূসৰিত পৃষ্ঠা (১৯৯৪), উদয়ভানুৰ চৰিত্ৰ (১৯৮৯), দাশৰথিৰ খোজ (১৯৯৯), ছিন্নমস্তাৰ মানুহটো (২০০১) আৰু থেং ফাখ্ৰী তহ্চিল্দাৰৰ তামৰ তৰোৱাল (২০০৯)। তেওঁৰ প্ৰায়বোৰ উপন্যাসতে নিপীড়িত আৰ্তজনৰ দুখ-দৈন্যতাৰ কাহিনী, অৰ্থনৈতিক বৈষম্যৰ চিত্ৰ তুলি ধৰা দেখা যায়। লেখিকাগৰাকীৰ প্ৰায়ভাগ উপন্যাসৰেই কাহিনী বাস্তৱ জীৱনৰ পৰা বুটলি অনা। উচ্চ শ্ৰেণীয়ে নিম্ন শ্ৰেণীক, উচ্চ বংশৰ লোকে নিম্ন বংশৰ লোক, বিত্তশালী লোকে অৰ্থহীন লোক, শিক্ষিত উচ্চ বিষয়াই নিৰক্ষৰ শ্ৰমিক শ্ৰেণীক, পুৰুষপ্ৰধান ৰক্ষণশীল সমাজে তথা পুৰুষতন্ত্ৰই নাৰীক হেয় জ্ঞান কৰি কেনেদৰে প্ৰতাৰণা কৰি অন্যায়ভাৱে অত্যাচাৰ কৰিছিল সেয়া লেখিকাই উপন্যাসৰ মাজেৰে তুলি ধৰি অন্যায়-অত্যাচাৰৰ বিৰুদ্ধে প্ৰতিবাদ সাব্যস্ত কৰিছিল। আমাৰ আলোচনাত মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ চেনাবৰ সোঁত (১৯৭২), অহিৰণ (১৯৮০), মামৰে ধৰা তৰোৱাল (১৯৮০), দঁতাল হাতীৰ উঁয়ে খোৱা হাওদা (১৯৮৮) আৰু থেং ফাখ্ৰী তহ্চিল্দাৰৰ তামৰ তৰোৱাল (২০০৯) নামৰ উপন্যাসকেইখনত প্ৰতিফলিত হোৱা আৰ্থ-সামাজিক দিশ সম্পৰ্কে আলোচনা কৰাৰ প্ৰয়াস কৰা হৈছে।

সূচক শব্দ ঃ

অৰ্থনৈতিক শোষণ, আৰ্থ-সামাজিক দিশ, শাসক-শোষিত শ্ৰেণী আদি।

১.০০ অৱতৰণিকা ঃ

জন্মগতভাৱে মানুহ সামাজ প্ৰিয় প্ৰাণী আৰু সমাজেই মানুহৰ আবাসস্থলী। তদ্ৰূপ এই সমাজত ভিন্ন ভাষীৰ, নানা শ্ৰেণীৰ নানা বৃত্তিৰ লোকে বাস কৰে। বিভিন্ন বৃত্তিৰ মানুহৰ জীৱন যাত্ৰাৰ মানো ভিন্ন ধৰণৰ। এনে ভিন্নতাৰ বাবে উচ্চ, মধ্য, নিম্ন আদি শ্ৰেণীৰ সৃষ্টি হয়। উচ্চ শ্ৰেণীৰ লোকে নিম্ন শ্ৰেণীৰ লোকক তেওঁলোকৰ অধীনত ৰাখি আত্মস্বাৰ্থ পূৰ কৰে। আনপিনে আমাৰ সমাজ ব্যৱস্থাত অৰ্থনৈতিক, সামাজিক, ৰাজনৈতিক আদি সকলো ক্ষেত্ৰতেই বিষমতা বিদ্যামান। এই বিষমতাৰ কাৰণে উচ্চ স্তৰৰ লোকে অৰ্থাৎ অৰ্থনৈতিক, সামাজিক দিশৰ ফালৰ পৰা সবল লোকে আৰ্থ-সামাজিক দিশত দুৰ্বল নিম্ন স্তৰৰ লোকক বহু সময়ত শোষণ আৰু শাসন কৰে। ফলত যুগ যুগ ধৰি নিম্ন স্তৰৰ বা নিম্ন শ্ৰেণীৰ লোক উচ্চ পৰ্যায়ৰ তথা উচ্চ শ্ৰেণীৰ দ্বাৰা প্ৰবঞ্চিত, অৱদমিত, নিষ্পেষিত হৈ আহিছে। কাৰণ শোষিত শ্ৰেণীৰ লোকসকল অৰ্থনৈতিকভাৱ দুৰ্বল বাবে শোষক শ্ৰেণীৰ বিৰুদ্ধে প্ৰতিবাদ কৰাৰ শক্তি আৰু সাহস সিহঁতৰ নাই অথবা শাসক শ্ৰেণীৰ বিৰুদ্ধে প্ৰতিবাদ কৰিলেও সিহঁত নিৰ্যাতনৰ বলি হ'বলগীয়া হয়। ফলত শিক্ষা, অৰ্থ বা নিজৰ প্ৰাপ্যৰ পৰাও বঞ্চিত হৈ সাধাৰণ শ্ৰেণীৰ শ্ৰমিকসকল সদায় দুখ-যাতনাৰ মাজেৰে জীৱন - যাপন কৰিবলৈ বাধ্য হোৱাৰ উপৰিও সিহঁতৰ জীৱন সদায় অন্ধকাৰৰ মাজত ডুব গৈ থাকে। সেয়ে আমাৰ এই অধ্যয়নত অন্যায়-অবিচাৰ, শোষণ, নিপীড়ণৰ বাবে হাতত কলম তুলি লোৱা ঔপন্যাসিক মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ উপন্যাসত বৰ্ণিত আৰ্থ-সামাজিক দিশৰ বিষয়ে আলোকপাত কৰিবলৈ যত্ন কৰা হৈছে।

১.০১ অধ্যয়নৰ পৰিসৰ আৰু উৎস ঃ

অৰ্থনৈতিক, সামাজিক দিশৰ পৰা সম্বলশালী, ক্ষমতাশালী, স্বাৰ্থলোভী, সুবিধাবাদী লোকে আধিপত্য আৰু প্ৰভুত্ব অক্ষুণ্ণ ৰাখিবলৈ কিদৰে অৰ্থনৈতিকভাৱে নিৰ্বলী, সৰ্বহাৰা শ্ৰেণীক শোষণ কৰে সেয়া আলোকপাত কৰাই এই অধ্যয়নৰ মূল লক্ষ্য আৰু উদ্দেশ্য।

১.০২ অধ্যয়নৰ উৎস আৰু পৰিসৰ ঃ

আলোচ্য গৱেষণা পত্ৰত মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ চেনাবৰ সোঁত (১৯৭২), অহিৰণ (১৯৮০), মামৰে ধৰা তৰোৱাল (১৯৮০), দঁতাল হাতীৰ উঁয়ে খোৱা হাওদা (১৯৮৮) আৰু থেং ফাখ্ৰী তহ্চিল্দাৰৰ তামৰ তৰোৱাল (২০০৯) নামৰ উপন্যাসকেইখনক মুখ্য উৎস হিচাপে লোৱা হৈছে। গৌণ উৎস হিচাপে মূল বিষয়ৰ সৈতে সংগতি থকা অন্যান্য গ্ৰন্থ, প্ৰবন্ধ, আলোচনী আদিৰ সহায় লোৱা হৈছে। সাধাৰণতে দেখা যায় উচ্চ, ধনী, বিত্তশালী, ক্ষমতাশালী শ্ৰেণীৰ লোকে বিত্তহীন, দুৰ্বল, নিম্ন শ্ৰেণীৰ লোকক তলতীয়া কৰি ৰাখিবৰ বাবে অন্যায়ভাৱে নিৰ্যাতন চলোৱা দেখা যায়। এই কথাৰ প্ৰতি লক্ষ্য ৰাখিয়েই মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ আৰ্থ-সামাজিক দিশ, অৰ্থনৈতিক বৈষম্যৰ কাহিনী বৰ্ণিত উপন্যাস কেইখনক আলোচ্য গৱেষণা পত্ৰৰ আওতালৈ অনা হৈছে।

১.০৩ অধ্যয়নৰ পদ্ধতি ঃ

মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ উপন্যাসত প্ৰতিফলিত আৰ্থ-সামাজিক দিশ আৰু অৰ্থনৈতিক শোষণৰ বিষয়ে আলোচনা কৰোঁতে মুখ্যত বিশ্লেষণাত্মক আৰু বৰ্ণনাত্মক পদ্ধতি প্ৰয়োগ কৰা হৈছে।

২.০০ মূল আলোচনা ঃ

মানুহ যিহেতু সমাজ অঙ্গীভূত প্ৰাণী সেই হিচাপে প্ৰতিগৰাকী সাহিত্যিকৰ সাহিত্যৰ মাজেৰে অৰ্থনৈতিক, সামাজিক, সাংস্কৃতিক আদি দিশৰ ছবিও প্ৰতিবিম্বিত হোৱা পৰিলক্ষিত হয়। বিশেষকৈ দ্বিতীয় মহাসমৰৰ পিছত সাহিত্যিকসকলে তেওঁলোকৰ ৰচনাত আৰ্থ-সামাজিক দিশৰ ছবি প্ৰকট ৰূপত চিত্ৰিত কৰা দেখা যায়। আনহাতে মামণি ৰয়ছম গোস্বামী আছিল যুদ্ধোত্তৰ যুগৰ এগৰাকী প্ৰসিদ্ধ সাহিত্যিক। গতিকে তেওঁৰ উপন্যাসসমূহতো সমকালীন অসমীয়া সমাজ জীৱনৰ চিত্ৰ সুন্দৰভাৱে অংকিত হোৱা দেখিবলৈ পোৱা যায়।

২.০১ মামণি ৰয়ছম গোস্বামী ৰচিত প্ৰথম উপন্যাসখন হৈছে *চেনাবৰ সোঁত*। ইয়াত লেখিকাই কাশ্মীৰৰ চীনাবৰ নদীৰ একুৱাডাক্টৰ কামত কৰ্মৰত লাঞ্ছিত, বঞ্চিত, নিপীড়িত পুৰুষ-নাৰী শ্ৰমিকৰ দুৰ্দশাময় জীৱনৰ বাস্তৱ ছবি সুন্দৰকৈ উপস্থাপন কৰিছে। উপন্যাসখনত শোষক আৰু শোষিত দুই শ্ৰেণীৰ কাহিনী বৰ্ণিত হৈছে। উপন্যাসখনত শোষক শ্ৰেণীক প্ৰতিনিধিত্ব কৰিছে কোম্পানীৰ উচ্চ বিষয়া ৰাজ চাহাব, ৰাজাজ চাহাব আদি লোকসকলে; এওঁলোক শিক্ষিত, বিত্তশালী লোক আৰু শোষিত শ্ৰেণীৰ প্ৰতিভূ হৈছে সদাশিৱ, শিৱান্না,

গৌৰীশংকৰ, বলবন্ত, ৰঘুৱা, ৰাঘামা, সোণী, ধনমাই আদি শ্ৰমিকসকল; ইহঁত নিৰক্ষৰ, সম্বলহীন, দুৰ্বল, সৰ্বহাৰা নিম্ন শ্ৰেণীৰ লোক। ইহঁতে ভিন্ন ঠাইৰ পৰা আহি ক্ষুধাৰ তাড়নাত চীনাব নদীৰ ওপৰত নিৰ্মিত দলঙৰ কামত যোগদান কৰে। কিন্তু সেই সময়ত (১৯৬৬ চনত) হিন্দুস্থান কনষ্ট্ৰাকশ্বন কোম্পানীৰ চীনাবৰ ব্ৰাঞ্চত কোনো শ্ৰমিক ইউনিয়ন গঠন হোৱা নাছিল বাবে তাৰে সুযোগ লৈ কোম্পানীৰ মালিকে শ্ৰমিকসকলক নূন্যতম বেতনত দিন-ৰাতি কামত খটুৱাইছিল। কোম্পানীয়ে শ্ৰমিকক থাকিবলৈ ভাল ঘৰো সাজি দিয়া নাছিল; সিহঁতৰ তুলনাত কোম্পানীৰ উচ্চ বিষয়াসকলৰ থকা-লোৱাৰ সুবিধা বহুগুণে ভাল আছিল। তেওঁলোকৰ বাবে ৰন্ধা-বঢ়া কৰা ৰান্ধনী, ঘৰ ৰখীয়া চকিদাৰ, ভ্ৰমণৰ বাবে গাড়ীৰ ব্যৱস্থাও কোম্পানীয়ে কৰি দিছিল। অৰ্থাৎ কোম্পানীৰ মালিকপক্ষই শ্ৰমিকে তেজক পানী কৰি কৰা শ্ৰমেৰে ঘটা টকাৰে আৰামদায়ক জীৱন কটাইছিল। আনহাতে শ্ৰমৰ প্ৰকৃত মূল্য লাভৰ পৰা বঞ্চিত শ্ৰমিকসকলে সদায় যন্ত্ৰণাময় জীৱন কটাবলৈ বাধ্য হৈছিল। সেয়ে চাহাবে কেইটিমান টকা বঢ়াই দিব বুলি কোৱাত সদাশিৱই পত্নী ৰাঘামাৰ কথা নুশুনি খালাচীহঁতৰ দৰে দুটকা বেতনৰ কাম এৰি 'ৰেষ্ট হাউচ'ৰ চকিদাৰী কাম কৰিবলৈ লৈছিল। আনপিনে শ্ৰমিক নাৰী সোণীহঁতৰ দিন মজুৰি আছিল মাত্ৰ দুটকা চাৰি অনা। এই টকাৰে সিহঁতে নিজৰ লাগতীয়াল সামগ্ৰীখিনিও ক্ৰয় কৰিব পৰা নাছিল। ফলত কোনো কোনো শ্ৰমিক নাৰীয়ে নিজৰ সতীত্ব বিক্ৰী কৰিবলৈও বাধ্য হৈছিল। উপন্যাসখনৰ তেনেই এটি নাৰী চৰিত্ৰ হৈছে পাৰ্বতী। কোম্পানীৰ মালিকে শ্ৰমিকসকলোক উৎপাদনৰ আহিলা হিচাপেহে ব্যৱহাৰ কৰিছিল। তেওঁলোকৰ দৃষ্টিত শ্ৰমিকৰ জীৱনৰ কোনো মূল্য নাছিল। কাম কৰি থাকোঁতে আহত হোৱা নাইবা দুৰ্ঘটনাত পতিত হৈ মৃত্যু ঘটা শ্ৰমিকক কোম্পানীয়ে সিহঁতৰ পাবলগীয়া শ্ৰমৰ সম্পূৰ্ণ মূল্য কেতিয়াও বহন কৰা নাছিল। কাম কৰি থাকোঁতে দুৰ্ঘটনাত পতিত হৈ সৃত্যুক সাবটি লোৱা শ্ৰমিকক মাত্ৰ কেইটিমান টকা দি কোম্পানীয়ে সিহঁতৰ মুখ বন্ধ কৰি থৈছিল। উপন্যাসখনত কোম্পানীৰ ভুলৰ বাবে অকল সদাশিৱৰে যে মৃত্যু হৈছিল তেনে নহয় কাম কৰি থাকোঁতে ওপৰৰ পৰা পৰি কেইবাটাও শ্ৰমিকৰ কৰুণ মৃত্যু ঘটিছিল। এইদৰে ব্যক্তিগত কোম্পানীৰ মালিকে নিজৰ লাভৰ বাবে শ্ৰমিকক প্ৰতাৰণা কৰাৰ ফলত শ্ৰমিকৰ জীৱন যন্ত্ৰণাৰে ভৰি পৰিছিল। আনহাতে নিৰক্ষৰ, সৰ্বহাৰা শ্ৰমিকসকল অৰ্থহীন, ক্ষমতাহীন, দুৰ্বল বাবে সমাজতো সিহঁতৰ স্থান অতি নিম্ন আছিল; সম্বলশালী, বলী লোকে সিহঁতক মানুহ বুলিয়েই গণ্য কৰিব বিচৰা নাছিল।

২.০২ অৰ্থনৈতিক বৈষম্যৰ কাহিনী বৰ্ণিত গোস্বামীৰ আন এখন উপন্যাস হৈছে *অহিৰণ*। শ্ৰমিক জীৱনক আধাৰ কৰি ৰচিত এই উপন্যাসখনৰ পটভূমি হ'ল মধ্যপ্ৰদেশৰ অহিৰণ নদী। এইখন উপন্যাসত শ্ৰমিকৰ লগতে উচ্চ বিষয়া তথা সুদক্ষ অভিযন্তাও কোম্পানীৰ মালিকৰ দ্বাৰা লাঞ্ছিত. বঞ্চিত, উৎপীড়িত হৈছিল। উপন্যাসখনত কোম্পানীৰ দ্বাৰা শোষিত সুদক্ষ ইঞ্জিনীয়াৰজন হৈছে হৰ্শুল চাহাব। তেওঁ অহিৰণ নদীত একুৱাডাক্ট নিৰ্মাণৰ বাবে কাম হাত লোৱা কোম্পানীটোৰ উন্নতিৰ হকে বিশটা বছৰ একেৰাহে দেহে কেহে খাটি কাম কৰাৰ পিছতো কোম্পানীটোৱে তেওঁৰ পদন্নোতি কৰা নাছিল। ব্যক্তিগত কোম্পানীটোৱে তেওঁক বছৰে বছৰে অন্যায়ভাৱে অৰ্থনৈতিক শোষণ কৰা ফলত তেওঁ নিজাববীয়াকৈ ভাল ঘৰ এটি সাজিব, বিয়া পাতিব পৰা নাছিল। চল্লিশোৰ্ধত তেওঁ পাণ্ডে চাহাবৰ বিধৱা পত্নী নিৰ্মলাক বিয়া কৰাই যদিও কোম্পানীয়ে তেওঁৰ শ্ৰমৰ প্ৰকৃত মূল্য নিদিয়াৰ বেদনাত জৰ্জৰিত হৈ হৰ্শুলে পত্নীৰ প্ৰতি উদাসীন হৈ পৰাত সিহঁতৰ সংসাৰ থান-বান হৈ পৰে। আনহাতে উপন্যাসখনত উল্লেখিত অনুসৰি ১৯৭২ চনলৈ কোম্পানীৰ হকে কাম কৰা আন আন ব্ৰাঞ্চৰ শ্ৰমিকৰ দৈনিক মজুৰি জন্মু, কাশ্মীৰ আদি ঠাইত তিনি টকা পঞ্চাশ পইচা আছিল। কিন্তু অহিৰণ ব্ৰাঞ্চত কাম কৰা বনুৱাক মজুৰি দিছিল মাত্ৰ দুটকা। সেয়ে কোম্পানীয়ে অহিৰণৰ একুৱাডাক্ট নিৰ্মাণৰ কামত কৰ্মৰত শ্ৰমিকৰ দৰমহা আঠ অনা বৃদ্ধি কৰাৰ সিদ্ধান্ত গ্ৰহণ কৰিছিল। ইতিমধ্যে শ্ৰমিক ইউনিয়ন গঠন হৈছিল বাবে অহিৰণ ব্ৰাঞ্চৰ শ্ৰমিকক দীৰ্ঘ দিন ধৰি কোম্পানীয়ে শোষণ কৰি অহাই ইউনিয়নে শ্ৰমিকসকলক একগোট কৰি কোম্পানীৰ মালিকপক্ষৰ বিৰুদ্ধে ধৰ্মঘট আৰম্ভ কৰে। শ্ৰমিকসকল জাগি উঠাত আন্দোলনৰ ভয়ত কোম্পানীয়ে শ্ৰমিকৰ দৈনিক বেতন তিনি টকা আঠ অনাকৈ দিবলৈ ৰাজি হয়। আনপিনে শ্ৰমিকৰ সামান্য ভুলৰ বাবেও মালিকে সিহঁতক কামৰ পৰা খেদি দিছিল। বেমাৰ হ'লে বা কাম কৰি থাকোঁতে আঘাত পোৱা কোনো শ্ৰমিকে কামৰ পৰা ছুটী ল'লেও মালিকে সিহঁতক চুৰনীৰ কুকুৰৰ দৰে দুৰ্ব্যৱহাৰ কৰি কামৰ পৰা উলিয়াই দিছিল। আকৌ

ইউনিয়নৰ লোকেল লীডাৰসকলেও নিজৰ স্বাৰ্থৰ বাবে কোম্পানীৰ পৰা শ্ৰমিকৰ মজুৰি অধিক লৈ সিহঁতক কম মজুৰিত কামত খটুৱাই শ্ৰমিক-ইঞ্জিনীয়াৰৰ মাজত এখন নেদেখা প্ৰাচীৰৰ সৃষ্টি কৰিছিল। কোম্পানীৰ মালিকে আৰু লোকেল লীডাৰহঁতে নিৰক্ষৰতাৰ সুবিধা লৈ অন্যায়ভাৱে শ্ৰমিকসকলৰ ওপৰত অৰ্থনৈতিক নিৰ্যাতন চলোৱাৰ বাবে শ্ৰমিকসকল সদায় অন্ধকাৰৰ মাজত ডুব গৈ থাকিবলগীয়া হৈছিল। সচৰাচৰ দেখা যায় আমাৰ সমাজত ধনী, ক্ষমতাশালী, বলী, শিক্ষিত শ্ৰেণীৰ তথা উচ্চ শ্ৰেণীৰ লোককহে সকলোৱে সন্মান কৰে, আগ শাৰীত ঠাই দিয়ে আৰু সাধাৰণ সৰ্বহাৰা শ্ৰমিক শ্ৰেণীক তলতীয়া কৰি ৰাখে। ফলত নিম্ন শ্ৰেণীৰ সামাজিক স্থান সদায় নিম্ন হৈয়ে থাকে।

২.০৩ লাঞ্ছিত, নিৰ্যাতিত শ্ৰমিকৰ দুখ-দুৰ্দশাক লৈ ৰচিত গোস্বামীৰ আন এখন উপন্যাস হ'ল *মামৰে ধৰা তৰোৱাল*। এই উপন্যাসখনৰ বাবে লেখিকাই সাহিত্য অকাডেমি বঁটা লাভ কৰিছিল। উত্তৰ প্ৰদেশৰ ৰায়বেৰেলী জিলাৰ সাই নদীৰ একুৱাডাক্ট বন্ধা কামত নিয়োজিত ভিন্ন প্ৰান্তৰ ভিন্ন ভাষীৰ শ্ৰমিকসকলৰ ওপৰত ডানকান কনষ্ট্ৰাকশ্বন কোম্পানীৰ মালিক, উচ্চ বিষয়া ঠাকুৰ চাহাব আৰু লোকেল লীডাৰ শাস্ত্ৰী মহাৰাজে কিদৰে অৰ্থনৈতিক নিষ্পেষণ চলাইছিল সেয়া ঔপন্যাসিকে উপন্যাসখনত সুন্দৰকৈ উপস্থাপন কৰিছে। উপন্যাসখনত বিশেষকৈ শোষক শ্ৰেণীৰ প্ৰতিভূ কোম্পানীৰ মালিক, ঠাকুৰ চাহাব আৰু শাস্ত্ৰী মহাৰাজে হৰিজন সম্প্ৰদায়ৰ শ্ৰমিক যশোৱন্ত, লিছু লেঙেৰা, শিবু ধাছলা, ভৃগু ছুইপাৰ, ৰামু, বামু, নাৰায়ণী, বসুমতী বুঢ়ী আদিৰ ওপৰত উৎপীড়ণ চলাইছিল। কাৰণ শোষক শ্ৰেণীয়ে নিজৰ প্ৰভূত্ব আৰু আধিপত্য অক্ষুণ্ণ ৰাখিবলৈ বহু সময়ত শ্ৰমিক শ্ৰেণীক দমন কৰি ৰাখে। একেটা কোম্পানীৰ তলত শ্ৰমিকসকলে বিশ, পোন্ধৰ বছৰ ধৰি কাম কৰাৰ পাছতো কোম্পানীয়ে সিহঁতৰ চাকৰি স্থায়ীকৰণ কৰা নাছিল। বৰং কামৰ অন্তত কোম্পানীয়ে সিহঁতক কামৰ পৰা বহিষ্কাৰ কৰি ফটা জোতাৰ দৰে দলিয়াইহে পেলাইছিল। কোম্পানীয়ে অশেষ পৰিশ্ৰমৰ বিনিময়ত সিহঁতক নামমাত্ৰ মজুৰি দিছিল। সিহঁতৰ কামৰো নিৰ্দিষ্ট সময়সীমা নাছিল। শ্ৰমিকে কেনেদৰে, কিমান কাম কৰিব লাগিব সেয়াও কোম্পানীৰ মালিক আৰু উচ্চ বিষয়াসকলেহে নিৰ্ধাৰণ কৰি দিছিল। মালিকে শ্ৰমিকক কেৱল উৎপাদনৰ যন্ত্ৰ হিচাপেহে ব্যৱহাৰ কৰিছিল। শ্ৰমিকসকলক অতি কম মজুৰি দি মালিকে অধিক কাম আদায় কৰি নিৰ্মমভাৱে সিহঁতক অৰ্থনৈতিক শোষণ কৰিছিল। দীৰ্ঘদিন ধৰি মালিকপক্ষৰ দ্বাৰা শোষিত শ্ৰমিকসকল অতিষ্ঠ হৈ ইউনিয়ন আৰু লোকেল লীডাৰ শাস্ত্ৰী মহাৰাজৰ উচতনিত কোম্পানীৰ বিৰুদ্ধে ধৰ্মঘট আৰম্ভ কৰে। সিহঁতে ইউনিয়নত যোগদান কৰাই কোম্পানীয়ে এমাহৰ দৰমহা বন্ধ কৰি দিয়ে। এইদৰে অন্যায়ভাৱে কোম্পানীয়ে শ্ৰমিকৰ দৰমহা বন্ধ কৰি দিয়াত পেটৰ ভোকত কচাইয়ে কুকুৰলৈ দলিয়াই দিয়া ছাগলীৰ নাৰী-ভৰুক লৈ টনা-আজোৰা কৰিবলৈ ধৰে। আনপিনে স্বাৰ্থলোভী লোকেল লীডাৰ শাস্ত্ৰীয়ে সুবিধা বুজি কোম্পানীৰ মালিকৰ সৈতে হাত মিলাই চাৰি হাজাৰ টকা লৈ সৰ্বহাৰা শ্ৰমিকসকলক প্ৰবঞ্চনা কৰি শ্ৰমিকৰ ধৰ্মঘট বিফল কৰিলে। বৰ্খাস্ত শ্ৰমিকসকল সাই ব্ৰান্স এৰি গুচি যোৱাত শাস্ত্ৰীয়ে শ্ৰমিকক ঠগি অন্যায়ভাৱে ঘটা টকাৰে এটি দালান কৰি বিলাসিতাপূৰ্ণ জীৱন আৰম্ভ কৰে। আইন অনুসৰি বছৰ বছৰ ধৰি একেটা কোম্পানীত কাম কৰা শ্ৰমিকক সিহঁতৰ পাবলগীয়া শ্ৰমৰ অৰ্থৰ উপৰিও সিহঁতক

কিছুদিন চলিবলৈ উপৰুৱাকৈ কিছু টকা দিব লাগে। কিন্তু ডানকান কনষ্ট্ৰাকশ্বন কোম্পানীৰ মালিকে সাইৰব্ৰাঙ্গত কাম কৰা শ্ৰমিকক বৰ্খাস্ত কৰাৰ পাছত সিহঁতৰ শ্ৰমৰ প্ৰকৃত মূল্যও বহন কৰা নাছিল। এইদৰে কোম্পানীৰ মালিকে বছৰ বছৰ ধৰি শ্ৰমিকসকলক তেওঁলোকৰ তলতীয়া কৰি ৰাখিবলৈ অৰ্থনৈতিক নিষ্পেষণ কৰিছিল। আনপিনে হৰিজন সম্প্ৰদায়ৰ শ্ৰমিকসকল নিম্ন শ্ৰেণীৰ আছিল বাবে সমাজেও সিহঁতক অস্পৃশ্য বুলি ঘৃণা কৰিছিল। এপিনে অৰ্থৰ অভাৱত আৰু আনপিনে সমাজৰ ৰোষৰ বলি হৈ সিহঁত সদায় আনৰ অধীনত চলবলৈ বাধ্য হৈছিল।

২.০৪ মুখ্যত বিধৱা পীড়ণৰ চিত্ৰ প্ৰকট ৰূপত প্ৰতিফলিত গোস্বামীৰ *দঁতাল হাতীৰ উঁয়ে খোৱা হাওদা* উপন্যাসখনতো লেখিকাই সামাজিক, অৰ্থনৈতিক দিশৰ ছবি অতি সুন্দৰকৈ অংকন কৰিছে। ইয়াত পিতৃতান্ত্ৰিক ৰক্ষণশীল সমাজে কঠোৰ নিয়ম-নীতি সৃষ্টি কৰি বিধৱা নাৰীক নিষ্ঠুৰভাৱে শোষণ কৰিছিল। উপন্যাসখনৰ মুখ্য নাৰী চৰিত্ৰ গিৰিবালা এনে নিৰ্যাতনৰ বলি হৈছিল। ককাকৰ তিথিৰ দিনা চুৰকৈ মাংস খোৱাৰ বাবে তাইক বামুণ আনি প্ৰায়চিত্ত কৰোৱা হৈছিল। পুৰণি পুথি সংগ্ৰহ কৰিবলৈ অহা মাৰ্ক চাহাবৰ কোঠাত মাজৰাতি একেলগে থকাৰ বাবে 'মেষদাহ' সাজি তাৰ তলত বহুৱাই তাইক শুদ্ধিকৰণ কৰাইছিল তাৰ পাছত সেই মেষদাহত জুই লগাই দিছিল। গিৰিবালাই জুই লগাই গিলে মেষদাহৰ পৰা ওলাই আহিব বুলি কৈছিল যদিও ওলাই নাহিলে। বৰঞ্চ সেই জুইত তাই নিজকে আত্মজাহ দিলে। ঊনবিংশ শতিকাৰ দ্বিতীয়-তৃতীয় দশকৰ সময়ছোৱাৰ ৰক্ষণশীল সমাজত তেনে নিয়ম কেৱল নাৰীৰ ক্ষেত্ৰতহে প্ৰয়োগ কৰা হৈছিল। এনে সমাজত নাৰীৰ স্থান আছিল অতি নিম্ন। নাৰীয়ে পুৰুষশাসিত সমাজৰ নিৰ্ধাৰিত নিয়ম মতে উঠা-বহা কৰিব লাগিছিল। আকৌ এইখন সমাজত উচ্চ হিন্দু বৰ্ণৰ লোকৰ স্থান আছিল অতি উচ্চ আৰু তাৰে সুবিধা লৈ সত্ৰৰ সত্ৰাধিকাৰ গোসাঁই-মহন্তসকলে নিম্ন বংশৰ লোকসকলক তেওঁলোকৰ অধীনত ৰাখিবলৈ অন্যায়ভাৱে নিৰ্যাতন কৰিছিল। তেওঁলোক অৰ্থৰ পিনৰ পৰাও সম্বলশালী আছিল বাবে অধিক মাটিৰ গৰাকী হ'বলৈ কুট বুদ্ধিৰে ১৮৩৪ চনত ম্যাদী পট্টা থকা-নথকা বহুতো খেৰাজ-নিষ্পিখেৰাজ মাটি অৰ্থাৎ কৰ দিবলগীয়া আৰু কৰ নিদিয়া মাটি আত্মসাৎ কৰিছিল। এইকথা আলোচ্য উপন্যাসখনত স্পষ্টকৈ আছে। পাছত সেই মাটি সত্ৰৰ ভাবি সত্ৰাধিকাৰ ইন্দ্ৰনাথহঁতৰ পূৰ্বপুৰুষে আৰু ভিখাৰু গোসাঁইহঁতে মাটিহীন ৰায়ত কৃষকসকলক আধিলৈ দি বিনা কষ্টৰে খেতি পথাৰৰ পৰা উৎপাদিত খাদ্য সামগ্ৰী সংগ্ৰহ কৰিছিল। সেই ভূই মাটিৰ খাজনাও তেওঁলোকে দিয়া নাছিল। ৰায়ত খেতিয়কে আধি খোৱা ভূই মাটিৰ কৰ নিজে দি অতি কষ্টৰে শস্য উৎপাদন কৰাৰ পিছতো উৎপাদিত শস্যৰ আধা অংশ মাটিৰ মালিকীস্বত্ব খটুৱা মাটিৰ মালিক গোসাঁইসকলোক দিবলৈ বাধ্য হৈছিল। এনেদৰে উচ্চ বংশৰ লোক গোসাঁইসকলে সম্বলহীন, হোজা, নিম্ন শ্ৰেণীৰ লোকসকলক তথা সাধাৰণ শ্ৰেণীৰ কৃষকসকলক নিজৰ অধীনত ৰাখিবলৈ অৰ্থনৈতিক শোষণ কৰিছিল। তেওঁলোকে সাধাৰণ শ্ৰেণীৰ লোক যাতে আৰ্থ-সামাজিক দিশত সবল হ'ব নোৱাৰে তাৰ প্ৰতি দৃষ্টি ৰাখিছিল। কিন্তু উপন্যাসখনৰ নায়ক আমৰঙা সত্ৰৰ ভাবি সত্ৰাধিকাৰ ইন্দ্ৰনাথে সাধাৰণ শ্ৰেণীৰ কৃষকসকলক সিহঁতৰ পূৰ্বপুৰুষসকলকৰ দৰে নিজৰ অধীনত ৰাখিব বিচৰা নাছিল। ইন্দ্ৰনাথৰ মাটি-বাৰী, ধন-সম্পত্তিৰ প্ৰতিও লোভ নাছিল। সেয়ে তেওঁ ৰায়ত কৃষকসকলক মাৰাৰভিঠাৰ মাটিৰ স্বত্ব ৰায়তসকলক গোটাই দিবলৈ তেওঁলোকৰ নামত মাটিৰ কাঁচা পট্টা তৈয়াৰ কৰিছিল। কিন্তু দুৰ্ভাগ্যবশতঃ সেই কথা ৰায়তসকলক কোৱাৰ পূৰ্বে সিহঁতে ইন্দ্ৰনাথক হুলাবাৰীৰে নিৰ্মমভাৱ প্ৰহাৰ কৰি হত্যা কৰে। উপন্যাসখনত উচ্চ শ্ৰেণীৰ গোসাঁইসকলে নিম্ন শ্ৰেণীৰ মাটিহীন সাধাৰণ খেতিয়ক সকলক অন্যায়ভাৱে আৰ্থ-সামাজিক দিশত শোষণ কৰাৰ চিত্ৰ সুন্দৰকৈ চিত্ৰিত হৈছে।

২.০৫ অৰ্থনৈতিক নিৰ্যাতনৰ কাহিনী বৰ্ণিত মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ আন এখন উপন্যাস হ'ল *থেং ফাখ্ৰী তহ্চিল্দাৰৰ তামৰ তৰোৱাল*। এই উপন্যাসখনত বিদেশী তথা ইষ্ট ইণ্ডিয়া কোম্পানীয়ে পৰাধীন ভাৰতৰ-অসমৰ বিজনী নামৰ ভিতৰুৱা অঞ্চল এটিত থেং ফাখ্ৰী নামৰ এগৰাকী বড়ো মহিলাক ইজাৰাদাৰৰ পৰা তহ্চিল্দাৰলৈ পদন্নোতি কৰাই তেওঁৰ হতুৱাই ৰাজহ সংগ্ৰহ কৰি নিচলা, নিৰক্ষৰ শ্ৰেণীৰ লোকক কেনেদৰে অৱদমন কৰিছিল তাৰে ছবি লেখিকাই বাস্তৱ ৰূপত তুলি ধৰিছে। উপন্যাসখনত উল্লেখিত বৃটিশ-শাসিত চৰকাৰৰ বিষয়ববীয়াসকল হৈছে কেপ্তেইন হাৰ্ডি চাহাব, মেক্লিনছন চাহাব, নাকেন ক্লাক আদি। এওঁলোক শোষক শ্ৰেণীৰ ধাৰক আৰু বাহক। চতুৰ, শক্তিশালী জাতিৰ ইংৰাজসকলে নিজৰ

আধিপত্য বিস্তাৰ কৰিবলৈ আৰু শাসনব্যৱস্থা ৰক্ষাৰ কৰিবলৈ মোগলে বাৰে বাৰে অসম আক্ৰমণ কৰাৰ সুবিধা গ্ৰহণ কৰি বলিত নাৰায়ণ ৰজাৰ হাতৰ পৰা চতুৰালিকৈ খুটাঘাট আৰু হাব্ৰাঘাটৰ ফৌজদাৰী ক্ষমতা নিজৰ হাতলৈ হস্তান্তৰ কৰিছিল। পৰৱৰ্তী সময়ত ৰজাই কৃষকৰ ৰোষৰ ভয়ত খাজনা সংগ্ৰহৰ দায়িত্ব নিজে বিদেশী কোম্পানীৰ হাতত অৰ্পণ কৰিবলৈ বাধ্য হয়। আনপিনে ৰজাৰ আকস্মিক মৃত্যুৰ পাছত ৰাজকোঁৱৰ নাবালক আছিল বাবে ৰাণী ভাগ্যেশ্বৰীয়ে ৰাজকাৰ্য চোৰা-চিতা কৰে। তাৰে সুবিধা লৈ বিদেশী কোম্পানীটোৱে সাধাৰণ নিৰীহ প্ৰজা আৰু অৰ্থহীন কৃষকৰ ওপৰত মেট্মৰা কৰৰ বোজা জাপি সিহঁতৰ ওপৰত মানসিক অত্যাচাৰ চলাইছিল। কোম্পানীয়ে সাধাৰণ প্ৰজা আৰু কৃষকৰ পৰা হাতী-গৰু চৰোৱা পথাৰ, পাণ-তামোলৰ গছ আদিৰ বাবেও কৰ ল'বলৈ আৰম্ভ কৰি দিয়ে। কোনো কাৰণত কৃষকসকলে দুই-তিনি মাহলৈ কৰ দিব নোৱাৰিলে সিহঁতৰ ঘৰ ক্ৰোক কৰি ঘৰৰ সকলো সামগ্ৰী কাঢ়ি আনে। সাধাৰণ শ্ৰমিকৰ ওপৰত চলোৱা এনে উৎপীড়ণ সহিব নোৱাৰি উপায়ন্তৰ হৈ কিছুমান কৃষক নিজৰ জন্মভূমি এৰি ভূটানলৈ পলাই গৈছিল। এইদৰে শক্তিশালী জাতি তথা ক্ষমতাশালী দেশে পৰাধীন, দুৰ্বল দেশক তেওঁলোকৰ অধীনত ৰাখিবৰ বাবে নিষ্ঠুৰভাৱে শোষণ কৰিছিল। পৰাধীন দেশ যাতে অৰ্থনৈতিকভাৱে সবল হৈ স্বাধীন হ'ব নোৱাৰে তাৰ কাৰণে তেনে দেশে দুৰ্বল দেশৰ ওপৰত পাৰ্যমানে অন্যায়ভাৱে অৰ্থনৈতিক শোষণ কৰিছিল।

উক্ত আলোচিত উপন্যাসসমূহৰ উপৰিও মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ বিধৱা নাৰীৰ যন্ত্ৰণাপীড়িত জীৱনক লৈ ৰচিত *নীলকণ্ঠী ব্ৰজ* আৰু *ছিন্নমস্তাৰ মানুহটো* উপন্যাসতো আৰ্থ-সামাজিক দিশৰ চিত্ৰ প্ৰতিফলিত হোৱা দেখা গৈছে। *নীলকণ্ঠী ব্ৰজত* ৰক্ষণশীল পৰম্পৰাগত সমাজে বিধৱা

নাৰীৰ ওপৰত কোঠৰ ৰীতি-নীতি জাপি দিয়ে যে অকল নিৰ্যাতন চলাইছিল তেনে নহয় খুদকণ শান্তি বিচাৰি পবিত্ৰভূমি বৃন্দাবনত বাস কৰা ৰাধেশ্যামী বিধৱাসকলে 'ঔদ্ধ দেহিক'ৰ বাবে সাঁচি থোৱা টকাকেইটাও নাৰীৰ ওপৰত প্ৰভুত্ব প্ৰদৰ্শন কৰা পাণ্ডাসকলে কাঢ়ি নিছিল। উপন্যাসখনত উল্লেখ আছে ভোজন আশ্ৰমৰ চিট্টিবাবুয়ো মৃত্যুৰ ক্ষণ গণিবলৈ লোৱা ৰাধেশ্যামীসকলক আশ্ৰমৰ পৰা খেদি দি তেওঁলোকে সঞ্চয় কৰা টকা অন্যায়ভাৱে কাঢ়ি লৈছিল। মুঠতে শাসক শ্ৰেণীক প্ৰতিনিধিত্ব কৰা পাণ্ডা, দালাল, ভোজন আলয়ৰ বিষয়ববীয়াসকলে বিধৱা নাৰীক জীৱ-জন্তুৰ দৰে ব্যৱহাৰ কৰিছিল। তেনে সমাজত নাৰীৰ স্থান আছিল একেবাৰে নিম্নখাপৰ। *ছিন্নমস্তাৰ মানুহটো* উপন্যাসখনতো নাৰীক বলি দিবলৈ নিয়া অবোধ প্ৰাণী জ্ঞান কৰিছিল। উদাহৰণস্বৰূপে বিধিৱালাৰ কথাই ক'ব পৰা যায়। বিধিৱালাক গোড়া ধৰ্মালম্বীৰ পিতৃয়ে এগৰাকী আদহীয়া ব্যক্তিলৈ বিয়া দিব বিচাৰিছিল আৰু তাইৰ বিয়াৰ নামত শক্তিপীঠ কামাখ্যাধামত ম'হ বলি দিবলৈ আনিছিল। নিজ হাতে লালন-পালন কৰি ডাঙৰ কৰা ম'হটো বলি দিব নিদি তাই ৰাতিৰ আন্ধাৰত এৰি দিছিল। সেই দোষৰ বাবে পিতৃয়ে তাইক চুলিত ধৰি চোচোৰাই আনি লঠিয়াইছিল, মাৰ-ধৰ কৰিছিল। অন্যহাতে পুলু নামৰ এজন ঢুলীয়াক নামবিহীন মাটিৰ মালিকে অৰ্থ আৰু ক্ষমতাহীনতাৰ সুযোগ লৈ মাটি বন্ধকত ৰাখি অন্যায়ভাৱে নিৰ্যাতন কৰিছিল। ঢুলীয়া বৃত্তিৰে কোনোমতে পৰিয়ালটি পোহ-পাল দিয়া পুলুই বন্ধকত থোৱা মাটিৰ এক অংশ মোকলাব বিচাৰিলে অৰ্থলোভী, সুবিধাবাদী মাটিৰ মালিকে পুলুৰ মাটি এৰি দিয়া নাছিল। ফলত এফালে ডাঙৰ পুত্ৰৰ বেমাৰ চিকিৎসা কৰিব নোৱাৰা দুখ আৰু মাটি মোকলাব নোৱাৰাৰ বেদনাত জৰ্জৰিত হৈ দিনে দিনে শুকাই-খীণাই পুলু নৰকংকাললৈ পৰিণত হয়।

৩.০০ উপসংহাৰ ঃ

সামৰণিত ক'ব পৰা যায় যে ওপৰত আলোচিত মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ উপন্যাসসমূহৰ মাজেৰে আৰ্থ-সামাজিক দিশৰ লগতে অৰ্থনৈতিক শোষণৰ চিত্ৰও চিত্ৰিত হৈছে। তদুপৰি এই অধ্যয়নৰ মাজেৰে শাসনব্যৱস্থা ৰক্ষাৰ বাবে যুগ যুগ ধৰি শোষক শ্ৰেণীয়ে পিছপৰা, সৰ্বহাৰা শ্ৰমিক শ্ৰেণীক অন্যয়ভাৱে কিদৰে শোষণ কৰিছিল, ক্ষমতা বজাই ৰাখিবৰ বাবে নাইবা প্ৰভুত্ব আৰু আধিপত্য বিস্তাৰ কৰিবৰ বাবে সাধাৰণ, পিছপৰা শ্ৰেণীৰ লোকক কেনেদৰে দমন কৰি ৰাখিছিল তাৰো সন্ধান পোৱা গৈছে। গতিকে সমস্ত ভাৰতবৰ্ষতে এক ঢৌৰ সৃষ্টি কৰিবলৈ সক্ষম হোৱা ঔপন্যাসিকগৰাকীৰ উপন্যাসসমূহ অধ্যয়ন কৰাৰ যথেষ্ঠ থল আছে লগতে তেওঁৰ উপন্যাসসমূহ অধ্যয়ন কৰাৰো গুৰুত্ব অপৰিসীম। ❑

সহায়ক গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

মুখ্য সমল

ভৰালী, হেমন্ত কুমাৰ। সংক. আৰু সম্পা.। *মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ সাহিত্য সম্ভাৰ* (প্ৰথম খণ্ড)। প্ৰথম সংস্কৰণ। অসম প্ৰকাশন পৰিষদ। গুৱাহাটী ঃ শিৰম প্ৰিণ্টাৰ্চ, ২০১৪। মুদ্ৰিত।

---। সংক. আৰু সম্পা.। *মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ সাহিত্য সম্ভাৰ* (দ্বিতীয় খণ্ড)। প্ৰথম সংস্কৰণ। অসম প্ৰকাশন পৰিষদ। গুৱাহাটী ঃ শিৰম প্ৰিণ্টাৰ্চ, ২০১৪। মুদ্ৰিত।

---। সংক. আৰু সম্পা.। *মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ সাহিত্য সম্ভাৰ* (তৃতীয় খণ্ড)। প্ৰথম সংস্কৰণ। অসম প্ৰকাশন পৰিষদ। গুৱাহাটী ঃ লাচিত প্ৰিণ্টিং প্ৰেছ, ২০১৪। মুদ্ৰিত।

---। সংক. আৰু সম্পা.। *মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ সাহিত্য সম্ভাৰ* (চতুৰ্থ খণ্ড)। প্ৰথম সংস্কৰণ। অসম প্ৰকাশন পৰিষদ। গুৱাহাটী ঃ আৰ কে পাব্লিকেশ্যন, ২০১৪। মুদ্ৰিত।

গৌণ সমল ঃ

অসমীয়া

গগৈ, হৃদয়ানন্দ। *আধুনিকতাৰ সন্ধানত মামণি ৰয়ছম গোস্বামী*। দ্বিতীয় প্ৰকাশ। গুৱাহাটী ঃ জ্যোতি প্ৰকাশন, ২০০৫। মুদ্ৰিত।

গোস্বামী, ত্ৰিদিব। পৰি., সংক. আৰু সম্পা.। *ইন্দিৰা ব্যক্তিত্ব আৰু সাহিত্য*। গুৱাহাটী ঃ অসম পাব্লিচিং কোম্পানী, ২০১৪। মুদ্ৰিত।

গোহাঁই, ৰাণী। পৰি., সংক. আৰু সম্পা.। *হৃদয় তপস্বিনী*। গুৱাহাটী ঃ জ্যোতি প্ৰকাশন, ১৯৯৯। মুদ্ৰিত।

ঠাকুৰ, নগেন। সম্পা.। *এশ বছৰৰ অসমীয়া উপন্যাস*। দ্বিতীয় প্ৰকাশ। গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয় অসমীয়া বিভাগৰ দ্বাৰা সম্পাদিত। গুৱাহাটী ঃ জ্যোতি প্ৰকাশন। ২০১২। মুদ্ৰিত।

নাথ, ভনিতা। *মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ উপন্যাস ঃ বিচাৰ-বিশ্লেষণ*। গুৱাহাটী ঃ পূৰ্বায়ণ প্ৰকাশন, ২০২০। মুদ্ৰিত।

শৰ্মা, গোবিন্দ প্ৰসাদ। *নাৰীবাদ আৰু অসমীয়া উপন্যাস*। দ্বিতীয় সংস্কৰণ। গুৱাহাটী ঃ অসম প্ৰকাশন পৰিষদ, ২০১১। মুদ্ৰিত।

শৰ্মা, শৈলেনজিৎ। সম্পা.। *মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ উপন্যাস জীৱন-জিজ্ঞাসা, সমাজ-বাস্তৱতা, মূল্যায়ন ইত্যাদি*। গুৱাহাটী ঃ অশোক পাব্লিকেশ্যন, ২০১৯। মুদ্ৰিত।

হুছেইন, নিকুমণি। *মামণি ৰয়ছম আভা আৰু প্ৰতিভা*। দ্বিতীয় প্ৰকাশ। গুৱাহাটী ঃ চন্দ্ৰ প্ৰকাশন, ২০১১। মুদ্ৰিত।

ইংৰাজী ঃ

Ambedkar, B R. *Castes In India*. New Delhi : Neha Publishers & Distributors, 2022. Print.

Maitra, Kiran. *Marxism In India*. New Delhi : Lotus Collection Roli Books, 2012. Print.

Miliband, Ralph. *Marxism And Politics*. Delhi : Aakar Books, 2006. Print.

বাংলা ঃ

বাৰ্নস, এমিল। *মাৰ্ক্সবাদ*। ঢাকা ঃ প্ৰান্তিকা। ২০২০। মুদ্ৰিত।

लेखकों से निवेदन

- द्विभाषी राष्ट्रसेवक में प्रकाशन हेतु पत्रिका की प्रकृति के अनुरूप भाषा, साहित्य, समाज, कला व संस्कृति विषयक लेख आमंत्रित हैं।
- अनूदित रचनाओं के संदर्भ में मूल लेखक की अनुमति/स्वीकृति अनिवार्य है।
- लेखक अपनी रचनाएँ केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा स्वीकृत मानक हिंदी यूनिकोड में 13 प्वाइंट में टंकित कराकर पत्रिका के ई-मेल : rastrasewak51@gmail.com पर अथवा स्पष्ट अक्षरों में लिखकर समिति कार्यालय के पते (मंत्री, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, रूपनगर, गुवाहाटी-781032, असम) पर भेजें।
- अस्वीकृत रचनाएँ लौटाई नहीं जाएँगी। अत: भेजी गई रचना की प्रति अपने पास अवश्य रखें।
- लेखक अपनी रचना के साथ अपना नाम, पदनाम, मोबाइल नं., ई-मेल, पूरा पता सहित एक पासपोर्ट साइज फोटो अवश्य भेजें।
- शोधपत्र की न्यूनतम शब्द-सीमा 2000 और अधिकतम 3000 होनी चाहिए और सार 150 से 200 शब्दों के भीतर होना चाहिए।
- असमीया भाषा में लिखे गए लेख को पेजमेकर फारमेट में गीतांजलि फंट, 12 प्वांइट में टाइप कराकर भेज सकते हैं।
- शोधपत्र के लेखन में एमएलए शैली का अनुपालन करना होग।
- शोधपत्र में क्रमश: शीर्षक, सार, प्रस्तावना, उद्देश्य, संसाधन/सामग्री, प्रविधि/पद्धति, क्षेत्र, मूल विषयवस्तु का विश्लेषण, परिणाम/उपलब्धियाँ, निष्कर्ष और उद्धृत कार्य शामिल होंगे।
- शोधपत्र की मौलिकता हेतु रचना के साथ घोषणा-पत्र संलग्न किया जाना आवश्यक है।
- लेखक अपनी तथ्यात्मक सटीकता के लिए पूरी तरह जिम्मेदार हैं।

द्विभाषी राष्ट्रसेवक का सदस्यता प्र-पत्र

यहाँ से काटिए

नाम : ....

पदनाम : ....

पूरा पता : ....

: ....

ई-मेल : .... मोबाइल : ....

RTGS का विवरण : ....

सदस्यता शुल्क

व्यक्तिगत

प्रति अंक	: रु. 100/-
वार्षिक	: रु. 1000/-
आजीवन सदस्य	: रु. 10,000/-

संस्थागत

प्रति अंक	: रु. 150/-
वार्षिक	: रु. 1,500/-

निर्धारित शुल्क मनीऑडर/डी.डी. के द्वारा असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के नाम से समिति कार्यालय के पते पर भेजा जा सकता है। ऑनलाइन शुल्क निम्न विवरण के अनुसार भेजें :-

Name of Beneficiary	: Asom Rastrabhasha Prachar Samiti
A/c No.	: 0853010182614
Name of Bank & Branch	: Punjab National Bank, G.S. Road
IFS Code	: PUNB0085320

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें -

डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया, मंत्री, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, सेवा मंदिर पथ, रूपनगर, डाक : इंद्रपुर, जिला : कामरूप महानगर, गुवाहाटी-781032 (असम), मो. 9101541380, ई-मेल : rastrasewak51@gmail.com

POSTAL REGISTRATION NO. GH/127/2022-24 ❖ Date of Publication : 31st October, 2023 ❖ RNI No. ASSBIL/2009/31008

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी

संपादकीय कार्यालय :

प्रधान संपादक, द्विभाषी राष्ट्रसेवक, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, सेवा मंदिर पथ, रूपनगर, गुवाहाटी-781032

मो. 9101541395 / 9101541380, ई-मेल : rastrasewak51@gmail.com